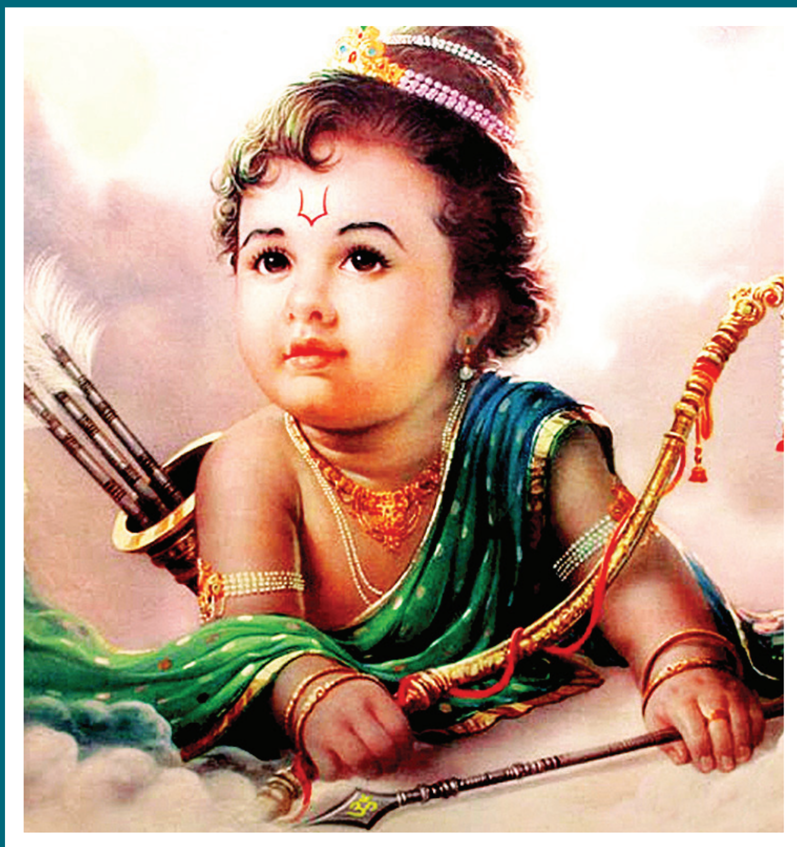
BIHAR YOGA®

श्रीरामचरितमानस

बालकाण्ड – 3

संकलन एवं सम्पादन

अवलोकितेश्वर



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

श्रीरामचरितमानस

बालकाण्ड – 3

(दोहा 104 से 188 तक)

राम अवतार के कारणों का वर्णन

ॐ, प्रेम, मंगलम्

स्वामी निरंजन

श्रीरामचरितमानस

बालकाण्ड – 3

राम अवतार के कारणों का वर्णन

संकलन एवं सम्पादन

अवलोकितेश्वर

(सुबोध अग्रवाल, सतना)



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड – 3
अवलोकितेश्वर

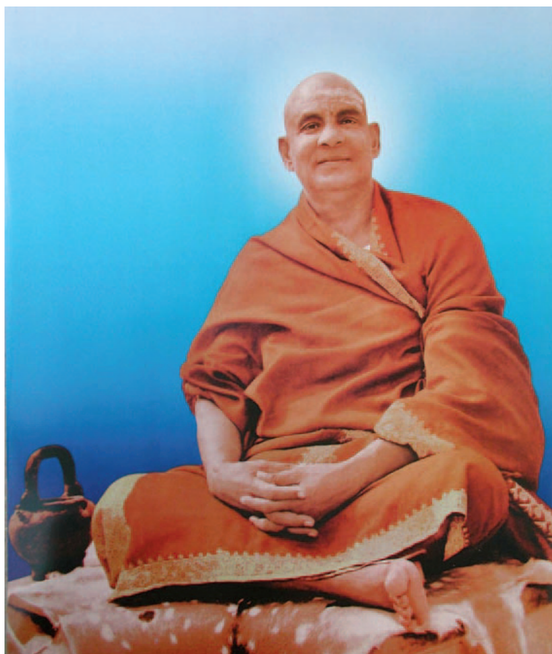
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित
प्रथम संस्करण 2021

ISBN: 978-81-946102-6-7

प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु,
पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार

वेबसाइट: www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

मुद्रक—थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड, नई दिल्ली



सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी



नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दुःखी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियापीठ, 2005

विषय सूची

परिचय

श्रीरामचरितमानस को मेरे पिताजी अपने माता-पिता के समान ही मानते थे, क्योंकि उनके माता-पिता बचपन से ही नहीं थे। उन्होंने अपना सारा जीवन इस ग्रंथ के आधार पर ही प्रेम, आनंद व संतोष के साथ जिया। मुझे बचपन से ही इस ग्रंथ से बहुत लगाव रहा है। मैंने इसकी जीवंतता को नजदीक से देखा है।

मेरे गुरु, श्री स्वामी सत्यानन्द जी की भी इस ग्रंथ के प्रति अगाध श्रद्धा है। रिखिया में उनके सत्संगों के अनुपम संग्रह, भक्ति योग सागर भाग-1 से 7 तक मैंने पढ़े हैं और उन्हें पढ़कर लगा, वे चाहते हैं कि श्रीरामचरितमानस का शब्दानुवाद हो। यह बात मेरे मन में बैठ गयी। 5 दिसंबर 2009 की मध्य रात्रि को जब गुरुदेव महासमाधि में लीन हुए, रात्रि में 2 बजे मेरी नींद अचानक खुल गई। उठकर थोड़ी देर ध्यान किया। उसके बाद यह कार्य मेरे लिये श्री गुरुदेव का सेवा कार्य बन गया।

स्वामी चिन्मयानन्द जी के वरिष्ठ शिष्य स्वामी शंकरानन्द जी, कानपुर आश्रम में रामचरितमानस के एक-एक दोहे पर एक घंटे का प्रवचन दिया करते थे। उनके उपलब्ध प्रवचनों को आधार बनाकर मैंने नोट तैयार किया। स्वामी निरंजनानन्द जी से जब आशीर्वाद और मार्गदर्शन का निवेदन किया तो उन्होंने कहा, कार्य अच्छा है, इसे इतना सरल लिखो कि अनपढ़ व्यक्ति भी समझ जाये। बस फिर क्या था! स्वामीजी की प्रेरणा से सरलीकरण, संपादन, शीर्षक, उपशीर्षक बनते चले गये। स्वामीजी ने कहा कि एक-एक काण्ड लिखते जाओ, हम प्रकाशित करते जायेंगे। सबसे पहले सुंदरकाण्ड तैयार हुआ जिसमें हुनमान जी के सुंदर सेवा कार्य का वर्णन है। गुरु प्रेरणा से अब

बालकाण्ड को पाँच भाग में तैयार किया गया है जिसमें श्रीरामचरितमानस की महिमा, शिव-पार्वती विवाह, राम-अवतार के कारणों का वर्णन, बाल लीला एवं राम-सीता विवाह का सरस एवं सुन्दर वर्णन किया गया है।

गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित श्रीरामचरितमानस महाकाव्य है। यह सरस है, इसमें मधु की मिठास है। हम अपनी कार्य सिद्धि के लिए बिना मिठास के जल्दी-जल्दी पाठ कर लेते हैं। राग से, भाव से, रस लेते हुए इसे पढ़ें। आँखों में प्रेम के अश्रु आयेंगे, शरीर रोमांचित हो जाएगा। यह मात्र पुस्तक नहीं है, इसमें अध्यात्म, ज्ञान, भक्ति और प्रेम के साथ-साथ पारिवारिक, व्यवहारिक एवं सामाजिक शिक्षा भी है। यह इतिहास भी है, भूगोल भी है, राजनीति और कूटनीति की शिक्षा भी है। यह हिंदी साहित्य की उच्चतम प्रस्तुति है।

–अवलोकितेश्वर

तुम भगवान पर अविश्वास कर सकते हो। तुम्हें राम के अस्तित्व पर प्रश्न हो सकता है। सब ठीक है, पर मैं भगवान के बारे में नहीं, मैं बोल रहा हूँ नाम के बारे में। नाम पर कभी शंका मत करना। जब राम का नाम लेते हो तो तुम्हारा मन, तुम्हारा हृदय, तुम्हारा पूरा जीवन ऐसे धुल जाता है, जैसे राम का नाम डिटरजेंट पाउडर हो। यह भगवान का नाम मामूली चीज नहीं है। यह भगवान का नाम आत्मबम है। तुम्हारे अंदर में जितनी माया, मलिनता, कोढ़, गंदगी, भय, निराशा, जितनी भी आसुरी शक्तियाँ हैं सबको समाप्त कर देगा। मेरा कहना है कि रोज जब भी तुमको समय मिले भगवान का नाम जपो। 1 घण्टा जपो, 2 घण्टा जपो। समय मिले तो कभी 1 दिन कभी 2 दिन कभी 9 दिन या साल भर का अनुष्ठान करो। यही एकमात्र रास्ता है।

– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

बालकाण्ड – 3

10 मुख्य शीर्षकों द्वारा संक्षिप्त प्रस्तुतीकरण

1. शिव से प्रेम करें तब राम प्रसन्न होते हैं

(दोहा 104 से 105)

प्रयागराज में भरद्वाज मुनि, याज्ञवल्क्य जी से रामकथा सुनाने का आग्रह करते हैं, पर वे शिव-कथा सुनाना प्रारंभ कर देते हैं। कथा के बाद एक रहस्य बताते हैं कि राम-कथा के पहले शिव-कथा कहकर यह देखें कि शिव में प्रेम है कि नहीं, यदि है तभी रामकथा सुनायें। शिव में प्रेम होना ही राम की भक्ति का लक्षण है। भरद्वाज मुनि ने प्रेम से शिव-कथा सुनी, इसलिये अब राम-कथा सुनायेंगे। तुलसीदास जी ने इस नियम का पालन करते हुए प्रत्येक काण्ड के प्रारंभ में मंगलाचरण में शिव स्तुति गायी है।

2. पार्वती शिव से रामकथा सुनाने की विनती करती हैं

(दोहा 106 से 111)

कैलास पर्वत पर एक विशेष प्रकार का बरगद का वृक्ष है, जिसके नीचे शिव जी पद्मासन में शांत बैठे हैं, इस प्रसंग में उनके स्वरूप का सुंदर वर्णन है, जिसका स्मरण मन में करते रहना चाहिये। पार्वती जी भी वहाँ पहुँचती हैं, शिव उन्हें आदर के साथ अपनी बाँयी तरफ बैठा लेते हैं। शिव की महिमा कहकर, पार्वती जी अपने पूर्व जन्म की चर्चा करती हैं। कहती हैं, मुझे अब भी यह भ्रम है कि जो राम ब्रह्म हैं क्या वे ही दशरथ के पुत्र हैं, इसलिये आप राम-कथा विस्तार से सुनाकर हमारे अज्ञान व भ्रम को दूर करने की कृपा करें। ब्रह्म क्या है, जीव क्या है, दोनों में क्या संबंध है, शिव जी यह बात समझाते हैं। प्रभु राम का वास्तविक स्वरूप है सत्, चित्त व आनंद, पर जब लीला करते हैं तो विभिन्न रूप या आकार धारण कर लेते हैं। जैसे सीता जी के वियोग में

रो रहे हैं तो यह उनका मनुष्य लीला का रूप है, पर उनका स्वरूप उस समय भी सत्, चित्त व आनंद का रहता है। ये सब बातें सुनकर पार्वती जी के शोक व भ्रम दूर हो गये, वे प्रसन्न होकर कहती हैं कि अब मुझे अवतार लेने का कारण बताइये।

3. शिव-गीता

(दोहा 112 से 120)

रामकथा सुनाने की विनती को सुनकर शिव जी के मानस पटल पर रामचरित्र उभर आते हैं, प्रभु राम के दर्शन हो जाते हैं, शरीर पुलकित है, आँखों में अश्रु हैं। शिव जी रामकथा सुनाने के पहले जो कहते हैं, उसका वर्णन तुलसीदास जी ने 9 दोहों मे किया है। यह शिव-गीता भी कहलाती है। इस प्रसंग की प्रत्येक बात को बहुत सावधानीपूर्वक सुनकर समझने का प्रयास करना चाहिये।

4. शिव जी राम-अवतार के कारणों का वर्णन करते हैं

(दोहा 121 से 124)

जैसे सरोवर में चार घाट होते हैं वैसे श्रीरामचरितमानस में चार संवाद हैं, चार श्रोता हैं व चार वक्ता हैं। प्रथम घाट में तुलसीदासजी की कथा चल रही है, श्रोता सज्जन लोग हैं, स्थान अयोध्या है। दूसरे घाट में वक्ता याज्ञवल्क्य मुनि हैं, श्रोता भरद्वाज मुनि हैं और स्थान है तीर्थराज प्रयाग। इस प्रसंग से तीसरे घाट की कथा प्रारंभ होती है जिसमें वक्ता हैं शंकर जी, श्रोता हैं पार्वती जी और स्थान कैलास पर्वत है। पार्वती जी के पूछने पर शिव जी प्रभु राम के अवतार लेने के अनेक कारणों का वर्णन करते हैं, तीन कल्पों में अवतार लेने की कथाओं का विस्तार से वर्णन है– 1. नारद जी के कारण 2. मनु-शतरूपा के वरदान के कारण 3. राजा प्रतापभानु को श्राप के कारण। दो कल्पों का संक्षिप्त वर्णन है– 4. जय-विजय के कारण 5. जलंधर की पत्नी के कारण।

5. नारद-मोह की कथा

(दोहा 125 से 140)

हिमालय की सुंदर गुफा के पास बहती हुई गंगा जी के पवित्र वातावरण को देखकर नारद जी वहीं रहकर भगवान का स्मरण करने लगते हैं। उनकी

समाधि की उच्च अवस्था देखकर इन्द्र भयभीत होकर कामदेव को समाधि भंग के लिये भेजता है, जो सारे प्रयास करके हार जाता है। नारद जी पर न काम का प्रभाव हुआ न उन्हें गुस्सा आया। पर काम-क्रोध जीतने का अहंकार आ गया। अहंकार आते ही भगवान का स्मरण त्याग करके शंकर जी व विष्णु जी को अपनी गुणगाथा बताने लगे। विष्णु जी ने अपने भक्त का अहंकार समाप्त करने के लिये, ऐसी माया रच दी कि नारद जी में काम-क्रोध दोनों आ गये। क्रोध में विष्णु जी को श्राप दे देते हैं। फिर नारद जी को अपनी भूल का अहसास हो जाता है, क्षमा माँगते हैं, भगवान उन्हें वर देते हैं कि अब तुम्हें हमारी माया कभी परेशान नहीं करेगी। यही हम सबके साथ होता है, हमें अपने अच्छे होने का अहंकार जल्दी आ जाता है, इसके आते ही हमारे अंदर की वे सब अच्छाइयाँ नष्ट हो जाती हैं। इस प्रसंग का पाठ करते समय नारद जी का स्मरण करें, बार-बार पाठ से चित्त में इतना अधिक प्रभाव होगा कि अच्छे होने का अहंकार छूटेगा और भगवान की भक्ति मिलेगी।

6. मनु-शतरूपा की कथा

(दोहा 141 से 152)

स्वामी सत्यानंद जी कहते हैं कि जीवन एक सतत् यात्रा है, इसके लिये एक समयसारिणी आवश्यक है। रामचरितमानस मात्र धर्मग्रंथ नहीं है, यह जीवन की एक समयसारिणी है। इस प्रसंग में यह बताया है कि गृहस्थ जीवन के कर्त्तव्यों को पूरा करने के बाद, मृत्यु से पहले व्यक्ति को कैसे जीवन जीना चाहिये। प्रभु राम के अवतार लेने के कारण की यह कथा इतनी महत्त्वपूर्ण है कि शिव जी स्वयं विस्तार से पार्वती जी को सुनाते हैं। बुढ़ापे में कैसे रहना चाहिये, कैसे सादा भोजन करके भगवान का स्मरण करना चाहिये। जीव के जन्म व पुनर्जन्म का भी वर्णन है। इस प्रसंग में तुलसीदास जी ने राम जी के सिर से लेकर पैर तक के दिव्य सौंदर्य का वर्णन किया है। मनु-शतरूपा ने गृहस्थ जीवन का स्वेच्छा से त्याग कर, कठोर तप करके, परब्रह्म राम व सीता के साक्षात् दर्शन किये, फिर पुत्र रूप में भगवान को ही माँग लिया। अयोध्या में मनु दशरथ बने, शतरूपा कौसल्या बनीं, पुत्र राम बनकर प्रभु ने अवतार लिया। इसका प्रेमपूर्वक व आदर के साथ पाठ, राम के सुंदर शरीर का दर्शन मन में तो अवश्य करा देगा।

7. राजा प्रतापभानु की कथा

(दोहा 153 से 175)

राजा प्रतापभानु प्रजापालक है, विश्वविजय के बाद भी संयम से रहता है, गुरु व विप्र का सेवक है, दानी है, वेद-पुराण सुनता है, सभी यज्ञों को निष्काम भाव से भगवान को अर्पित करके करता है। ये सब कार्य, मंत्री धर्मरुचि के कहे अनुसार करता है। मंत्री बुद्धिमान है और 'हरि पद प्रीती' है। तुलसीदास जी राजा के लिये यह शब्द कहीं नहीं कहते। यह बात समझने की है। भगवान के चरणों में प्रेम न होने से राजा, अपने शरीर, राजा के पद, यश, कीर्ति को ही सबकुछ मानने लगता है। ऐसे व्यक्ति के लिये 'मूढ़' शब्द का प्रयोग किया है। कपटी मुनि से मुलाकात होने पर लालच में उसे ही गुरु बनाकर सदैव जीवित रहने, सदैव युवा रहने, सदा राज्य बना रहने का असंभव वरदान माँग लेता है। अपने स्वार्थ के लिये हम लोग भी कपटी लोगों को अपना मार्गदर्शक बना लेते हैं। योजना के अनुसार विप्रों को वश में करने लिये राजा उन्हें भोजन के लिये आमंत्रित करता है, कपटी मुनि मायावी कालकेतु भोजन में माँस मिलवा देता है। विप्र लोग नाराज होकर राजा को निशाचर होने का श्राप दे देते हैं। निशाचर मायने अपने स्वार्थ के लिये दूसरों का धर्म नष्ट करो, उन्हें कष्ट पहुँचाओ, अनुचित कार्य करो। यहाँ पर राजा निर्दोष था पर श्राप क्यों मिला? तो कहते हैं 'भावी बस'। राजा ने गलत कामनायें की, कपटी का साथ किया, बुद्धिमान मंत्री से सलाह नहीं ली, दूसरों को वश में करने की अनुचित योजना बनाई, इन सब कर्मों के कारण उसका अगला जन्म निशाचर रूप में होना निश्चित हो गया। यह कथा कठिन है, इसमें समझने के लिये शब्दों के अर्थ व उनके पीछे के भाव को समझने का प्रयास करें। बार-बार इसका पाठ, जीवन के प्रति हमारे सोचने के तरीके को ही बदलकर, सुख, शांति व आनंद की अनुभूति करा देगा।

8. रावण, लंका, रावण-राज्य

(दोहा 176 से 182)

तुलसीदास जी प्रतापभानु की कथा से रावण की कथा को जोड़ देते हैं। इस प्रसंग में इस बात को बहुत ही सुंदर तरीके से समझाया है कि एक जन्म की वासना दूसरे जन्म तक कैसे जाती है। राजा प्रतापभानु सदैव राजा बना

रहकर जीवित रहना चाहता था, मृत्यु के बाद जब रावण बनकर जन्मा तो ब्रह्मा जी से फिर न मरने का वरदान माँग लेता है। धर्मरुचि को हरि चरणों में प्रेम था, विभीषण के रूप में जन्म लेकर वरदान में भगवान के चरणों में प्रेम ही माँगता है। रावण राज्य कैसा होता है, उसका चित्रण किया गया है। वह सबसे झगड़ा करता है, लूट-पाट करता है, दूसरों के राज्यों में, दूसरे के घरों में जबरदस्ती कब्जा करता है। सब को जीतकर उनकी कन्याओं को लाकर ब्याह रचा लेता है। इतना सब करने के बाद उसे समझ में आता है कि इस निशाचरी राज्य को सदैव बनाये रखने में धर्म बहुत बड़ी बाधा है। धर्म का आधार गाय, विप्र, वेद, पुराण, यज्ञ-हवन, जप, योग हैं। इन सबको जड़ से समाप्त करने के लिये पूरी राक्षसी सेना सहित स्वयं भी लग जाता है।

9. देवता भगवान से अवतार की प्रार्थना करते हैं

(दोहा 183 से 186)

रावण के घोर अत्याचार से जब धर्म समाप्त होने लगता है तो पृथ्वी व्याकुल होकर गाय का रूप धारण करके देवताओं के पास जाती है। वे समस्या का समाधान नहीं कर पाते, तब सब मिलकर ब्रह्मा जी के पास जाते हैं। वे भी अपने को असमर्थ पाकर कहते हैं इस समस्या का समाधान तो भगवान ही कर पायेंगे। सब सोचते हैं कि भगवान से मिलने कहाँ जायें, शिव जी सलाह देते हैं कि वे तो सब जगह हैं, प्रेम से बुला लो यहीं आ जायेंगे। ब्रह्मा जी विनम्रता से, एकाग्रता से प्रेम व पूरे विश्वास के साथ विष्णु जी की स्तुति करते हैं। इस प्रसंग में यह बताया है कि भगवान की स्तुति हम कैसे करें व स्तुति में क्या कहें। भगवान के सगुण, निर्गुण, ईश्वर–तीनों रूपों की महिमा बताकर प्रार्थना करते हैं। जितनी अधिक महिमा कहेंगे प्रार्थना उतनी शीघ्रता से प्रभावी होती है।

10. नर रूप में राम व वानर रूप में देवों का अवतार

(दोहा 187 से 188)

ब्रह्मा जी की प्रेम भरी प्रार्थना सुनकर भगवान आकाशवाणी करते हैं कि हम मनुष्य बनकर, चार भाइयों के रूप में अवतार लेंगे, निशाचरों का विनाश करके, मुनियों, देवताओं, भक्तों व धर्म की रक्षा करेंगे। अवतार

इसलिये भी लेंगे कि कश्यप-अदिति को हम पुत्र बनकर आने का वरदान पहले ही दे चुके हैं। वे अयोध्या में दशरथ-कौशल्या बन गये हैं, उन्हीं के यहाँ अवतार लेंगे। एक कारण और बताते हैं कि नारद के श्राप को सच करना है, इसलिये हमारी परम शक्ति भी अवतार लेंगी। ब्रह्मा जी देवताओं से कहते हैं कि प्रभु के कार्य में सहायक बनने के लिये तुम लोग वानर बनकर अवतार लो। इस प्रकार रावण को मनुष्य व वानर मारेंगे, उसकी तैयारी शरू हो गई।

बालकाण्ड – 3

राम अवतार के कारणों का वर्णन

1. शिव से प्रेम करें तब राम प्रसन्न होते हैं

(दोहा 104 से 105)

प्रयागराज में भरद्वाज मुनि, याज्ञवल्क्य जी से राम-कथा सुनाने का आग्रह करते हैं, पर वे शिव-कथा सुनाना प्रारंभ कर देते हैं। कथा के बाद एक रहस्य बताते हैं कि राम-कथा के पहले शिव-कथा कहकर यह देखें कि शिव में प्रेम है कि नहीं, यदि है तभी राम-कथा सुनायें। शिव में प्रेम होना ही राम की भक्ति का लक्षण है। भरद्वाज मुनि ने प्रेम से शिव-कथा सुनी, इसलिये अब राम-कथा सुनायेंगे। तुलसीदास जी ने इस नियम का पालन करते हुए प्रत्येक काण्ड के प्रारंभ में मंगलाचरण में शिव स्तुति गायी है।

शिव-कथा सुनकर भरद्वाज मुनि रोमांचित, आँखों में अश्रु

संभु चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुखु पावा ॥104:1॥
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी ॥104:2॥
प्रेम बिबस मुख आव न बानी। दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी ॥104:3॥
अहो धन्य तव जन्मु मुनीसा। तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा ॥104:4॥

संभु चरित सुनि सरस सुहावा = शिव जी की रस से परिपूर्ण सुंदर कथा को सुनकर, *भरद्वाज मुनि अति सुखु पावा* =भरद्वाज मुनि को बहुत अच्छा लगा, *बहु लालसा कथा पर बाढ़ी* = आगे कथा सुनने की और इच्छा होने लगी, *नयनन्हि नीरु* = आँखों में अश्रु आ गये, *रोमावलि ठाढ़ी* = शरीर रोमांचित हो गया, *प्रेम बिबस मुख आव न बानी* = प्रेमवश मुख से वचन नहीं निकलते, *दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी* = यह दशा देखकर ज्ञानी मुनि याज्ञवल्क्य प्रसन्न

हो गये, *अहो धन्य तव जन्मु मुनीसा* = कहते हैं कि हे मुनि! तुम्हारा जन्म धन्य है, *तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा* = तुम्हें गौरीपति प्राणों के समान प्रिय हैं।

याज्ञवल्क्य जी से शिव जी की सुंदर, काव्य के नौ रसों से परिपूर्ण कथा को सुनकर भरद्वाज जी में तीन बाते हुईं– 1. प्रेम व भक्ति के कारण आँखों में अश्रु आ गये, 2. शरीर रोमांचित हो गया, रोयें खड़े हो गये, 3. गला बैठ गया, बोल नहीं पा रहे हैं। इन सबका असर यह हुआ कि उन्हें और कथा सुनने की लालसा होने लगी। याज्ञवल्क्य जी, भरद्वाज जी की यह दशा देखकर हर्षित होकर कहते हैं, हे मुनि! तुम धन्य हो, तुम्हारा जीवन सफल हो गया, तुम्हें गौरीपति प्राणों के समान प्रिय हैं। कथा सुनने व सुनाने का यही तरीका है, हमारे अंदर भी रसों का संचार हो, आनंद व प्रसन्नता आये, प्रेम के अश्रु आयें, तब समझें हमने ठीक से कथा सुनी है।

राम-भक्त का लक्षण है शिव में प्रेम होना

सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं ॥104:5॥
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू ॥104:6॥

सिव पद कमल = शिव के चरण-कमल में, *जिन्हहि रति नाहीं* = जिन्हें प्रेम नहीं है, *रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं* = वे प्रभु राम को स्वप्न में भी अच्छे नहीं लगते हैं, *बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू* = विश्वनाथ के चरणों में निश्चल प्रेम का होना ही, *राम भगत कर लच्छन एहू* = राम की भक्ति का लक्षण है।

याज्ञवल्क्य जी स्पष्ट कहते हैं कि यदि आप चाहते हो कि राम आपसे प्रेम करें, उनकी भक्ति मिले तो पहले शिव जी के चरणों में निश्चल प्रेम भाव को विकसित करें। यह बहुत बड़ा रहस्य है कि भक्त तो है राम का, पर प्रेम करना है शिव से। जो इस रहस्य को समझ गया, समझो राम उस पर प्रसन्न हो गये। बिना शिव से प्रेम किये राम आपको कभी प्रेम नहीं कर सकते हैं।

राम को शिव बहुत प्रिय तो शिव को राम

सिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी ॥104:7॥
पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहि प्रिय भाई ॥104:8॥

सिव सम को = शिव के समान भला कौन है? *रघुपति ब्रतधारी* = जो राम की भक्ति को धारण करें, *बिनु अघ तजी सती असि नारी* = जिन्होंने बिना पाप के सती जैसी स्त्री को त्यागने की, *पनु करि* = प्रतिज्ञा करके, *रघुपति भगति देखाई* = राम की भक्ति को दिखा दिया, *को सिव सम रामहि प्रिय भाई* = भाई अरे! शिव के समान राम को और कौन प्यारा है?

शंकर जी के समान भला राम को और कौन प्रिय हो सकता है, जिन्होंने सती जैसी अपनी पत्नी का त्याग करके, राम के प्रति भक्ति को दिखा दिया। जैसे किसी माँ को अपना बच्चा बहुत प्यारा हो, हम उस बच्चे को प्यार करें तो उसकी माँ हमें भी चाहने लगेगी। यही बात यहाँ समझने की है।

शिव-प्रेम में तुम पास, अब राम-कथा सुनायेंगे

प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित बूझा मरमु तुम्हार ।
सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त बिकार ॥दोहा 104॥

प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित = पहले मैंने शिव जी की कथा कहकर, *बूझा मरमु तुम्हार* = तुम्हारे प्रेम को समझ लिया, *सुचि सेवक तुम्ह राम के* = तुम तो राम के पवित्र सेवक हो, *रहित समस्त बिकार* = तुम्हारे अंदर विकार नहीं है।

मैं जाना तुम्हार गुन सीला। कहउँ सुनहु अब रघुपति लीला ॥105:1॥
सुनु मुनि आज समागम तोरें। कहि न जाइ जस सुखु मन मोरें ॥105:2॥

मैं जाना तुम्हार गुन सीला = मैंने तुम्हारे शील व गुण को समझ लिया है, *कहउँ सुनहु अब रघुपति लीला* = अब राम के लीला की कथा कहता हूँ, तुम सुनो, *सुनु मुनि आज समागम तोरें* = हे मुनि! सुनो, आज तुम्हारे मिलने से, *कहि न जाइ जस सुखु मन मोरें* = मैं अपने मन के आनंद का वर्णन नहीं कर सकता हूँ।

याज्ञवल्क्य जी कहते हैं– हे मुनि! तुम्हारे मन में राम के प्रति कितनी भक्ति है यह जानने के लिये मैंने पहले शिव जी की कथा कही है। तुम प्रेम की परीक्षा में पास हो गये हो। तुम्हारे अंदर विकार नहीं है, तुम शीलवान् व गुणवान् हो। भरद्वाज मुनि ने कहा था राम कथा सुनायें पर याज्ञवल्क्य जी शिव-कथा सुनाने लगे, जिसे वे प्रेम से सुनते हैं, उनकी बात नहीं काटते, यही शील है। कहाँ,

कैसे व्यवहार करना चाहिये यह शील है। याज्ञवल्क्य जी कहते हैं हम तुसमे मिलकर बहुत प्रसन्न हैं, अब राम-कथा सुनाता हूँ, जिसे तुम सुनो।

शिव व राम का स्मरण करके राम-कथा सुनायेंगे

राम चरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा ॥105:3॥
तदपि जथाश्रुत कहउँ बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी ॥105:4॥

राम चरित = राम जी के चरित्र, *अति अमित मुनीसा* = हे मुनीश्वर! अपार हैं, *कहि न सकहिं* = जिसका वर्णन नहीं कर सकते हैं, *सत कोटि अहीसा* = सौ करोड़ शेषनाग भी, *तदपि जथाश्रुत* = फिर भी जैसा वेदों में कहा है, *कहउँ बखानी* = उसी का मैं वर्णन करुँगा, *सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी* = शिव व राम का स्मरण करके।

याज्ञवल्क्य जी कहते हैं हे मुनीश्वर! प्रभु राम के चरित्र तो अनंत हैं, कोटियों शेषनाग भी उनका पूरा वर्णन नहीं कर सकते हैं। परंतु जैसा शास्त्रों व वेदों में वर्णित है, वैसा हम सुनायेंगे। यह नियम है कि प्रभु राम की कथा कहने के पहले शंकर जी की वंदना करें, इसलिये तुलसीदास जी प्रत्येक काण्ड के मंगलाचरण में पहले शंकर जी की वंदना करते हैं।

राम की कृपा से ही सरस्वती हृदय में आकर कथा कहलवाती हैं

सारद दारुनारि सम स्वामी। रामु सूत्रधर अंतरजामी ॥105:5॥
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी ॥105:6॥
प्रनवउँ सोइ कृपाल रघुनाथा। बरनउँ बिसद तासु गुन गाथा ॥105:7॥

सारद = सरस्वती जी, *दारुनारि सम* = कठपुतली के समान हैं, *स्वामी रामु सूत्रधर अंतरजामी* = अंतर्यामी प्रभु श्रीराम उसके सूत्रधार हैं, *जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी* = अपना भक्त समझकर जिसके ऊपर कृपा करते हैं, *कबि उर अजिर* = उस कवि के आँगन के समान हृदय में, *नचावहिं बानी* = सरस्वती को नचाते रहते हैं, *प्रनवउँ सोइ कृपाल रघुनाथा* = उन्हीं कृपालु श्रीराम को मैं प्रणाम करके, *बरनउँ बिसद तासु गुन गाथा* = उन्हीं के गुणों की विशाल गाथा का वर्णन करता हूँ।

कठपुतली में एक धागा बँधा रहता है, परदे के पीछे से एक व्यक्ति उस धागे को पकड़कर, जैसा चाहे वैसा कठपुतली को नचाता रहता है, देखने वाले को लगता है यह अपने से नाच रही है। इसी प्रकार कथा कहने के लिये सरस्वती का हृदय में आना आवश्यक है, जो शब्दों को छाँटकर जीभ तक लाकर बुलवाती हैं। सरस्वती आये कैसे? कहते हैं जिस कवि पर राम की कृपा होती है उसके हृदय के आँगन में प्रभु राम सूत्रधार बनकर, सरस्वती को कठपुतली की तरह नचाते रहते हैं। देखने वाले को लगता है, कितनी सुंदर कथा ये कह रहे हैं, पर राम जैसा चाहते हैं वैसी कथा सरस्वती जी, कथा-वाचक के मुँह से कहलवाती रहती हैं। उन्हीं कृपालु राम को प्रणाम करके उन्हीं की विशाल कथा कहेंगे। तुलसीदास जी का संकेत है कि उनके हृदय में रामकृपा से सरस्वती बैठी हैं, जिसके कारण इतनी सुंदर रचना लिख रहे हैं।

2. पार्वती शिव से रामकथा सुनाने की विनती करती हैं

(दोहा 106 से 111)

कैलास पर्वत पर एक विशेष प्रकार का बरगद का वृक्ष है, जिसके नीचे शिव जी पद्मासन में शांत बैठे हैं, इस प्रसंग में उनके स्वरूप का सुंदर वर्णन है, जिसका स्मरण मन में करते रहना चाहिये। पार्वती जी भी वहाँ पहुँचती हैं, शिव उन्हें आदर के साथ अपनी बाँयी तरफ बैठा लेते हैं। शिव की महिमा कहकर, पार्वती जी अपने पूर्व जन्म की चर्चा करती हैं। कहती हैं, मुझे अब भी यह भ्रम है कि जो राम ब्रह्म हैं क्या वे ही दशरथ के पुत्र हैं, इसलिये आप राम-कथा विस्तार से सुनाकर हमारे अज्ञान व भ्रम को दूर करने की कृपा करें। शिव जी ब्रह्म क्या है, जीव क्या है, दोनों में क्या संबंध है, यह बात समझाते हैं। प्रभु राम का वास्तविक स्वरूप है सत्, चित्त व आनंद, पर जब लीला करते हैं तो विभिन्न रूप या आकार धारण कर लेते हैं। जैसे सीता जी के वियोग में रो रहे हैं तो यह उनका मनुष्य लीला का रूप है पर उनका स्वरूप उस समय भी सत्, चित्त व आनंद का रहता है। ये सब बातें सुनकर पार्वती जी के शोक व भ्रम दूर हो गये, वे प्रसन्न होकर कहती हैं कि अब मुझे अवतार लेने का कारण बताइये।

कैलास पर्वत पर शिव-पार्वती रहते हैं

परम रम्य गिरिबरु कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू ॥105:8॥

परम रम्य गिरिबरु कैलासू = कैलास पर्वत बहुत ही सुंदर है, *सदा जहाँ सिव उमा निवासू* = जहाँ शिव व पार्वती सदा निवास करते हैं।

सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किंनर मुनिबृंद ।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सिव सुखकंद ॥दोहा 105॥

सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किंनर मुनिबृंद = सिद्ध; तपस्वी; योगी; देवता; किन्नर और मुनियों के समूह, *बसहिं तहाँ* = उस पर्वत पर रहते हैं, *सुकृती सकल* = वे सब बहुत पुण्यवान् हैं, *सेवहिं सिव सुखकंद* = आनंद के कंद शिव जी की सेवा करते हैं।

हरि हर बिमुख धर्म रति नाहीं। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाहीं ॥106:1॥

हरि हर बिमुख = जो लोग विष्णु व शिव को नहीं मानते, *धर्म रति नाहीं* = जिनकी धर्म मे रुचि नहीं है, *ते नर तहँ* = वे लोग वहाँ, *सपनेहुँ नहिं जाहीं* = स्वप्न में भी नहीं जाते हैं।

हिमालय में एक बहुत सुंदर पर्वत है, जिसका नाम कैलास है, यहीं पर शिव व पार्वती निवास करते हैं। यहाँ मानसरोवर भी है, तीर्थयात्री इस स्थान पर जाते हैं। इस पर्वत पर और कौन रहते हैं? बहुत पुण्यवान् लोग जैसे सिद्ध, तपस्वी, योगी, देवता, किन्नर और मुनि। ये वहाँ क्या करते हैं? शिव जी की सेवा करके आनंद पाते हैं। कौन वहाँ पहुँच नहीं सकता? जिनकी विष्णु जी, शिव जी में श्रद्धा नहीं और जो धर्म का पालन नहीं करते।

कैलास में विशेष प्रकार का विशाल बरगद का वृक्ष है

तेहि गिरि पर बट बिटप बिसाला। नित नूतन सुंदर सब काला ॥106:2॥
त्रिबिध समीर सुसीतलि छाया। सिव बिश्राम बिटप श्रुति गाया ॥106:3॥

तेहि गिरि पर = उस पर्वत पर, *बट बिटप बिसाला* = विशाल बरगद का पेड़ है, *नित नूतन* = जो सदा नया रहता है, *सुंदर सब काला* = प्रत्येक मौसम में सुंदर रहता है, *त्रिबिध समीर* = वहाँ तीनों प्रकार की वायु बहती है, *सुसीतलि छाया* = उसकी छाया में ठंडक रहती है, *सिव बिश्राम बिटप* = शिव जी उसी वृक्ष के नीचे विश्राम करते हैं, *श्रुति गाया* = वेदों में ऐसा कहा गया है।

कैलास पर्वत के ऊपर एक विशाल बरगद का वृक्ष है। उसकी कुछ विशेषताये हैं जैसे वह सदैव हरा-भरा रहता है, पत्ते कभी सूखते नहीं, नये-नये पत्ते आते रहते हैं, प्रत्येक मौसम में वह सुंदर रहता है। वहाँ पर शीतल, मंद व सुंगधित वायु चलती रहती है। वृक्ष की छाया में सदैव शीतलता रहती है। श्रुतियाँ कहती हैं कि उसी बरगद के पेड़ की छाया में शंकर जी विश्राम करते हैं।

शिव जी बरगद के वृक्ष के नीचे बैठे

एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। तरु बिलोकि उर अति सुखु भयऊ ॥106:4॥
निज कर डासि नागरिपु छाला। बैठे सहजहिं संभु कृपाला ॥106:5॥

एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ = एक बार शिव जी उस पेड़ के नीचे गये, *तरु बिलोकि* = वृक्ष को देखकर, *उर अति सुखु भयऊ* = उनके मन में बहुत आनंद हुआ, *निज कर* = अपने हाथों से, *डासि* = बिछाया, *नागरिपु छाला* = बाघ की छाल, *बैठे सहजहिं संभु कृपाला* = उस पर सहज ही कृपालु शिव जी बैठ गये।

एक बार शंकर जी उस वट वृक्ष के नीचे गये। उन्हें वहाँ बहुत अच्छा लगा। उन्होंने अपने हाथों से बाघम्बर बिछाया और सहज रूप से कृपालु होकर बैठ गये। ये तपस्वी के लक्षण हैं, शिव जी तपस्वी हैं।

शांतरस शिव के सुंदर रूप का स्मरण कर अपने को धन्य करें

कुंद इंदु दर गौर सरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा ॥106:6॥
तरुन अरुन अंबुज सम चरना। नख दुति भगत हृदय तम हरना ॥106:7॥
भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी। आननु सरद चंद छबि हारी ॥106:8॥

कुंद = सफेद सुगंधित पुष्प जैसा, इंदु = चन्द्रमा जैसा, दर = शंख जैसा, *गौर सरीरा* = गौर वर्ण का उनका शरीर है, *भुज प्रलंब* = भुजायें लंबी हैं, *परिधन मुनिचीरा* = मुनियों के समान वस्त्र पहने हैं, *तरुन अरुन अंबुज* = लाल ताजा खिला कमल, *सम चरना* = के समान चरण हैं, *नख दुति* = चरणों के नख दिखाई दे रहे हैं, *भगत हृदय तम हरना* = जो भक्त के हृदय का अंधकार दूर

कर देते हैं, *भुजग भूति भूषन* = सर्प व भभूति ही आभूषण हैं, *त्रिपुरारी* = तीनों पुरों का नाश करने वाले हैं, *आननु* = मुख , *सरद चंद छबि हारी* = शरद के पूर्णिमा के चन्द्रमा की शोभा हरने वाला है।

जटा मुकुट सुरसरित सिर लोचन नलिन बिसाल ।
नीलकंठ लावन्यनिधि सोह बालबिधु भाल ॥दोहा 106॥

जटा मुकुट = जटाओं का मुकुट है, *सुरसरित सिर* = सिर से गंगा जी बह रही हैं, *लोचन नलिन बिसाल* = बड़े नेत्र हैं जो कमल के समान हैं, *नीलकंठ* = गला नीला है, *लावन्यनिधि* = सुंदरता में सरसता है, *सोह बालबिधु भाल* = द्वितीया का चन्द्रमा मस्तक पर शोभायमान है।

बैठे सोह कामरिपु कैसें। धरें सरीरु सांतरसु जैसें ॥107:1॥

बैठे सोह कामरिपु कैसें = कामनाओं के शत्रु शिव जी बैठे हुए कैसे लगते हैं?, *धरें सरीरु सांतरसु जैसें* = जैसे शांत रस ने शरीर धारण कर लिया हो।

वट वृक्ष के नीचे पद्मासन में बैठ हुए शिव जी के शरीर की उपमा तीन वस्तुओं से करते हैं:

1. कुंद का पुष्प– इसके समान शरीर कोमल व सुगंधित है।
2. चन्द्रमा– इसकी तरह प्रकाशवान्, तेजस्वी शरीर है।
3. शंख– इसके समान गोल, सुंदर, मजबूत शरीर है।

शिव जी का रंग गौरवर्ण है। भुजायें लंबी हैं। मुनियों के वस्त्र जैसे बाघम्बर या मृगचर्म पहने हैं। पद्मासन में बैठे हैं, इसलिये तलवे ऊपर की ओर ऐसे दिखते हैं मानो लाल रंग का ताजा खिला हुआ सुशोभित कमल हो। सफेद चमचमाते चरणों के नख भी दिखते हैं, जिनका प्रकाश तो हृदय का अंधकार मिटा देता है मायने अज्ञान को मिटा देता है। शृंगार कैसा है? हाथ में सर्प लपेटे हैं, गले में सर्प पहने हैं, शरीर में भस्म लगी है। मुख की प्रसन्नता व सुंदरता तो शरद-पूर्णिमा के चन्द्रमा से भी बहुत अधिक है। सिर पर जटाओं का मुकुट है, गंगा जी प्रवाहित हैं। मस्तक में द्वितीया का चन्द्रमा चमक रहा है। विशाल नेत्र हैं जो कमल जैसे लगते हैं। गले में गाढ़ा नीलापन झलक रहा है। उनकी सुंदरता में सरसता है, इसे लावण्य कहते हैं। इस स्वरूप में बैठे हुए शिव जी ऐसे लगते हैं मानो शांतरस ने ही शरीर धारण कर लिया हो। शांति में भी रस

है, नीरसता नहीं है। शांति तभी है जब कामनायें नहीं है। शिव जी को कामरिपु यानि कामनाओं का शत्रु भी कहते हैं। वे त्रिपुरारि हैं यानि जागृत, स्वप्न व सुषुप्ति, तीनों अवस्थाओं के पार ले जाने वाले हैं।

पार्वती शिव के पास पहुँचीं, आदर के साथ बाँये तरफ बैठाया

पारबती भल अवसरु जानी। गईं संभु पहिं मातु भवानी ॥107:2॥
जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। बाम भाग आसनु हर दीन्हा ॥107:3॥
बैठीं सिव समीप हरषाई। पूरुब जन्म कथा चित आई ॥107:4॥

पारबती भल अवसरु जानी = पार्वती जी ने अच्छा मौका देखा, *गईं संभु पहिं मातु भवानी* = माँ भवानी शिव जी के पास पहुँचती हैं, *जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा* = पार्वती को आता देख शिव ने उनका बहुत सम्मान किया, *बाम भाग आसनु हर दीन्हा* = शिव ने उनसे अपनी बाँयी तरफ बैठने को कहा, *बैठीं सिव समीप हरषाई* = पार्वती शिव के पास बैठ गयीं व बहुत प्रसन्न हुईं, *पूरुब जन्म कथा चित आई* = उन्हें पूर्व जन्म की घटना स्मरण आ गई।

पार्वती जी ने देखा वट-वृक्ष के नीचे शिव जी बैठे हैं, समाधि नहीं लगी है, अकेले भी हैं। उन्होंने सोचा वाह! क्या सुंदर अवसर है। वे बहुत शीलता से शिव जी के पास जाती हैं। शिव जी ने बहुत आदर किया व अपनी बाँयी तरफ बैठने को कहा। पार्वती बैठकर, बहुत प्रसन्न हुईं। उन्हें पूर्व जन्म की घटना याद आ गई जब शिव जी ने मन में त्याग का संकल्प लेकर सामने बैठने को कह दिया था, तब उन्हें बहुत दु:ख हुआ था। अब बाँयी तरफ बैठाने से खुश हैं।

पार्वती जी शिव की महिमा कहती हैं

पति हियँ हेतु अधिक अनुमानी। बिहसि उमा बोलीं प्रिय बानी ॥107:5॥
कथा सो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैलकुमारी ॥107:6॥
बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी ॥107:7॥
चरु अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पद पंकज सेवा ॥107:8॥

पति हियँ = पति के मन में, *हेतु अधिक* = प्रेम बहुत है, *अनुमानी* = पार्वती ने यह अनुमान लगाया, *बिहसि उमा बोलीं प्रिय बानी* = हँसकर उमा मधुर वचन

में कहती हैं, *कथा सो सकल लोक हितकारी* = जो कथा सारे जगत् के लिये कल्याणकरी हो, *सोइ पूछन चह सैलकुमारी* = उसे शैलकुमारी पूछना चाहती हैं, *बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी* = हे पुरारी! आप जगत् के नाथ हैं और मेरे नाथ भी हैं, *त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी* = तीनों लोकों में आपकी महिमा है, *चरु अरु अचर* = चर और अचर प्राणी, *नाग नर देवा* = नाग; मनुष्य व देवता, *सकल करहिं पद पंकज सेवा* = सभी आपके चरण कमलों की सेवा करते हैं।

प्रभु समरथ सर्बग्य सिव सकल कला गुन धाम ।
जोग ग्यान बैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम ॥दोहा 107॥

प्रभु समरथ सर्बग्य सिव = हे प्रभु आप समर्थ; सर्वज्ञ व कल्याणकारी हैं, *सकल कला गुन धाम* = सब कलाओं व गुणों के आप स्वामी हैं, *जोग ग्यान बैराग्य निधि* = आप योग; ज्ञान व वैराग्य के भण्डार हैं, *प्रनत* = जो आपकी शरण में आता है, *कलपतरु नाम* = उसके लिये आपका नाम ही कल्पवृक्ष के समान है।

शिव जी के वाम भाग में बैठकर, पार्वती ने अनुमान लगाया कि पति के मन में मेरे प्रति बहुत अधिक प्रेम है। हँसकर, मृदुता के साथ कहती हैं कि मैं वह कथा पूछना चाहती हूँ, जो सब लोगों का कल्याण करने वाली हो। आप जगत् के स्वामी के साथ-साथ मेरे भी स्वामी हो। तीनों लोकों में आपकी महिमा है। चर व अचर सभी प्राणी आपके चरण-कमल की सेवा करते हैं। आप सर्वज्ञ, समर्थ, कल्याण करने वाले, सब कलाओं में प्रवीण हैं। आप तो योग, ज्ञान व वैराग्य के भंडार हैं। आपका नाम ही कल्पतरु के समान है, आपकी शरण में आने से सभी तरह की मनोकामनायें पूर्ण होती हैं।

रामकथा कहकर मेरा अज्ञान व भ्रम दूर करें

जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी। जानिअ सत्य मोहि निज दासी ॥108:1॥
तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना ॥108:2॥
जासु भवनु सुरतरु तर होई। सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई ॥108:3॥
ससिभूषन अस हृदयँ बिचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी ॥108:4॥

जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी = हे सुख के राशि शिव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हों, *जानिअ सत्य मोहि निज दासी* = वास्तव में मुझे अपनी दासी समझते हों,

तौ प्रभु = तो हे प्रभु!, *हरहु मोर अग्याना* = मेरे अज्ञान को दूर करिये, *कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना* = प्रभु राम की अनेक प्रकार की कथायें सुनाइये, *जासु भवनु* = जिसका घर, *सुरतरु तर होई* = कल्पवृक्ष के नीचे हो, *सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई* = दरिद्रता से होने वाले दु:ख को क्यों सहेगा? *ससिभूषन अस हृदयँ बिचारी* = हे शशिभूषण! इस प्रकार से अपने मन में विचार करके, *हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी* = हे नाथ! मेरे बहुत भारी भ्रम को दूर करिये।

पार्वती जी बहुत विनम्रता से कहती हैं, हे नाथ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, मुझे अपनी दासी समझते हैं तो प्रभु राम की नाना प्रकार की कथायें सुनायें, जिससे मेरा अज्ञान मिटे, भ्रम दूर हों। जैसे कल्पतरु से जो माँगो सब देता है, कोई उसके नीचे रहकर भी दरिद्र बना रहे उससे बड़ा दुर्भाग्य क्या हो सकता है, इसी प्रकार आपका नाम लेने से अज्ञान मिटता है, आपके पास रहते हुए भी हमारा यदि अज्ञान न मिटे तो हमें धिक्कार है। यह कथा ऐतिहासिक सत्य है, पर इसे सुनने से अज्ञान दूर होता है, मन में हम जो भ्रम पाले रहते हैं वे भी दूर हो जाते हैं।

राम ब्रह्म हैं, तो वे दशरथ-पुत्र कैसे हो सकते हैं? यही भ्रम है

प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी ॥108:5॥
सेस सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना ॥108:6॥
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती ॥108:7॥
राम सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई ॥108:8॥

प्रभु जे मुनि परमारथबादी = हे प्रभु! जो परमार्थ तत्त्व ज्ञानी मुनि हैं, *कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी* = वे कहते हैं राम तो कभी नाश न होने वाला ब्रह्म का नाम है, *सेस सारदा बेद पुराना* = शेषनाग; सरस्वती; वेद व पुराण, *सकल करहिं रघुपति गुन गाना* = सभी राम के गुणों का गान करते रहते हैं, *तुम्ह पुनि राम राम दिन राती* = आप भी दिन-रात राम राम, *सादर जपहु* = आदर के साथ जपते हो, *अनँग आराती* = आप तो कामनाओं को समाप्त करने वाले हो, *राम सो* = ये क्या वही राम हैं? *अवध नृपति सुत सोई* = जो अयोध्या के राजा के पुत्र हुए, *की अज अगुन अलखगति कोई* = या अजन्मा; निर्गुण; अगोचर कोई और राम हैं?

जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि ।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि ॥दोहा 108॥

जौं नृप तनय = यदि वे राजा के पुत्र हैं, *त ब्रह्म किमि* = तो ब्रह्म कैसे हो सकते हैं, *नारि बिरहँ मति भोरि* = वो तो स्त्री के वियोग में दु:खी हो गये थे, *देखि चरित* = उनके ये चरित्र देखकर, *महिमा सुनत* = फिर उनकी यह महिमा सुनकर, *भ्रमति बुद्धि अति मोरि* = मेरी बुद्धि में बहुत भ्रम हो रहा है।

कथा लिखते समय बार-बार प्रश्नोत्तर नहीं किया जाता है, अनुमान लगा लेते हैं, जैसे पार्वती जी ने कहा भ्रम है, शंकर जी ने पूछा होगा कि क्या भ्रम है? तो इन चौपाइयों में पार्वती जी अपने भ्रम का कारण बताती हैं। तत्त्वज्ञानी मुनि कहते हैं कि ब्रह्म का नाम राम है, वेद, पुराण, शेषनाग व सरस्वती राम का गुणगान यह कहकर करते हैं कि वे ब्रह्म हैं। आप भी ब्रह्मस्वरूप ही समझकर राम नाम का जप सदा करते रहते हैं। एक राम और हैं जो अयोध्या में महाराज दशरथ के पुत्र हुए। इस प्रकार दो राम हो गये। अब भ्रम को स्पष्ट करती हैं:

1. दशरथ पुत्र राम का चरित्र देखने से लगता है कि उन्होंने जन्म लिया है, और स्त्री के विरह में विलाप करते हैं। ये तो ब्रह्म के लक्षण नहीं हैं।
2. ब्रह्म वाले राम के बारे में सुनते हैं कि वे अजन्मा हैं, निराकार हैं, अनादि हैं, अगोचर हैं। इस प्रकार इन दोनों राम में तालमेल नहीं बैठता है, किसे सत्य मानें? यही भ्रम हमारी बुद्धि में है।

क्या दशरथ-पुत्र राम और ब्रह्म-राम एक ही हैं? यह समझाइये

जौं अनीह ब्यापक बिभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ ॥109:1॥
अग्य जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू ॥109:2॥

जौं अनीह ब्यापक बिभु कोऊ = क्या इच्छारहित; व्यापक ब्रह्म कोई और है? *कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ* = हे नाथ! मुझे यह समझाकर कहिये, *अग्य जानि* = मुझे अज्ञानी समझकर, *रिस उर* = मन में क्रोध, *जनि धरहू* = नहिं करियेगा, *जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू* = जिस प्रकार से हमारा मोह दूर हो वही करिये।

पार्वती जी स्पष्ट प्रश्न करती हैं कि जिन राम का नाम आप जपते हो, जो व्यापक व अविनाशी हैं, वे कोई और हैं और जिन्होंने अयोध्या में दशरथ

जी के यहाँ जन्म लिया वे दूसरे हैं क्या। क्या निराकार ब्रह्म व सगुण साकार राम एक ही हैं या भिन्न-भिन्न हैं, यह बात अच्छे से समझाकर कहिये। हम तो अज्ञानी हैं, इसलिये हमारे ऊपर गुस्सा मत करियेगा, बस आप वह उपाय करें जिससे हमारा मोह दूर हो।

राम मेरे सामने थे, पर मलिन मन के कारण नहीं पहचानी

मैं बन दीखि राम प्रभुताई। अति भय बिकल न तुम्हहि सुनाई ॥109:3॥
तदपि मलिन मन बोधु न आवा। सो फलु भली भाँति हम पावा ॥109:4॥

मैं बन दीखि राम प्रभुताई = मैंने वन में राम जी की प्रभुता देखी थी, *अति भय बिकल* = पर भय व व्याकुलता के कारण, *न तुम्हहि सुनाई* = आपको नहीं बताया था, *तदपि मलिन मन* = उस समय मलिन मन के कारण, *बोधु न आवा* = हम पहचान नहीं पाये, *सो फलु भली भाँति हम पावा* = उसका परिणाम भी हमने अच्छे से पा लिया है।

पूर्व जन्म की घटना स्मरण करती हैं – जब हम सती थे, वन में राम जी की परीक्षा लेने गये थे, उन्होंने अपनी महिमा दिखाई, हमें चारों तरफ राम, लक्ष्मण, सीता दिखे। उस समय हम डर गये थे, मन में व्याकुलता थी, इसलिये यह बात आपको नहीं बतायी थी। मन मलिन था यानि समझ नहीं थी, इसलिये उस समय भगवान का ज्ञान नहीं हुआ। उस भूल का फल भी भोग लिया है।

भगवान का ज्ञान पाने के लिये चित्त की शुद्धता अनिवार्य

यह चौपाई बहुत महत्त्वपूर्ण है। यदि साक्षात् ब्रह्म हमारे सामने स्वयं आकर खड़ा हो जाये, और कहे कि मैं ही भगवान हूँ, तुम्हारे सामने खड़ा हूँ, तो हम कह देंगे हमें विश्वास नहीं, हम नहीं समझते कि तुम भगवान हो। क्यों? हमारा मन मलिन है, हम अज्ञानी हैं। इसलिये कहते हैं निष्काम कर्म से, जप से, सेवा कार्य से, सत्संग से अपने मन को पहले अच्छे से साफ कर लें।

कुछ संदेह अभी है, पर रामकथा में रुचि है, विस्तृत कथा सुनायें

अजहूँ कछु संसउ मन मोरें। करहु कृपा बिनवउँ कर जोरें ॥109:5॥
प्रभु तब मोहि बहु भाँति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा ॥109:6॥

तब कर अस बिमोह अब नाहीं। रामकथा पर रुचि मन माहीं ॥109:7॥
कहहु पुनीत राम गुन गाथा। भुजगराज भूषन सुरनाथा ॥109:8॥

अजहूँ कछु संसउ मन मोरें = अब भी मेरे मन में कुछ सन्देह है, *करहु कृपा* = आप कृपा करें, *बिनवउँ कर जोरें* = हाथ जोड़ कर विनती करती हूँ, *प्रभु तब मोहि* = हे प्रभु! उस समय भी आपने मुझे, *बहु भाँति प्रबोधा* = बहुत प्रकार से समझाया था, *नाथ सो समुझि* = उसे याद करके, *करहु जनि क्रोधा* = आप गुस्सा मत होइयेगा, *तब कर अस बिमोह अब नाहीं* = मुझे अब पहले जैसा मोह नहीं है, *रामकथा पर रुचि मन माहीं* = मेरे मन में रामकथा के प्रति अब रुचि है, *कहहु पुनीत राम गुन गाथा* = राम जी के गुणों की पवित्र कथा सुनाइये, *भुजगराज भूषन सुरनाथा* = आप तो शेषनाग को आभूषण की तरह धारण करने वाले देवताओं के स्वामी हैं।

बंदउँ पद धरि धरनि सिरु बिनय करउँ कर जोरि ।
बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि ॥दोहा 109॥

बंदउँ पद = चरणों की वंदना करती हूँ, *धरि धरनि सिरु* = पृथ्वी पर सिर टेककर, *बिनय करउँ कर जोरि* = हाथ जोड़कर विनती करती हूँ, *बरनहु रघुबर बिसद जसु* = प्रभु राम का विशाल यश हमें सुनाइये, *श्रुति सिद्धांत निचोरि* = जो वेदों के ज्ञान का सार है।

पार्वती जी कहती हैं मैंने तपस्या की, आपकी कृपा प्राप्त हुई, पर अब भी कुछ संदेह बने हुए हैं। आपने उस समय भी बहुत समझाया था, पर मुझे समझ नहीं आया था, उसे याद करके क्रोध मत करियेगा। क्योंकि, अब वैसा अज्ञान नहीं है, रामकथा में रुचि है, अब आप जो कहेंगे उसे सुनेंगे, समझेंगे। पृथ्वी पर सिर टेक कर शिव जी के चरणों में प्रणाम करती हैं, फिर हाथ जोड़कर कहती हैं, हे नाथ! प्रभु राम के विशद यश का वर्णन करें जो वेदों के ज्ञान का निचोड़ है।

रामचरितमानस पढ़ने के लिये मन थोड़ा तो साफ होना चाहिये

कथा सुनने के लिये चित्त में कुछ तो निर्मलता हो अन्यथा व्यक्ति को कथा में कोई रुचि नहीं होगी, वह सो जायेगा। यदि बुद्धि ठीक नहीं होगी, कथा तो सुनेगा पर मन ही मन सब बातों को काट लेगा, कहेगा बस ये तो ऐसे ही कह

रहे हैं। जब व्यक्ति में बहुत अहंकार होता है तो वह दूसरे की बात सुनता ही नहीं, अपनी ही बात कहता जायेगा। उसे भी कथा सुनने में मन नहीं लगेगा।

शेषनाग विष्णु की शैय्या तो शिव के आभूषण हैं

रामचरितमानस में तुलसीदास जी ने शिव जी के बहुत से नामों को लिखा है, इस ग्रंथ को ध्यान से पढ़ें, शिव नाम का जप भी हो जायेगा। भुजगराज मायने सर्प के राजा, जो शेषनाग हैं, ये हजार फन से भगवान की गुणगाथा गाते रहते हैं। ये विष्णु जी की शैय्या बने हैं और शिव जी के आभूषण हैं, शय्या इस प्रकार इन दोनों के साथ सदा रहते हैं। शिव जी का एक नाम है 'भुजगराज भूषण'।

मुझे आर्त्त अधिकारिणीं समझकर कथा सुनाइये

जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी ॥110:1॥
गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं ॥110:2॥
अति आरति पूछउँ सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया ॥110:3॥

जदपि= यद्यपि, *जोषिता*= स्त्री, *नहिं अधिकारी*= उसे सुनने की अधिकारिणीं नहीं है, *दासी मन क्रम बचन तुम्हारी* = पर मैं आपकी मन; कर्म व वचन से दासी हूँ, *गूढ़उ तत्त्व*= अत्यंत गंभीर बातों को भी, *न साधु दुरावहिं*= साधु लोग छिपाते नहीं हैं, *आरत अधिकारी जहँ पावहिं*= यदि सुनने वाला उसका आर्त्त अधिकारी है, *अति आरति पूछउँ सुरराया*= हे देवताओं के स्वामी मैं बहुत दीनता से पूछती हूँ, *रघुपति कथा कहहु करि दाया*= मुझ पर दया करके प्रभु राम की कथा को सुनाइये।

पार्वती जी कहती हैं, स्त्री होने के कारण मैं इस कथा को सुनने की अधिकारिणीं नहीं हूँ, पर मैं मन, कर्म व वचन से आपकी दासी हूँ, पूर्व जन्म की घटना को स्मरण करके मेरे मन में पश्चात्ताप व दु:ख होता रहता है, इसलिये मैं आर्त्त भी हूँ। इन कारणों से मैं स्त्री होने के बाद भी कथा सुन सकती हूँ। आशय एकदम साफ है, स्त्री हो या पुरुष, यदि कथा में लगाव है, प्रेम है, दीनता है तो उसे कथा अवश्य सुनानी चाहिये। साधु लोग वेद के गूढ़ ज्ञान को ऐसे लोगों को बताते हैं। मुझ पर दया करके प्रभु राम की कथा को सुनाइये।

राम के जिन चरित्रों को सुनना है, उनके नाम बताती हैं

प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी॥110:4॥

प्रथम सो कारन कहहु बिचारी = पहले तो वह कारण विचार करके बताइये, *निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी* = जिसके कारण निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण कर लेता है।

पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा ॥110:5॥
कहहु जथा जानकी बिबाहीं। राज तजा सो दूषन काहीं ॥110:6॥
बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा ॥110:7॥
राज बैठि कीन्हीं बहु लीला। सकल कहहु संकर सुखसीला ॥110:8॥

पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा = फिर राम जी के अवतार की कथा कहिये, *बालचरित पुनि कहहु उदारा* = उनके श्रेष्ठ बालचरित की कथा कहिये, *कहहु जथा जानकी बिबाहीं* = जिस प्रकार जानकी जी से विवाह किया वह बताइये, *राज तजा सो दूषन काहीं* = किस दोष के कारण राज्य त्याग दिया, *बन बसि कीन्हे चरित अपारा* = वन में रहकर उन्होंने जो अपार चरित्र किये, *कहहु नाथ जिमि रावन मारा* = हे तात! जिस प्रकार रावण को मारा वह कथा कहिये, *राज बैठि कीन्हीं बहु लीला* = राज सिंहासन पर बैठकर बहुत सी लीलायें की, *सकल कहहु संकर सुखसीला* = उन सब लीलाओं को, हे सुखनिधान शंकर जी! हमें सुनाइये।

बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम ।
प्रजा सहित रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम ॥दोहा 110॥

बहुरि कहहु करुनायतन = हे कृपाधाम! फिर बताइये, *कीन्ह जो अचरज राम* = जो आश्चर्यजनक कार्य राम जी ने किया, *प्रजा सहित रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम* = किस प्रकार प्रजा सहित वे अपने धाम को चले गये।

पार्वती जी कहती हैं कि पहले यह बतायें कि निर्गुण ब्रह्म ने सगुण शरीर क्यों धारण किया? फिर उसने राम अवतार किस प्रकार लिया? अब पूरी रामकथा की विषय सूची बता देती हैं, जो उन्हें सुननी है। प्रभु राम की बाल लीलायें, सीता जी के साथ विवाह, राज्य त्याग करके वन जाना, वन की लीलायें, रावण को मारने की कथा, अयोध्या वापस आकर राजसिंहासन पर बैठने के

बाद जो लीलायें कीं वह सब बताइये। वह अद्‌भुत चरित भी कहिये जिसमें प्रजासहित राम अपने धाम को चले गये।

तत्त्व-ज्ञान को समझाकर कहने का आग्रह करती हैं

पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी। जेहिं बिग्यान मगन मुनि ग्यानी ॥111:1॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा ॥111:2॥

पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी = हे प्रभु! फिर उस तत्त्व को समझाकर कहिये, *जेहिं बिग्यान मगन मुनि ग्यानी* = जिसमें ज्ञानी व विज्ञानी मुनि मग्न रहते हैं, *भगति ग्यान बिग्यान बिरागा* = भक्ति; ज्ञान; विज्ञान और वैराग्य, *पुनि सब बरनहु सहित बिभागा* = फिर इन सबका विभाग सहित वर्णन कीजिये।

तत्त्व क्या है? उसका स्वरूप क्या है? इसका स्पष्ट रूप से वर्णन करिये ताकि बात हमारी समझ में आ जाये। विज्ञानी मुनि वे हैं जिन्होंने हृदय में साक्षात् परमात्मा का ज्ञान पा लिया है। वे लोग उसी परमात्म तत्त्व में मग्न रहकर, सैदव आनंद का अनुभव करते हुए प्रसन्नचित्त रहते हैं। इस स्थिति को प्राप्त करने के साधन हैं भक्ति, ज्ञान, विज्ञान व वैराग्य। इन सब के और भी विभाग हैं, उन सबका वर्णन करिये। श्रीराम कथा का सार भी यही है।

यदि कुछ पूछने से रह गया हो तो वह भी बताइये

औरउ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका ॥111:3॥
जौं प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल राखहु जनि गोई ॥111:4॥
तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना। आन जीव पाँवर का जाना ॥111:5॥

औरउ राम रहस्य अनेका = राम जी के और भी अनेक छिपे रहस्य हैं, *कहहु* = उन्हें भी बताइये, *नाथ अति बिमल बिबेका* = हे नाथ आपकी बुद्धि तो निर्मल है आप ज्ञानवान् भी हैं, *जौं प्रभु मैं पूछा नहिं होई* = यदि कोई बात मेरे पूछने से रह गयी हो, *सोउ दयाल* = हे दयालु! *राखहु जनि गोई* = उसे भी छिपाकर मत रखियेगा, *तुम्ह त्रिभुवन गुर* = आप तो तीनों लोकों के गुरु हैं, *बेद बखाना* = वेदों में ऐसा कहा गया है, *आन जीव पाँवर* = बाकी लोग तो सब मूढ़ जीव हैं, *का जाना* = वे क्या जानें?

साधारण लोग जो बातें नहीं समझ पाते, ज्ञानी ही समझ सकते हैं, वे रहस्य कहलातीं हैं। पार्वती जी कहती हैं, राम जी के संबंध में बहुत से रहस्य हैं, वे सब भी बताइये। इस विषय में कोई और बात पूछने के लिये रह गई हो तो उसे भी बतायें। आपका विवेक तो बहुत निर्मल है, आप ज्ञानवान् हैं। वेद कहते हैं कि आप तो तीनों लोकों के गुरु हैं। बाकी सब तो जीव हैं, वे क्या जानें?

3. शिव-गीता

(दोहा 112 से 120)

रामकथा सुनाने की विनती को सुनकर शिव जी के मानस पटल पर रामचरित्र उभर आते हैं, प्रभु राम के दर्शन हो जाते हैं, शरीर पुलकित है, आँखों में अश्रु हैं। शिव जी रामकथा सुनाने के पहले जो कहते हैं, उसका वर्णन तुलसीदास जी ने 9 दोहों मे किया है। यह शिव-गीता भी कहलाती है। इस प्रसंग की प्रत्येक बात को बहुत सावधानीपूर्वक सुनकर समझने का प्रयास करना चाहिये।

पार्वती के प्रश्न शिव जी को भा गये

प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई ॥111:6॥

प्रस्न उमा कै सहज सुहाई = पार्वती जी के प्रश्न सहज सुंदर थे, *छल बिहीन* = छलरहित थे, *सुनि सिव मन भाई* = इन्हें सुनकर शिव जी को बहुत अच्छा लगा।

शिव जी ने पार्वती जी के सारे प्रश्न, रामकथा सुनने की जिज्ञासा, रामकथा की विषय सूची, यह सब सुना और देखा कि ये हृदय से सब पूछ रही हैं। इनके प्रश्न सरल, सुंदर, छलरहित हैं। शिव को बहुत अच्छा लगा।

शिव-हृदय में रामचरित्र उभरे, शरीर पुलकित, आँखों में अश्रु

हर हियँ रामचरित सब आये। प्रेम पुलक लोचन जल छाये ॥111:7॥

हर हियँ = शिव जी के हृदय में, *रामचरित सब आये* = सारे रामचरित्र आ गये, *प्रेम पुलक* = प्रेम से शरीर पुलकित हो गया, *लोचन जल छाये* = आँखों में अश्रु आ गये।

जब पार्वती जी ने नाम ले-लेकर रामचरित्र पूछा, तो वे सारे चरित्र जो शिव जी के गहरे मन में बैठे थे, चित्त पटल पर आने लगे। कथा का स्मरण आते ही उनका शरीर पुलकित हो गया, आँखों में प्रेम के आँसू आ गये। कथा की यही विशेषता है कि सुनाने वाले व सुनने वाले, दोनों के शरीर पुलकित हों।

प्रभु राम हृदय में आ गये, परम आनंद की अनुभूति

श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा ॥111:8॥

श्रीरघुनाथ रूप उर आवा = राम जी का रूप हृदय में आ गया, *परमानंद अमित सुख पावा* = उन्हें परमानंद के असीम सुख का अनुभव होने लगा।

रामकथा का स्मरण आने के बाद प्रभु राम का स्वरूप भी ध्यान में आ गया कि कैसे उनका शरीर नीले रंग का है, धनुष बाण लिये हैं। राम की छवि हृदय में आते ही शिव जी को परमानंद के असीम सुख का अनुभव होने लगा। इस प्रकार कथा से सगुण रूप भी हृदय में आ गया, निर्गुण भी आ गया। यदि कथा सुनाने में प्रेम हो, आनंद हो, तो सुनाने वाले के मन में भी ऐसा होना चाहिये।

कुछ क्षण ध्यान के बाद प्रसन्नता से कथा प्रारंभ

मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह ।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह ॥दोहा 111॥

मगन ध्यान रस = ध्यान के रस में मगन हो गये, *दंड जुग* = दो घड़ी तक, *पुनि मन बाहेर कीन्ह* = फिर मन को बाहर खींचा, *रघुपति चरित* = प्रभु राम के चरित्र को, *महेस तब* = तब शिव जी ने, *हरषित बरनै लीन्ह* = प्रसन्नता के साथ वर्णन करना प्रारंभ कर दिया।

शंकर जी ने कथा सुनाने के पहले कुछ देर मन को अंतर्मुखी करके, प्रभु राम का ध्यान किया, उनके आनंद रस का अनुभव किया, फिर मन को बाहर लाकर, आँखें खोली, और प्रसन्नता से रामचरित्र कहना शुरू किया।

तुलसीदास जी ने कुछ भी व्यर्थ नहीं लिखा है, कथा कैसे सुनायी जाये उसका तरीका बता दिया। कथा सुनाने के पहले कुछ देर आँखें बंद कर भगवान का स्मरण करें, उनके दर्शन करें। ज्यादा देर के लिये ध्यान करेंगे तो श्रोता ऊब जायेंगे। ध्यान नहीं करेंगे तो कथा सही नहीं होगी।

शिव जी के मन के विचार तुलसीदास व्यक्त करते हैं

पार्वती जी के प्रश्न करने पर अभी शिव जी बोल नहीं रहे हैं, मन में परमात्मा शक्ति राम के बाल रूप का स्मरण करते हैं। शिव जी के मन के विचारों को तुलसीदास जी चार चौपाइयों में बहुत बारीकी से, काव्यात्मक भाषा में वर्णन कर रहे हैं, उसे समझकर जीवन में अभ्यास करने का प्रयास करना चाहिये।

राम का ज्ञान होते ही संसार का डर गायब

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानें ॥112:1॥

झूठेउ सत्य जाहि = झूठ भी सत्य ही लगता है, *बिनु जानें* = जिसके ज्ञान के बिना, *जिमि भुजंग* = जैसे सर्प लगने लगे, *बिनु रजु पहिचानें* = रस्सी को न पहचान पाने के कारण से।

शिव जी विचार करते हैं, इस संसार में नाम हैं, रूप हैं, ये सब मिथ्या हैं, पर सबको सत्य के समान महसूस होते हैं, सत्य ही दिखाई देते हैं, इनसे भयभीत होकर लोग दु:खी रहते हैं। क्यों? राम का ज्ञान नहीं है। एक उदाहरण सोचते हैं, जिसमें रस्सी राम है, संसार सर्प है। रात के अंधेरे में रस्सी को देखा, कल्पना से उसे सर्प मान लिया, बस डरने लगे, भयभीत हो गये। सुबह जब ठीक से देखा तो समझ में आया कि यह तो रस्सी है, सच पहचानते ही प्रसन्न हो गये, डर गायब, आनंद आ गया। उसी प्रकार लोग संसार को रस्सी की जगह सर्प समझकर डरते रहते हैं, दु:खी होते हैं, अपने कर्त्तव्यों का ठीक से पालन नहीं करते। जैसे ही हम प्रभु राम में विश्वास करने लगते हैं, उनकी शक्ति के बारे में ज्ञान होने लगता है, तो इस संसार का भय समाप्त। अब हम खुशी से, आनंद से इस संसार को प्रभु राम का ही समझकर जीवन जी सकते हैं।

जागने से स्वप्न के भ्रम गायब, राम को जानें सारे भ्रम गायब

जेहि जानें जग जाइ हेराई। जागें जथा सपन भ्रम जाई ॥112:2॥

जेहि जानें = जिसका ज्ञान हो जाने पर, *जग जाइ हेराई* = संसार समाप्त हो जाता है, *जागें जथा* = जैसे जागने पर, *सपन भ्रम जाई* = स्वप्न का भ्रम समाप्त हो जाता है।

शिव जी के मन में एक दूसरा उदाहरण आता है, जब लोग सोते रहते हैं तो बहुत से स्वप्न आते हैं, उन्हें देखकर डरते भी रहते हैं, दु:खी भी होते हैं। जैसे ही नींद खुली, स्वप्न का संसार गायब, लगता है बस जाग गये, अब कोई चिंता नहीं। उसी प्रकार इस संसार के तमाम भय जागृत अवस्था में डराते रहते हैं। क्यों? राम का ज्ञान नहीं। राम नाम लेने से, उनके स्मरण से जैसे ही श्रद्धा-विश्वास आया, समझो जाग गये, जागृत अवस्था के भ्रम भी स्वप्न के भ्रम के समान समाप्त। अब आनंद से जीवन जियें।

शिव जी के इष्ट बालक राम हैं, जिनका स्मरण करते हैं

बंदउँ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू ॥112:3॥

बंदउँ = वंदना करते हैं, *बालरूप सोइ रामू* = बालक रूप में उन्हीं राम का, *सब सिधि सुलभ* = सब सिद्धियाँ आसानी से प्राप्त हो जाती हैं, *जपत जिसु नामू* = जिनके नाम का जप करने से।

राम जी के कई रूप हैं, शिशु राम, बालक राम, किशोर राम और युवा राम। शिव जी अपने मन में बालक राम की वंदना करते हैं। सोचते हैं कि यही ब्रह्म हैं, इन्हीं के स्मरण से संसार में सर्प का भ्रम और संसार में स्वप्न जैसे भ्रम गायब हो जाते हैं। इनके नाम के जप से सहज ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सिद्धि मायने चित्त का निर्मल होना, बुद्धि का शुद्ध होना है।

दशरथ के आँगन में खेलने वाले बालक राम द्रवित हों

मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी ॥112:4॥

मंगल भवन = मंगल प्रदान करने वाले, *अमंगल हारी* = अमंगल दूर करने वाले, *द्रवउ* = द्रवित हों, *सो* = वही राम, *दसरथ अजिर* = जो दशरथ जी के आँगन में, *बिहारी* = विहार करते हैं।

शिव जी ने जब बालक राम का स्मरण किया तो उनके मानस पटल पर महाराज दशरथ के महल का आँगन भी आ गया, यहीं पर तो उनके इष्ट राम बाल रूप में खेल रहे हैं, दौड़ रहे हैं, बाल लीलायें कर रहे हैं। तुलसीदास जी व काकभुसुंडि जी के इष्ट भी यही बालक राम हैं। यही ब्रह्म हैं। इनके स्मरण से मंगल आता है, अमंगल दूर हो जाते हैं। द्रवित का मतलब है पिघलना, भगवान से इतना प्रेम करें कि वे पिघल जायें, जहाँ वे पिघले उनकी कृपा प्राप्त हो गई।

हम इच्छित वस्तु पा लेते हैं, पर मंगल कैसे पायें?

संसार में लोग जो चाहते हैं, कैसे-न-कैसे पा ही लेते हैं, पर मंगल नहीं होता। मंगल मायने सब पाने पर मन शांत रहे, प्रसन्न रहे, घर में अशांति न रहे। यह कैसे होगा? एकमात्र उपाय है, भगवान की कृपा। वह कैसे आये? प्रेम पूर्वक नाम जप से, स्मरण से, कथा सुनने से। जब हम भगवान का स्मरण करके कार्य करते हैं, तो सही कार्य को सही तरीके से करके अपने लक्ष्य को पा लेते हैं। जब सब सही है तो फिर अशांति कहाँ?

शिव जी अमृत के समान वचन बोलते हैं

करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी ॥112:5॥

करि प्रनाम रामहि = राम जी को प्रणाम करके, *त्रिपुरारी* = शिव जी, *हरषि* = प्रसन्नता से, *सुधा सम* = अमृत के समान, *गिरा उचारी* = वचन बोलते हैं।

शिव जी का नाम जब त्रिपुरारी कहते हैं, तब मन में स्मरण कर लें कि ये हमें जागृत, स्वप्न व सुषुप्ति, इन तीनों पुरों या तीनों अवस्थाओं से ऊपर उठाने वाले हैं। ऐसे शिव जी राम को प्रणाम करके, हर्षित होकर, अमृत के समान वाणी में बोलते हैं। अभी तक सब मन में चल रहा था, बोलना अब शुरू करते हैं।

धन्य हो पार्वती, तुम्हें राम में प्रेम है, संसार हित के लिये प्रश्न हैं

धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी ॥112:6॥
पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा ॥112:7॥
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी ॥112:8॥

धन्य धन्य गिरिराजकुमारी = हे पर्वत के राजा की पुत्री! तुम धन्य हो; धन्य हो, *तुम्ह समान* = तुम्हारे जैसा, *नहिं कोउ उपकारी* = और कोई उपकारी नहीं है, *पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा* = तुमने राम-कथा के बारे में पूछा है, *सकल लोक जग पावनि* = यह कथा सारे संसार को पवित्र करने वाली, *गंगा* = गंगा जी के समान है, *तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी* = तुम्हें प्रभु राम के चरणों में प्रेम है, *कीन्हिहु प्रस्न* = तुमने जो प्रश्न पूछे हैं, *जगत हित लागी* = वे तो संसार के कल्याण के लिये हैं।

राम कृपा तें पारबती सपनेहुँ तव मन माहिं।
सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं ॥दोहा 112॥

राम कृपा तें = राम जी की कृपा से, *पारबती* = हे पार्वती!, *सपनेहुँ तव मन माहिं* = स्वप्न में भी तुम्हारे मन में, *सोक मोह संदेह भ्रम* = शोक; मोह; संदेह; भ्रम, *मम बिचार* = मेरे विचार से, *कछु नाहिं* = कुछ भी नहीं है।

तदपि असंका कीन्हिहु सोई। कहत सुनत सब कर हित होई ॥113:1॥

तदपि = फिर भी, *असंका कीन्हिहु सोई* = तुमने जो शंका की है, *कहत सुनत सब कर हित होई* = उसका निवारण कहने व सुनने से सबका हित होगा।

शिव जी कहते हैं हे गिरिराजकुमारी! तुम धन्य हो, धन्य हो, तुम्हारे समान कोई उपकारी नहीं है। उपकार की बात यह है कि तुम अपने लिये यह रामकथा नहीं पूछ रही हो, इसे सुनकर संसार का कल्याण हो, इसलिये तुम सुनना चाहती हो। जैसे गंगा में स्नान से पाप दूर होते हैं, वैसे ही राम-कथा को सुनने से मन के मैल दूर होते हैं, व्यक्ति पवित्र हो जाता है। तुम्हें तो वैसे ही राम चरणों में प्रेम है। जिसे राम से प्रेम है, उसे अज्ञान नहीं रह सकता, जब अज्ञान नहीं तो शंका नहीं, शंका नहीं तो प्रश्न नहीं। तुम्हारे ऊपर तो राम जी की कृपा है, तुम्हें तो स्वप्न में भी शोक, मोह, भ्रम व संदेह नहीं है। फिर भी तुमने

शंका की है, प्रश्न किया है तो हम रामकथा सुनायेंगे। इसके कहने व सुनने से सबका कल्याण होगा।

राम-कथा न सुनने वाले कैसे होते हैं?

जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहिभवन समाना ॥113:2॥
नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा ॥113:3॥

जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना = जिन्होंने कानों से रामकथा नहीं सुनी, *श्रवन रंध्र* = उनके कानों के छिद्र, *अहिभवन समाना* = सर्प के बिल के समान हैं, *नयनन्हि* = जिन्होंने आँखों से, *संत दरस नहिं देखा* = संतों के दर्शन नहीं किये, *लोचन* = उनकी आँखें, *मोरपंख कर लेखा* = मोर के पंख में दिखने वाली नकली आँख के समान हैं।

ते सिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला ॥113:4॥
जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी ॥113:5॥

ते सिर = वे सिर, *कटु तुंबरि समतूला* = कड़वी गोल लौकी के समान हैं, *जे न नमत हरि गुर पद मूला* = जो राम व गुरुदेव के चरणतल पर नहीं झुकते हैं, *जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी* = जिनके मन में राम जी की भक्ति नहीं है, *जीवत* = वे जीते हुए भी, *सव समान तेइ प्रानी* = मरे हुए प्राणी के समान हैं।

जो नहिं करइ राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना ॥113:6॥
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती ॥113:7॥

जो नहिं करइ राम गुन गाना = जो राम के गुणों का गान नहीं करते हैं, *जीह सो* = वह जीभ, *दादुर जीह समाना* = मेढक की जीभ के समान है, *कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती* = वह हृदय वज्र के समान कठोर है, *सुनि हरिचरित न जो हरषाती* = जिसमें प्रभु राम के चरित्र सुनकर हर्ष न हो।

1. कानों की सार्थकता राम-कथा सुनने में है। कथा नहीं सुनोगे तो कानों से केवल संसार की तमाम निंदायें, बुराइयाँ जो सर्प के समान हैं, हृदय में पहुँचकर वहाँ विष फैलायेंगी। हमें पता ही नहीं चलता, कब ये सर्प विष

फैलाते रहते हैं, हम दु:खी होते रहते हैं। कथा तो गंगा जी के समान कानों से घुसकर मन को धोकर पवित्र कर देगी।

2. आँखों की सार्थकता ऐसे लोगों के दर्शन में है जो संत स्वभाव के हैं, जिनमें दिव्यता प्रकट हुइ हो। अन्यथा वे आँखें मोर पँख में दिखने वाली नकली आँख के समान हैं।
3. यदि सिर को भगवान के चरणों में व गुरु चरणों के आगे नहीं झुकाते तो वे सिर तो मात्र कड़वी गोल लौकी के समान हैं, जो किसी काम की नहीं है।
4. यदि भगवान की भक्ति नहीं है, तो जीवन में कोई रस नहीं है, दिखने में जीवित हैं पर जीवन मृत के समान है।
5. जीभ का भी सदुपयोग राम नाम जप में करें, अन्यथा वह तो हमेशा मेढक के समान टर्र-टर्र करती रहेगी।
6. राम-कथा सुनकर हृदय कोमल होता है, उसमें अपने आप हर्ष आने लगता है, अन्यथा वह वज्र के समान कठोर बना रहकर दु:ख ही देता है।

रामचरित्र सत्त्वगुणी का आनंद, तमोगुणी का मोह बढ़ाते हैं

गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज बिमोहनसीला ॥113:8॥

गिरिजा सुनहु राम कै लीला = हे पार्वती राम की लीला सुनो, *सुर हित* = यह देवताओं का हित करने वाली, *दनुज बिमोहनसीला* = दैत्यों को मोह में डालने वाली है।

हे गिरिजा हम जो राम की लीला सुनाने जा रहे हैं, उसे तुम सुनो। यह लीला, सुर मायने सत्त्वगुणी के हृदय में तो आनंद का संचार करती है, उनका हित होता है। लेकिन दैत्य यानि तमोगुणी को और अधिक मोह में डाल देती है। वे कहेंगे जब भगवान रो रहे हैं तो हमारे रोने में क्या बुराई है? जिनके पास कुछ काम नहीं है, वे कथा सुनकर समय काटते रहते हैं। दनुज लोग ऐसा भ्रम फैलाते रहते हैं।

रामकथा की सेवा करें, यह सब सुख देगी

रामकथा सुरधेनु सम सेवत सब सुख दानि ।
सतसमाज सुरलोक सब को न सुनै अस जानि ॥दोहा 113॥

रामकथा सुरधेनु सम = राम जी की कथा कामधेनु के समान है, *सेवत* = जो सेवा करने में, *सब सुख दानि* = सब प्रकार के सुख प्रदान करती है, *सतसमाज* = अच्छे लोगों में, *सुरलोक सब* = सब सत्त्वगुणी लोगों में, *को न सुनै* = ऐसा कौन होगा जो इसे न सुने, *अस जानि* = इसकी महिमा को जानकर।

शिव जी कहते हैं कामधेनु की सेवा करें, वह सब प्रकार के सुख देती है। उसी प्रकार रामकथा की सेवा करें यानि इसे ठीक से बार-बार कहें, सुने, समझें तो यह भी सब प्रकार का सुख देती है। यह तो समस्त विकारों को दूर करने की औषधि है, बस आप औषधि का सेवन तो करें। अच्छे लोगों के समाज में, सत्त्वगुणी के समाज में ऐसा कौन होगा जो इसका सेवन न करे।

रामकथा से संशय दूर, कलियुग रूपी को काट देती है

रामकथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनिहारी ॥114:1॥
रामकथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी ॥114:2॥

रामकथा सुंदर कर तारी = राम-कथा हाथ की सुंदर ताली है, *संसय बिहग उड़ावनिहारी* = जो संशय के पक्षी को उड़ा देती है, *रामकथा कलि बिटप* = राम-कथा कलियुग के वृक्ष को, *कुठारी* = काटने की कुल्हाड़ी है, *सादर सुनु गिरिराजकुमारी* = हे पार्वती! इसे आदर से सुनो।

पेड़ पर पक्षी बैठा हो, हाथ से ताली बजा दो, वह उड़ जायेगा। उसी प्रकार बहुत से विचार, भ्रम मन में आते रहते हैं, रामकथा सुनो, सब दूर हो जायेंगे। पक्षी तो शीघ्र उड़ जायेगा, पर उस कलियुग का क्या होगा जो मजबूत वृक्ष के समान हमारे मन में जड़ जमाये है। उसका भी उपाय शिव जी बताते हैं। जैसे कुल्हाड़ी से जोर का वार वृक्ष पर कुछ समय तक करते रहें वह कट जायेगा, वैसे ही इस कथा को सादर नियमित सुनें तब फायदा होगा। यह कथा मनोरंजन मात्र नहीं है, प्रेम से, संकल्प करके, महत्त्व को ध्यान में रखकर सुनें, जीवन में परिवर्तन आ जायेगा।

राम, नाम, चरित्र और गुण अनंत हैं

राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए ॥114:3॥
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना ॥114:4॥

राम नाम गुन चरित सुहाए = राम; उनका नाम; गुण व सुंदर चरित्र, *जनम करम* = उनके जन्म व कर्म, *अगनित श्रुति गाए* = वेदों ने अनंत कहकर गाये हैं, *जथा अनंत राम भगवाना* = जैसे भगवान राम अनंत हैं, *तथा कथा कीरति गुन नाना* = वैसे ही उनकी कथा, कीर्ति और गुण भी अनंत हैं।

इस प्रसंग में शिव जी की चार बातें ठीक से याद कर लें:

1. राम स्वयं अनंत हैं, दिव्य हैं, पवित्र हैं।
2. राम का नाम भी वैसा ही दिव्य है, पवित्र करने वाला है।
3. राम के गुण जैसे उदारता, क्षमा व दया भी राम की तरह अनंत हैं। उनका स्मरण भी फलदायी है।
4. राम के चरित्र यानि उन्होंने अवतार लेकर जो कार्य किये हैं, वे भी राम की तरह ही दिव्य व अनंत हैं।

राम-कथा कहना, सुनना भी नाम जप जैसा ही है। ये चारों ही मोद व मंगल प्रदान करने वाले हैं।

वेदों में जैसा कहा है, वैसा अपनी बुद्धि के अनुसार कहेंगे

तदपि जथा श्रुत जसि मति मोरी। कहिहउँ देखि प्रीति अति तोरी ॥114:5॥

तदपि = फिर भी, *जथा श्रुत* = जैसा वेदों में कहा है, *जसि मति मोरी* = जितनी मेरी बुद्धि है, *कहिहउँ* = उसके अनुसार ही सुनायेंगे, *देखि प्रीति अति तोरी* = तुम्हारे अत्यंत प्रेम को देखकर।

कथा की अनंतता देखें तो कह नहीं सकते, पर शिव जी कहते हैं, जितनी हमारी बुद्धि है उतना सुनायेंगे। वेदसम्मत बात ही कहेंगे, यह भारतीय संस्कृति की परंपरा है। अपनी बात का स्थान नहीं, वही बोलो जो वेदों में कहा हो। वेदों में तो बहुत लिखा है, परंतु हमारी बुद्धि सीमित है, इसलिये अपनी बुद्धि के अनुसार कहेंगे। तुम्हारी प्रीति को देखकर तो हमारे अंदर उत्साह आ गया है।

उमा के प्रश्नों की प्रशंसा कर पहले उत्साह बढ़ाते हैं

उमा प्रस्न तव सहज सुहाई। सुखद संतसंमत मोहि भाई ॥114:6॥

उमा प्रस्न तव = हे उमा! तुम्हारे प्रश्न, *सहज सुहाई सुखद संतसंमत* = स्वाभाविक सुंदर, सुखदायक और संतों द्वारा सम्मत हैं, *मोहि भाई* = मुझे भी अच्छा लगा।

शिव जी कहते हैं तुम्हारे प्रश्न तो सहज ही सुंदर हैं, संतसम्मत हैं, सुख देने वाले हैं। इन्हें सुनकर मुझे भी अच्छा लगा। प्रश्नकर्ता की तारीफ करके उसका उत्साह बढ़ाना चाहिये। कथा सुनने व सुनाने वाले, दोनों में उत्साह होना चाहिये।

क्या राम दो हैं? तुम्हारा यह प्रश्न तो हमें अच्छा नहीं लगा

एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोह बस कहेहु भवानी ॥114:7॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना ॥114:8॥

एक बात नहिं मोहि सोहानी = परन्तु एक बात मुझे अच्छी नहीं लगी, *जदपि मोह बस कहेहु भवानी* = यद्यपि मोह के कारण पार्वती तुमने कह दिया है, *तुम्ह जो कहा* = तुमने यह जो कह दिया कि, *राम कोउ आना* = राम कोई और हैं, *जेहि श्रुति गाव* = जिनका वर्णन वेद करते हैं, *धरहिं मुनि ध्याना* = जिनका मुनि लोग ध्यान करते हैं।

प्रशंसा करके, फिर शिव जी पार्वती जी को डाँटते हुए कहते हैं कि मुझे तुम्हारी एक बात अच्छी नहीं लगी। पार्वती जी देखने लगीं क्या हो गया? शंकर जी कहते हैं मोह के कारण गलती से तुम्हारे मुँह से ऐसा निकल गया कि क्या दो राम हैं? एक राम वे जिन्होंने अयोध्या में अवतार लिया है, दूसरे राम वे जिनको ब्रह्म कहकर वेदों में वर्णन है व जिनका मुनि लोग ध्यान करते हैं।

सगुण व निर्गुण को अलग मानने वाले पाखंडी हैं

कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच ।
पाषंडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच ॥दोहा 114॥

कहहिं सुनहिं अस = इस प्रकार की बाते कहते व सुनते हैं, *अधम नर* = जो अधम मनुष्य हैं, *ग्रसे जे मोह पिसाच* = जिन्हें मोह रूपी पिशाच ने पकड़ रखा है, *पाषंडी हरि पद बिमुख* = जो पाखंडी हैं जिनका रामचरण में प्रेम नहीं है, *जानहिं झूठ न साच* = जिन्हें सत्य-असत्य का ज्ञान नहीं है।

सनातन धर्म का यही प्रमुख सिद्धांत है कि जो परमात्मा निर्गुण है वही सगुण है, दोनों में भिन्नता नहीं है। वे दो नहीं एक हैं, दोनों में एक ही तत्त्व है। दो कहने वाले लोग अधम हैं, उनकी गर्दन को मोह रूपी पिशाच ने पकड़ रखा है, वे पाखंडी हैं, उन्हें यह नहीं पता कि सही क्या है, गलत क्या है। उन्हें तो प्रभु राम के चरणों में प्रेम ही नहीं है।

किस प्रकार के लोग वेद असम्मत बात कहते हैं?

अग्य अकोबिद अंध अभागी। काई बिषय मुकुर मन लागी ॥115:1॥
लंपट कपटी कुटिल बिसेषी। सपनेहुँ संतसभा नहिं देखी ॥115:2॥
कहहिं ते बेद असंमत बानी। जिन्ह कें सूझ लाभु नहिं हानी ॥115:3॥

अग्य अकोबिद अंध अभागी = अज्ञानी; मूर्ख; अंधे; भाग्यहीन व्यक्ति, *काई बिषय* = काई के समान विषय, *मुकुर मन लागी* = जिनके मन के दर्पण में लगे हैं, *लंपट कपटी कुटिल बिसेषी* = जो अधर्मी; धोखेबाज; ज्यादा चतुर हैं, *सपनेहुँ संतसभा नहिं देखी* = जिन्होंने सपने में भी संतसभा नहीं देखी है, *कहहिं ते बेद असंमत बानी* = वे ही ऐसी वेद विरुद्ध बातें करते हैं, *जिन्ह कें सूझ लाभु नहिं हानी* = जिन्हें लाभ-हानि की समझ नहीं है।

शिव जी बताते हैं कि इस प्रकार की वेद असम्मत बातें कौन लोग करते हैं और क्यों करते हैं? ऐसे लोग जिन्हें ज्ञान नहीं है, मूर्ख हैं, ज्ञान के नेत्र बंद होने के कारण जो अंधे हैं। सत्य का ज्ञान न होना दुर्भाग्य की बात है, ऐसे भाग्यहीन ही ये सब बातें करते हैं। जिनका मन मैला है, जो अधर्म के मार्ग पर चलते हैं। जिनके मन में कुछ और है, बोल कुछ और रहे हैं। जो अपने आप को कुछ ज्यादा ही चतुर समझते हैं। इस प्रकार की बातें इसलिये करते हैं कि ऐसे लोगों ने सत्संग तो कभी किया नहीं है, इन्हें यह नहीं पता कि झूठ क्या है, सच क्या है।

मैले मन में व बिना आँखों के राम दिखेंगे कैसे?

मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना ॥115:4॥
जिन्ह कें अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहिं कल्पित बचन अनेका ॥115:5॥
हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहि कहत कछु अघटित नाहीं ॥115:6॥

मुकुर मलिन = मन रूपी दर्पण मैला है, *अरु नयन बिहीना* = और जिनके नेत्र नहीं हैं, *राम रूप देखहिं किमि दीना* = वे बेचारे राम का रूप कैसे देख सकते हैं, *जिन्ह कें अगुन न सगुन बिबेका* = जिन्हें निर्गुण सगुण का ज्ञान नहीं है, *जल्पहिं कल्पित बचन अनेका* = अनेक प्रकार की मनमानी व कल्पित बातें करते रहते हैं, *हरिमाया बस* = भगवान की माया के बस में, *जगत भ्रमाहीं* = संसार में भटकते रहते हैं, *तिन्हहि कहत कछु* = वे कुछ भी कह दें, *अघटित नाहीं* = उनके लिये संभव है।

राम तो सबके अंदर हैं, पर दिखते क्यों नहीं? वे मन के दर्पण में दिखते हैं, पर दर्पण मैला है तो प्रतिबिम्ब कहाँ से दिखे? फिर देखने के लिये आँखें भी चाहिये, वे भी तो नहीं हैं, क्योंकि आँखें तो बंद करके रखे हैं। जिनको सगुण व निर्गुण का ज्ञान नहीं है वे कल्पना करके तरह-तरह की बातें अज्ञान के कारण कहते रहते हैं। माया के कारण प्राणी संसार में भटकता रहता है। माया भ्रम उत्पन्न कर उसमें मजबूती लाती है, लोगों को लगता है, हम ही सही हैं, वह सत्य की तरफ जाने ही नहीं देती। भटके हुए लोग तो यह भी कह देते हैं कि भगवान है ही नहीं। इनके लिये कुछ भी कह देना संभव है।

चार प्रकार के व्यक्तियों की बातें तो सुनो ही मत

बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे ॥115:7॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना ॥115:8॥

बातुल = जो बहुत बोलते हैं, *भूत बिबस* = भूत के वश में हैं, *मतवारे* = जिन्होंने नशा कर रखा है, *ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे* = वे लोग सोचकर नहीं बोलते हैं, *जिन्ह कृत महामोह मद पाना* = जिसने महामोह की मदिरा पी रखी है, *तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना* = इनकी बातों को सुनना नहीं चाहिये।

शिव जी चार प्रकार के लोगों के बारे में कहते हैं कि ये लोग सोच-विचारकर नहीं बोलते हैं, इसलिये इनकी बातों को सुनो ही नहीं, जो बोलते हैं बोलने दो :
1. वातुल– जो बहुत बोलते रहते हैं।
2. भूत बिबस– जो लोग भूत के वश में हैं।

3. मतवारे– जिन्होंने नशा कर रखा है।
4. महामोहित– जो महामोह में ही पड़े हैं।

मेरे वचन सूर्य का प्रकाश हैं, जो भ्रम का अंधकार दूर करते हैं

अस निज हृदयँ बिचारि तजु संसय भजु राम पद ।
सुनु गिरिराज कुमारि भ्रम तम रबि कर बचन मम ॥दोहा 115॥

अस निज हृदयँ बिचारि = अपने मन में ऐसा विचार करके, *तजु संसय* = संदेह त्याग दो, *भजु राम पद* = राम के चरणों का भजन करो, *सुनु गिरिराज कुमारि* = हे पार्वती! सुनो, *भ्रम तम* = भ्रम तो अंधकार है, *रबि कर बचन मम* = जिसे दूर करने के लिये मेरे वचन सूर्य का प्रकाश हैं।

इन सब बातों में विचार करके भ्रम त्याग दो, प्रभु राम के चरणों में मन को लगाओ। भ्रम तो अंधकार के समान है, मेरे वचन सूर्य के प्रकाश के समान हैं। जैसे सूर्य उदय होने पर अंधकार चला जाता है, वैसे ही मेरे वचनों को सावधानी पूर्वक सुनो, भ्रम दूर हो जायेगा।

सगुण-निर्गुण एक हैं, भक्त के प्रेमवश निर्गुण सगुण बन जाता है

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ॥116:1॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥116:2॥

सगुनहि अगुनहि = सगुण व निर्गुण में, *नहिं कछु भेदा* = कुछ भी अंतर नहीं है, *गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा* = मुनि; पुराण; पंडित व वेद ऐसा ही कहते हैं, *अगुन अरूप अलख अज जोई* = जो निर्गुण; निराकार; अव्यक्त व अजन्मा है, *भगत प्रेम बस* = भक्त के प्रेम के वश में होकर, *सगुन सो होई* = वही सगुण हो जाता है।

शिव जी कहते हैं कि सगुण ब्रह्म व निर्गुण ब्रह्म के लक्षण तो देखने में विपरीत हैं, पर मुनि, पुराण व वेद सब यही कहते हैं कि दोनों में कोई भेद नहीं है, दोनों एक ही हैं। तीन विपरीत लक्षणों का यहाँ वर्णन करते हैं:
1. अरूप– निर्गुण का आकार नहीं होता है पर सगुण का आकार होता है।

2. अलख– निर्गुण अव्यक्त है दिखाई नहीं देता, सगुण दिखाई देता है।
3. अज– निर्गुण का जन्म नहीं होता है, सगुण अवतार लेता है।

पार्वती जी का प्रश्न था, निर्गुण सगुण क्यों बन जाता है? शिव जी उत्तर देते हैं कि भक्त के प्रेम के कारण।

जैसे पानी से बर्फ बनती है वैसे निर्गुण से सगुण बन जाता है

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें ॥116:3॥

जो गुन रहित = जो निर्गुण है, *सगुन सोइ कैसें* = वह सगुण कैसे हो सकता है?, *जलु* = जैसे पानी, *हिम उपल* = और बर्फ, *बिलग नहिं जैसें* = अलग-अलग नहीं हैं एक ही हैं।

पार्वती जी का एक प्रश्न था यह निर्गुण ब्रह्म सगुण कैसे हो जाता है। शिव जी पानी-बर्फ के उदाहरण से समझाते हैं:

1. पानी का आकार नहीं है, वह निराकार है। वही पानी जब बर्फ बनकर जम जाता है तो उसका आकार हो जाता है। उसी प्रकार ब्रह्म निराकार है, पर वह जब चाहे आकार लेकर भक्त के सामने प्रगट हो जाता है।
2. पानी तो सदैव पानी ही है, कुछ समय के लिये वह बर्फ बनता है, पिघलने पर वापस पानी बन जाता है। निराकार ब्रह्म कुछ समय के लिये प्रगट होकर रूप धारण करके लीलायें करता है, फिर वह निराकार हो जाता है।
3. संसार में जितना जल है वह सारा बर्फ नहीं बनता है, कुछ बर्फ बनता है, बाकी पानी ही रहता है। ब्रह्म भी अव्यक्त रूप में सर्वत्र विद्यमान रहता है, एक अंश सगुण रूप बन गया, बाकी निर्गुण बना रहता है।

जैसे सूर्य ने अंधेरा नहीं देखा राम ने मोह नहीं देखा

जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा ॥116:4॥
राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥116:5॥
सहज प्रकासरूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना ॥116:6॥

जासु नाम = जिसका नाम, *भ्रम तिमिर* = भ्रम के अंधकार के लिये, *पतंगा* = सूर्य है, *तेहि किमि कहिअ* = उनके लिये कैसे कह सकते हैं, *बिमोह*

प्रसंगा = मोह हो सकता है, *राम सच्चिदानंद दिनेसा* = राम तो सत्, चित्त, आनंद के सूर्य हैं, *नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा* = वहाँ तो नाम मात्र का भी मोह का अंधकार हो नहीं सकता है, *सहज प्रकासरूप भगवाना* = राम तो स्वयं ही सदा से प्रकाशवान् हैं, *नहिं तहँ पुनि* = वहाँ फिर होता ही नहीं, *बिग्यान बिहाना* = विज्ञान की सुबह।

पार्वती जी के प्रश्नों के उत्तर में शिव जी समझाते हैं कि प्रभु राम में तो अज्ञान या मोह हो ही नहीं सकता है।

1. राम के नाम में ही इतनी शक्ति है कि राम नाम लेते ही अज्ञान या मोह दूर हो जाता है, ऐसे सर्वज्ञ राम को मोह हो ही नहीं सकता है।
2. राम तो सदा सत्य हैं, चेतन हैं व आनंद हैं। उन्हें मोह कैसे हो सकता है?
3. राम तो सूर्य के समान हैं। सूर्य का प्रकाश अंधेरा दूर करता है, राम मोह के अंधकार का नाश कर देते हैं।
4. राम तो स्वयं के प्रकाश से सदैव प्रकाशित हैं। वे सदा ही ज्ञानवान् हैं। जैसे सूर्य ने कभी अंधेरा नहीं देखा, वहाँ सुबह नहीं होती, वैस ही राम ने कभी मोह या अज्ञान नहीं देखा, वहाँ तो सदैव ज्ञान का प्रकाश है, ज्ञान की सुबह नहीं होती।

हर्ष-विषाद, ज्ञान-अज्ञान जीव को होता है, राम को नहीं

हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना ॥116:7॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना ॥116:8॥

हरष बिषाद = हर्ष-विषाद, *ग्यान अग्याना* = ज्ञान-अज्ञान, *जीव धर्म* = जीव के धर्म हैं, *अहमिति अभिमाना* = अहंता-अभिमान, *राम ब्रह्म* = राम तो ब्रह्म हैं, *ब्यापक* = सर्वत्र विद्यमान हैं, *जग जाना* = यह बात संसार जानता है, *परमानंद* = परम-आनंद हैं, *परेस* = देवताओं के देवता, *पुराना* = सबसे पुराने हैं।

चन्द्रमा में स्वयं का प्रकाश नहीं हैं, सूर्य का प्रकाश जैसे पड़ता है वह वैसा दिखता है, प्रकाश के घटने से चन्द्रमा घटा हुआ, बढ़ने से बढ़ा हुआ दिखता है। उसी प्रकार जीव में अपना प्रकाश नहीं है। वह ब्रह्म-राम के प्रकाश से

प्रकाशित है। जब प्रकाश पड़ा तो हर्षित, नहीं पड़ा तो दु:खी। प्रकाश थोड़ा-थोड़ा पड़ा तो ज्ञानी हो गया नहीं तो अज्ञानी तो है ही। पर श्रीराम सदैव ज्ञानी, आनंदित व अहंकार रहित रहते हैं। वे सबके परे हैं व सबसे पुराने हैं। जगत् की रचना उनके बाद ही होती है। स्पष्ट कह दिया कि राम ब्रह्म ही हैं।

वही ब्रह्म राम, जो रघुवंश में अवतरित हुए, मेरे स्वामी हैं

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ ॥दोहा 116॥

पुरुष= वह पुरुषोत्तम भी हैं, *प्रसिद्ध*= वह सब प्रकार से सिद्ध हैं, *प्रकास निधि*= चेतना का भंडार हैं, *प्रगट परावर नाथ*= जितना भी जगत् दिखाई देता है वे उसके स्वामी हैं, *रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ*= रघुकुल के मणि वही राम मेरे स्वामी हैं, *कहि सिवँ नायउ माथ*= ऐसा कहकर शिव जी सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं।

उस राम को पुरुष या पुरुषोत्तम भी कहते हैं, वह प्रसिद्ध है, चेतना का भंडार है। हिंदी में 'प्रसिद्ध' से आशय है जिसे सब जानें, और संस्कृत में जिसे सब प्रकार की सिद्धि हो। सारा संसार उसी परमात्मा से उत्पन्न हुआ है, उसी पर आश्रित है, इसलिये वह सारे जगत् का स्वामी है। ऐसा कहकर, शंकर जी सिर नवाकर प्रणाम करते हैं। जैसे ही उन्होंने राम का स्मरण किया, वे हृदय में आ गये, उन्हें प्रणाम करते हैं। इस प्रकार शास्त्र सम्मत राम का वर्णन शिव जी करते हैं।

अपने भ्रम को राम पर थोपकर लोग कहते हैं सब गलत है

निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी। प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी ॥117:1॥
जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी ॥117:2॥
चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएँ ॥117:3॥
उमा राम बिषइक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा ॥117:4॥

निज भ्रम= अपने भ्रम को, *नहिं समुझहिं अग्यानी*= अज्ञानी समझता नहीं है, *प्रभु पर मोह धरहिं*= प्रभु राम पर मोह थोपने लगते हैं, *जड़ प्रानी*= ऐसे मूर्ख प्राणी, *जथा गगन*= जैसे आकाश में, *घन पटल*= बादलों का पर्दा, *निहारी* = देखकर, *झाँपेउ भानु* = सूर्य ढक गया है, *कहहिं कुबिचारी* =

अज्ञानी ऐसा कहते हैं, *चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ* = यदि आँख के सामने अंगुली लगाकर देखो तो, *प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएँ* = तो दो चन्द्रमा दिखाई देते हैं, *उमा* = हे उमा! *राम बिषइक अस मोहा* = राम के सम्बन्ध में इस प्रकार मोह है, *नभ* = आकाश में, *तम धूम धूरि* = अंधेरा; धुआँ या धूल, *जिमि सोहा* = जिस प्रकार दिखती है।

शंकर जी पार्वती जी को उदाहरण देकर समझाते हैं कि किस प्रकार लोग अपने मोह का आवरण प्रभु राम पर चढ़ाकर देखते हैं, फिर कहते हैं अरे! भगवान को मोह हो गया है, ये तो अज्ञानी हैं।

1. आकाश में बहुत बादल हों, सूर्य दिखाई नहीं दे, लोग कहेंगे सूर्य ढक गया है। पर बादलों ने तो हमारी आँखों को ढक लिया है, सूर्य को कोई ढक नहीं सकता है। इसी प्रकार जिनकी बुद्धि ठीक से काम नहीं करती वे कहते हैं कि भगवान को मोह हो गया है। दिखाई उन्हें नहीं देता, दोष राम पर लगा देंगे।
2. यदि कोई आँखों के सामने अंगुली लगाकर देखे तो उसे आकाश में एक की जगह दो चन्द्रमा दिखेंगे। यह तो देखने वाले का दृष्टि दोष है, इसमें चन्द्रमा का क्या दोष? वह तो एक ही है। ऐसे ही ब्रह्म भी एक ही हैं।
3. आकाश में धूल छा जाये तो लोग कहेंगे आकाश दूषित हो गया, पर आकाश निर्लेप है, वह सदा स्वच्छ रहता है। धूल वायु को गंदा कर सकती है, पानी को गंदा कर सकती है पर आकाश में चिपक नहीं सकती। धुआँ का प्रभाव भी आकाश पर नहीं होता है। अंधेरा होने पर आकाश में अंधेरा दिखने लगता है, पर वास्तव में आकाश तो वैसा ही रहता है, हमें दिखता नहीं पर रहता तो वह सदा एक जैसा है। इसी प्रकार सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण ये तीनों जीव को ढके रहते हैं, पर उस जीव को ऐसा लगता है कि ब्रह्म राम ढक गया है, दूषित हो गया, दिख नहीं रहा है। राम तो आकाश की तरह सदा एक सा है।

राम के प्रकाश से ही हम सब व सारा जगत् प्रकाशित है

बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता ॥117:5॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई ॥117:6॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू ॥117:7॥

बिषय = विषय हैं, *करन* = इन्द्रियाँ हैं, *सुर* = इन्द्रियों के देवता हैं, *जीव* = फिर जीव है, *समेता* = इन सबमें, *सकल एक तें एक सचेता* = क्रम से अधिक-अधिक चेतना दिखाई देती है, *सब कर परम प्रकासक जोई* = इन सबका जो परम प्रकाशक है, *राम अनादि अवधपति सोई* = वही राम जो निर्गुण है, सगुण रूप में अयोध्या के राजा हैं, *जगत प्रकास्य* = संसार प्रकाश्य है, *प्रकासक रामू* = उसको प्रकाशित करने वाले राम हैं, *मायाधीस ग्यान गुन धामू* = वे माया के स्वामी हैं और ज्ञान तथा गुणों के धाम हैं।

शिव जी प्रभु राम की पहचान बताते हैं, इन चौपाइयों को बहुत गंभीरता से ध्यानपूर्वक समझने का प्रयास करें।

1. सबसे पहले विषय हैं जैसे रूप, स्वाद, गंध, स्पर्श और ध्वनि, उसके बाद इन्द्रियाँ हैं जैसे आँख, जीभ, कान, त्वचा व नाक, फिर इन्द्रियों के देवता हैं जिनके कारण इन्द्रियाँ कार्य करती हैं, उसके बाद जीव है। इन चारों में क्रम से अधिक-अधिक चेतना होती है। यह चेतना कहाँ से आती है? उसी ब्रह्म राम से।
2. इन्द्रियाँ अपने आप में जड़ हैं, पर कानों से सुन रहे हैं, आँखों से देख रहे हैं, कैसे? प्रत्येक इन्द्रिय का एक देवता है, जो वहाँ बैठकर उस इन्द्रिय का कार्य कर रहा है। प्रत्येक इन्द्रिय व उसके देवता में ब्रह्म राम से ही चेतना का प्रकाश आ रहा है, जिससे वह कार्य कर रहा है।
3. इन्द्रियों के देवता के बाद जीव है। जीव मायने हम हैं, इस बात का बोध होना। किसी से पूछो तुम कौन हो तो कहेगा, हाँ भई हम हैं न। यह जो हम हैं का अनुभव है वह कैसे है? कहते हैं उसी ब्रह्म राम की चेतना के प्रकाश का है। वही तो जीव में विद्यमान होकर हमें हम होने का बोध करा रहा है।
4. सूर्य का प्रकाश जिस वस्तु पर पड़ता है, प्रकाश उसी वस्तु का रूप धारण कर लेता है। प्रकाश व वस्तु अलग-अलग नहीं दिखते, एक ही लगते हैं। इसी प्रकार ब्रह्म राम का प्रकाश जब इन्द्रियों पर पड़ता है तो वह इन्द्रियों जैसा ही दिखता है। आँखें इस प्रकार लगती हैं, जैसे ये स्वयं ही प्रकाशित हों।
5. राम जो सबको प्रकाशित करते हैं, उनका प्रकाश कैसा है? परम प्रकाश। सबको प्रकाशित करता है, पर सबसे परे है। जिन्हें प्रकाशित करता है उनसे

प्रभावित नहीं होता है। इन्द्रियाँ नष्ट हो जायें पर वह नष्ट नहीं होता, शरीर समाप्त हो जाये पर ब्रह्म राम की चेतना का प्रकाश नष्ट नहीं होता है।

6. वही राम निर्गुण होकर हमारी मन-बुद्धि-इन्द्रियों को प्रकाशित करते रहते हैं। सगुण होकर अयोध्या के राजा बन जाते हैं।
7. अंत में शिव जी कहते हैं कि यह संसार प्रकाश्य है, मायने उसका स्वयं का प्रकाश नहीं है। वह ब्रह्म-राम के प्रकाश से प्रकाशित है। ब्रह्म-राम प्रकाशक हैं मायने वे अपने प्रकाश से हमें संसार का ज्ञान कराते हैं। जैसे दीपक जलाया तो घड़ा दिखने लगा, मायने दीपक ने घड़े का ज्ञान करा दिया, पर घड़ा दीपक का ज्ञान नहीं करा सकता है। इसी प्रकार राम के प्रकाश ने तो संसार का, इन्द्रियों का ज्ञान करा दिया, पर इन इन्द्रियों से राम को जानना मुश्किल है। जो प्रकाशित करे वह स्वामी, जो प्रकाशित हो वह उसके अधीन। इस प्रकार राम सबके स्वामी हैं और हम सब उनके अधीन हैं।

ब्रह्म-राम की सत्ता से मिथ्या-माया सत्य भाषित होती है

जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया ॥117:8॥

जासु सत्यता तें = जिसकी सत्यता से, *जड़ माया* = अज्ञान स्वरूप माया, *भास सत्य* = सत्य जैसी लगती है, *इव मोह सहाया* = यही मोह में सहायता करती है।

रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥दोहा 117॥

रजत सीप महुँ भास जिमि = जैसे सीप में चाँदी का भास होता है, *जथा भानु कर बारि* = जैसे सूर्य की किरणों में पानी का भास होता है, *जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ* = यद्यपि यह आभास तीनों कालों में झूठा है, *भ्रम न सकइ कोउ टारि* = पर उस भ्रम को कोई हटा नहीं सकता है।

प्रभु राम की माया के प्रभाव को शंकर जी समझाते हैं:

1. माया तो मिथ्या है पर राम की सत्यता के कारण से वह सत्य लगती है। यह अज्ञान स्वरूप माया भी ज्ञान स्वरूप लगती है। इसके प्रभाव से व्यक्ति को अपना अज्ञान भी ज्ञान के समान लगता है। यही माया का प्रभाव है।

2. जैसे सीप सफेद-सफेद चाँदी के समान चमकती है, लगता है यह तो मूल्यवान धातु चाँदी ही है, पर जब भ्रम मिटे तो वह सीप दिखेगी।
3. जैसे रेगिस्तान में चमकती सूर्य की किरणों में पानी का आभास होने लगता है, जल का भ्रम मिटे तो बालू दिखे।
4. सारे जगत् में ब्रह्म राम हैं, पर मोह व भ्रम के कारण चाँदी व पानी की तरह केवल संसार दिखता है। भ्रम दूर हो तो प्रभु के दर्शन हो जायें।
5. भ्रम अपने आप नहीं मिटता है, इसको मिटाना मुश्किल है। सूर्य के प्रकाश से तो अंधेरे का भ्रम मिट गया पर हमारे अंदर का भ्रम अपने आप नहीं मिट सकता। यह वर्तमान, भूत व भविष्य तीनों कालों में बना रहता है।

जिनकी कृपा से भ्रम मिटे, हम जगें, आनंद पायें, वही राम हैं

एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई ॥118:1॥
जौं सपनें सिर काटै कोई। बिनु जागें न दूरि दुख होई ॥118:2॥
जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई ॥118:3॥

एहि बिधि जग = इस प्रकार संसार, *हरि आश्रित रहई* = राम में आश्रित रहता है, *जदपि असत्य* = यद्यपि यह असत्य है, *देत दुख अहई* = पर दु:ख तो देता ही है, *जौं सपनें सिर काटै कोई* = जैसे स्वप्न में कोई सिर काट रहा हो, *बिनु जागें* = तो बिना जागे, *न दूरि दुख होई* = दु:ख दूर नहीं होगा, *जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई* = जिसकी कृपा से इस प्रकार का भ्रम मिट जाये, *गिरिजा* = हे गिरिजा! *सोइ कृपाल रघुराई* = वही कृपालु राम हैं।

यह संसार इतना ठोस बना है, आँखों से दिखता है, फिर इसे मिथ्या क्यों कहते हैं? क्योंकि यह ब्रह्म-राम पर आश्रित रहता है। जो वस्तु अपने से नहीं है, दूसरे पर आश्रित है वह मिथ्या कहलाती है। यह जगत् बिना ब्रह्म के अस्तित्व में नहीं रह सकता, इस भाव में इसे मिथ्या कहते हैं, यह बात अच्छे से याद कर लेनी चाहिये। अब यह समझाते हैं कि जब संसार मिथ्या है तो दु:ख क्यों देता है?
1. स्वप्न में कोई सिर काटता है तो हम दु:खी होते रहेंगे, कल्पना में दु:ख होगा, जैसे ही नींद खुलेगी, सिर रहेगा, दु:ख दूर हो जायेगा। जाग्रत अवस्था में कोई सिर काटेगा तो दु:ख नहीं होगा, जब सिर कट गया तो दु:ख कौन करेगा?

2. इसी प्रकार जाग्रत अवस्था में अनेक प्रकार की हानियाँ होती रहती हैं, हम दु:खी होते रहते हैं। लेकिन दु:ख कब तक रहेगा? जब तक उस परमब्रह्म का ज्ञान नहीं होगा। ज्ञान आया, हम जाग गये, दु:ख दूर हो गया।
3. जिस ब्रह्म की कृपा से यह भ्रम मिट जाता है, हे पार्वती! उन्हीं कृपालु का नाम राम है।

वेदों ने ब्रह्म के अलौकिक कार्य कहे हैं, इससे ब्रह्म को समझें

आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा ॥118:4॥

आदि अंत कोउ जासु न पावा = जिनका आदि व अंत किसी को पता नहीं है, *मति अनुमानि निगम अस गावा* = अपनी बुद्धि के अनुसार वेदों ने बताया है।

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना ॥118:5॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥118:6॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ॥118:7॥

बिनु पद चलइ = बिना पैर के चलता है, *सुनइ बिनु काना* = बिना कान के सुनता है, *कर बिनु करम करइ बिधि नाना* = बिना हाथ के नाना प्रकार के कार्य करता है, *आनन रहित सकल रस भोगी* = बिना मुख के सभी रसों का स्वाद लेता है, *बिनु बानी बकता बड़ जोगी* = बिना वाणी के ही बहुत योग्य वक्ता है, *तन बिनु परस* = बिना त्वचा के स्पर्श करता है, *नयन बिनु देखा* = बिना नयन के देखता है, *ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा* = बिना नाक के ही अनेक तरह की गंध को सूंघता है।

असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥118:8॥

असि सब भाँति अलौकिक करनी = इस प्रकार के उसके सारे अलौकिक कार्य हैं, *महिमा जासु जाइ नहिं बरनी* = उसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान ॥दोहा 118॥

जेहि इमि गावहिं बेद बुध = जिसका इस प्रकार से वेद व पंडित गान करते हैं, *जाहि धरहिं मुनि ध्यान* = जिसका मुनि लोग ध्यान करते हैं, *सोइ*

दसरथ सुत = वही दशरथ के पुत्र हैं, *भगत हित* = भक्तों के हित के लिये, *कोसलपति भगवान* = वही भगवान अयोध्या के राजा बने हैं।

ब्रह्म का प्रमुख लक्षण बताते हैं कि उसका न प्रारंभ है न अंत है। कब ब्रह्म की उत्पत्ति हुई? उसका अंत कहाँ है? कोई नहीं जानता। वह नित्य निरन्तर बना रहता है। अपनी बुद्धि, समझ, अनुभव एवं अभिव्यक्ति की सीमा के आधार पर वेद, ब्रह्म के अलौकिक कार्यों का वर्णन करके यह बताते हैं कि वह कैसा है।

1. बिना कर्मेन्द्रियों के सभी कार्य करता है : पैर नहीं, पर चलता है, हाथ नहीं, पर सब कार्य करता है, मुख नहीं, पर सब कुछ खाता है, वाणी नहीं, पर वक्ता है।
2. बिना ज्ञानेन्द्रियों के सब करता है: बिना आँख के देखता है, कान नहीं, पर सब सुनता है, नाक नहीं, पर सूंघता है, जीभ नहीं, पर स्वाद लेता है, त्वचा नहीं, पर सब स्पर्श करता है।
3. इसे इस प्रकार समझें कि जब हम स्वप्न की रचना करते हैं तो क्या हमें हाथ-पैर की आवश्यकता होती है? हम तो यूँ ही स्वप्न की रचना करके उसमें देखते, सुनते व महसूस करते रहते हैं। वैसे ही ब्रह्म ने कल्पना की, संसार बन गया।
4. वह तो सबके अंदर बिना शरीर के ही बैठा है, हमारी आँख में चेतन होकर विद्यमान है, उसी से देख लेता है। नाक में बैठा है वहीं से सूंघ लेता है। कान में भी है वहीं से सुन लेता है। उसे अपनी इन्द्रियों की, कर्मेन्द्रियों की आवश्यकता ही नहीं है।
5. ब्रह्म सर्वत्र है, वह सूर्य के अंदर भी है, तो क्या सूर्य की गर्मी से जल नहीं जाता? अरे! वह तो अशरीरी है, गर्मी तो शरीर को लगती है। उत्तरी ध्रुव की बर्फ में भी बिना शरीर के व्याप्त है, इसलिये उसे सर्दी नहीं लगती। आशय है कि वह निर्लेप है, असंग है, उसके ऊपर किसी चीज का प्रभाव नहीं पड़ता है।
6. इस प्रकार ब्रह्म अलौकिक है, लौकिक मायने यह संसार, इसमें रहने वाले प्राणी, मन, बुद्धि व शरीर इत्यादि इनके धर्म अलग हैं। ब्रह्म इस लोक से भिन्न है इसलिये अलौकिक है। उसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है। वेद व बुद्धिमान उनकी महिमा गाते हैं, मुनि उनका ध्यान करते हैं।
7. वही अलौकिक ब्रह्म, भक्तों के हित के लिये महाराज दशरथ के पुत्र बने हैं, और अयोध्या के राजा कोसलपति हैं।

अंतर्यामी राम मेरे स्वामी हैं, जिनका नाम काशी में मुक्ति देता है

कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी ॥119:1॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी ॥119:2॥

कासीं मरत जंतु = काशी में मरते हुए प्राणी, *अवलोकी* = को देखकर, *जासु नाम बल* = जिसके नाम के बल से, *करउँ बिसोकी* = उस प्राणी को शोक रहित कर देता हूँ, *सोइ प्रभु मोर* = वही मेरे स्वामी हैं, *चराचर स्वामी* = जो चर व अचर की रचना करते हैं, *रघुबर* = वे राम, *सब उर अंतरजामी* = सबके हृदय में वास करते हैं, अंतर्यामी हैं।

पौराणिक कथा के अनुसार काशी में जो मरता है, शंकर जी उसके दाहिने कान में राम बोलते हैं, जिससे उसके सारे शोक दूर हो जाते हैं, वह मुक्त हो जाता है। शिव जी कहते हैं, वही राम समस्त प्राणी व सारे संसार की रचना करते हैं। वही सबको बनाने वाले, सबको चलाने वाले, सबके स्वामी हैं। वही मेरे भी स्वामी हैं। वे तो अंतर्यामी हैं, सबके मन की बात जानते हैं। हमें भी ऐसे ही भाव रखने का अभ्यास करना चाहिये।

राम-नाम विवशता से कहो या आदर से, दोनों में फलदायी है

बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं ॥119:3॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं ॥119:4॥

बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं = जिनका नाम विवशता में भी कोई ले लेता है, *जनम अनेक रचित अघ दहहीं* = उसके अनेक जन्मों के पाप जल जाते हैं, *सादर सुमिरन जे नर करहीं* = जो मनुष्य आदरपूर्वक उनका स्मरण करते हैं, *भव बारिधि* = वे इस संसार समुद्र को, *गोपद इव तरहीं* = गाय के खुर से बने गड्ढे के समान पार कर जाते हैं।

कोई व्यक्ति बीमार है, दवा का असर नहीं होता है, विवश होकर राम नाम जपता है, तो उसके भी दु:ख दूर होते हैं। बिना मन से जप करते हैं तो भी पाप कटते हैं, सुख मिलता है। स्वस्थ व्यक्ति, समझदार व्यक्ति, राम नाम की महिमा समझकर आदर से, श्रद्धा से राम नाम का जप करता है तो वह इस

संसार समुद्र से बिना परिश्रम के उतती आसानी से पार कर जाता है जितना आसान गाय के खुर के निशान को पार करना है। मन लगे या न लगे, भगवान के नाम का जप करो, गुरु-मंत्र का जप करो।

राम पर भ्रम करना अनुचित, इससे सब गुण चले जायेंगे

राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अबिहित तव बानी ॥119:5॥
अस संसय आनत उर माहीं। ग्यान बिराग सकल गुन जाहीं ॥119:6॥

राम सो परमातमा भवानी = हे भवानी! राम वही परमात्मा हैं, *तहँ भ्रम* = उनमें भी यदि भ्रम है, *अति अबिहित तव बानी* = ऐसे तुम्हारे वचन अत्यन्त अनुचित हैं, *अस संसय आनत उर माहीं* = इस प्रकार का संदेह मन में आते ही, *ग्यान बिराग सकल गुन जाहीं* = ज्ञान व वैराग्य सहित सभी गुण चले जाते हैं।

शिव जी इस प्रसंग को समाप्त करते हुए कहते हैं कि हे पार्वती! राम तो परमात्मा ही हैं, उनमें तुम्हें भ्रम है तो कैसे काम चलेगा? तुम्हारा इस प्रकार उन पर संदेह करना उचित नहीं है। परमात्मा में जिसे भ्रम है उसके ज्ञान व वैराग्य सहित सभी गुण चले जाते हैं।

पार्वती जी के कुतर्क दूर, राम में प्रेम व विश्वास हो गया

सुनि सिव के भ्रम भंजन बचना। मिटि गै सब कुतरक कै रचना ॥119:7॥
भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती। दारुन असंभावना बीती ॥119:8॥

सुनि सिव के भ्रम भंजन बचना = शिव जी के भ्रम को दूर करने वाले ऐसे वचन सुनकर, *मिटि गै सब कुतरक कै रचना* = पार्वती जी के मन के सारे कुर्तक समाप्त हो गये, *भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती* = श्रीराम के चरणों में अब प्रेम व विश्वास हो गया, *दारुन असंभावना बीती* = परमात्मा सगुण व निर्गुण होता है यह असंभावना मिट गई।

शिव जी के इन वचनों का क्या असर हुआ?
1. पार्वती जी को प्रभु राम व उनके परमब्रह्म परमात्मा होने का ठीक-ठीक ज्ञान हो गया जिससे मन में उल्टे-सीधे जो तर्क चल रहे थे वे सब समाप्त हो गये।

2. पार्वती जी के मन में प्रभु राम के प्रति प्रीति यानि प्रेम आ गया और प्रतीति मायने विश्वास भी हो गया।
3. निराकार ब्रह्म, आकार लेकर मनुष्य बन सकता है, यह असंभव लगने वाली बात संभव लगने लगी। यह असंभावना दूर हो गई।

शिव के प्रति कृतज्ञता प्रगट कर कहती हैं हम सुखी हो गये

पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि जोरि पंकरुह पानि ।
बोलीं गिरिजा बचन बर मनहुँ प्रेम रस सानि ॥दोहा 119॥

पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि = बार-बार शिव जी के चरण कमल को पकड़कर, *जोरि पंकरुह पानि* = अपने कमल के समान हाथों को जोड़कर, *बोलीं गिरिजा बचन बर* = पार्वती जी सुंदर वचन बोलती हैं, *मनहुँ प्रेम रस सानि* = मानों वे वचन प्रेम के रस में सने हों।

ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी ॥120:1॥
तुम्ह कृपाल सबु संसउ हरेऊ। राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ ॥120:2॥
नाथ कृपाँ अब गयउ बिषादा। सुखी भयउँ प्रभु चरन प्रसादा ॥120:3॥

ससि कर सम = चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल, *सुनि गिरा तुम्हारी* = आपके वचनों को सुनकर, *मिटा मोह सरदातप भारी* = क्वाँर माह की धूप के समान भारी मोह मिट गया है, *तुम्ह कृपाल* = आप कृपालु हैं, *सबु संसउ हरेऊ* = आपने मेरे सब संदेह दूर कर दिये हैं, *राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ* = अब राम जी का सही स्वरूप मेरी समझ में आ गया है, *नाथ कृपाँ* = हे नाथ! आपकी कृपा से, *अब गयउ बिषादा* = अब दु:ख दूर हो गया है, *सुखी भयउँ प्रभु चरन प्रसादा* = आपके चरणों के अनुग्रह से अब मैं सुखी हो गई हूँ।

पार्वती जी ने कृतज्ञता प्रगट करते हुए शिव जी के कमल के समान चरणों को पकड़ा, अपने कमल के समान हाथों को जोड़कर प्रणाम किया। बहुत गद्‌गद् हृदय से प्रेमपूर्वक कहती हैं:
1. चन्द्रमा के समान शीतल आपके वचनों से, क्वाँर की धूप के समान भारी मेरे अज्ञान का ताप दूर हो गया है।

2. मेरे सब संदेह दूर हो गये हैं, जिससे क्या सही है, क्या गलत है अब समझ में आ गया है। ब्रह्म क्या है, जीव क्या है, दोनों में क्या संबंध है, यह बात समझ में आ गयी है।
3. प्रभु राम का वास्तविक स्वरूप है सत्, चित्त व आनंद पर जब लीला करते हैं तो विभिन्न रूप या आकार धारण कर लेते हैं। जैसे सीता जी के वियोग में रो रहे हैं, तो यह उनका मनुष्य लीला का रूप है पर उनका स्वरूप उस समय भी सत्, चित्त व आनंद का रहता है, यह बात मैं अब समझ गई।
4. आपकी कृपा से मेरे सारे दु:ख दूर हो गये हैं, अब मैं सुखी हो गयी हूँ।

मनुष्य शरीर धारण करने का कारण समझाकर बताइये

अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड़ नारि अयानी ॥120:4॥
प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। जौं मो पर प्रसन्न प्रभु अहहू ॥120:5॥
राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी। सर्ब रहित सब उर पुर बासी ॥120:6॥
नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू ॥120:7॥

अब मोहि आपनि किंकरि जानी = अब मुझे अपनी दासी समझकर, *जदपि सहज जड़ नारि अयानी* = यद्यपि नारी स्वभाव के कारण मैं अज्ञानी हूँ, *प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू* = पहले मैंने जो और बातें पूछी थीं वे भी बताइये, *जौं मो पर प्रसन्न प्रभु अहहू* = हे प्रभु! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो, *राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी* = राम तो ब्रह्म हैं, चेतन हैं व अविनासी हैं, *सर्ब रहित सब उर पुर बासी* = वे निर्लिप्त हैं पर सबके हृदय में वास करते हैं, *नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू* = हे नाथ! उन्होंने मनुष्य शरीर क्यों धारण किया? *मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू* = हे वृषकेतु! मुझे समझाकर बताइये।

शिव जी की बातों से पार्वती जी के अनेक प्रश्नों का समाधान हो गया। उन्हें विश्वास हो गया कि परमात्मा ने ही राम बनकर अवतार लिया है, अब कथा में रुचि बढ़ गई। कहती हैं कि यदि आप मुझ पर प्रसन्न हों तो मैंने पहले प्रभु राम के संबंध में जो बाते पूछी थीं, उन्हें भी बताइये। राम ब्रह्म हैं, चेतन हैं, सदैव विद्यमान हैं, निर्लिप्त हैं, सबके हृदय में वास करते हैं, पर भक्तों के हित के लिये उन्होंने मनुष्य शरीर क्यों धारण किया? हे वृषकेतु! इसका कारण मुझे समझाकर कहिये।

उमा के प्रश्नों से शिव जी प्रसन्न

उमा बचन सुनि परम बिनीता। रामकथा पर प्रीति पुनीता ॥120:8॥

उमा बचन सुनि परम बिनीता = उमा के बहुत ही विनम्र वचन सुनकर, *रामकथा पर प्रीति पुनीता* = और राम-कथा में उनका परम प्रेम देखकर।

हियँ हरषे कामारि तब संकर सहज सुजान ।
बहु बिधि उमहि प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान ॥दोहा 120॥

हियँ हरषे = हृदय में प्रसन्न हुए, *कामारि तब संकर सहज सुजान* = कामनाओं का नाश करने वाले स्वाभाविक ही सुजान शंकर जी, *बहु बिधि उमहि प्रसंसि* = उमा की बहुत प्रकार से प्रशंसा करके, *पुनि बोले कृपानिधान* = फिर कृपानिधान शिव जी बोले।

पार्वती जी के विनम्रता पूर्वक प्रश्नों को सुनकर और रामकथा में प्रेम देखकर, कामनाओं का नाश करने वाले, स्वाभाविक ही कृपालु व सुजान शंकर जी हृदय में प्रसन्न हुए। उमा की बहुत प्रकार से प्रशंसा करके, उनके प्रश्न का उत्तर देना प्रारंभ करते हैं।

4. शिव जी राम-अवतार के कारणों का वर्णन करते हैं

(दोहा 121 से 124)

जैसे सरोवर में चार घाट होते हैं वैसे श्रीरामचरितमानस में चार संवाद हैं, चार श्रोता हैं व चार वक्ता हैं। प्रथम घाट में तुलसीदासजी की कथा चल रही है श्रोता सज्जन लोग हैं, स्थान अयोध्या है। दूसरे घाट में वक्ता याज्ञवल्क्य मुनि हैं, श्रोता भरद्वाज मुनि हैं और स्थान है तीर्थराज प्रयाग। इस प्रसंग से तीसरे घाट की कथा प्रारंभ होती है जिसमें वक्ता हैं शंकर जी, श्रोता हैं पार्वती जी और स्थान कैलास पर्वत है। पार्वती जी के पूछने पर शिव जी प्रभु राम के अवतार लेने के अनेक कारणों का वर्णन करते हैं, तीन कल्पों में अवतार लेने की कथाओं का विस्तार से वर्णन है– 1. नारद जी के कारण 2. मनु-शतरूपा के वरदान के कारण 3. राजा प्रतापभानु को श्राप के कारण। दो कल्पों का संक्षिप्त वर्णन है– 4. जय-विजय के कारण 5. जलंधर की पत्नी के कारण।

शिव जी कहते हैं 'रामचरितमानस' सुनो

सुनु सुभ कथा भवानि रामचरितमानस बिमल ।
कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड़ ॥सोरठा 120 (ख)॥

सुनु सुभ कथा भवानि = हे भवानी! शुभ कथा सुनो, *रामचरितमानस बिमल* = जिसका नाम रामचरितमानस है; यह निर्मल है, *कहा भुसुंडि बखानि* = यह कथा काकभुशुण्डि ने विस्तार से कही, *सुना बिहग नायक गरुड़* = पक्षियों के राजा गरुड़ ने इसे सुना।

तुलसीदास जी कहते हैं कि जो 'रामचरितमानस' शंकर जी ने माता पार्वती को सुनाया वही हम सबको सुनाते हैं। पार्वती जी ने पूछा होगा यह कथा आपको कहाँ से प्राप्त हुई? तो शिव जी कहते हैं यह कथा हमने काकभुशुण्डि जी से सुनी। भारतीय संस्कृति की अनुपम परंपरा है कि कथा कहने वाला यह नहीं कहता है कि यह हमारी रचना है। शिव जी तो सुजान हैं, सब जानते हैं पर कहते हैं कि हमने यह कथा काकभुशुण्डि से सुनी। सनातन धर्म की विशेषता है कि इसका न तो प्रारंभ है, न अंत है। अनादिकाल से परंपरा चली आ रही है।

रामचरितमानस के पहले राम अवतार के कारण को सुनो

सो संबाद उदार जेहि बिधि भा आगें कहब ।
सुनहु राम अवतार चरित परम सुंदर अनघ ॥सोरठा 120 (ग)॥

सो संबाद उदार = यह कथा बहुत श्रेष्ठ है, *जेहि बिधि भा* = इस कथा के बारे में, *आगें कहब* = आगे बतायेंगे, *सुनहु राम अवतार चरित* = अभी तो तुम राम के अवतार के कारण की कथा सुनो, *परम सुंदर अनघ* = जो परम सुंदर व पापों का नाश करने वाली है।

हरि गुन नाम अपार कथा रूप अगनित अमित ।
मैं निज मति अनुसार कहउँ उमा सादर सुनहु ॥सोरठा 120 (घ)॥

हरि गुन नाम अपार = प्रभु राम के नाम व गुण बहुत से हैं, *कथा रूप अगनित अमित* = उनकी कथा भी अनेक प्रकार की है, *मैं निज मति अनुसार*

कहउँ = मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहूँगा, *उमा सादर सुनहु* = हे उमा! तुम इसे आदर के साथ सुनो।

सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए। बिपुल बिसद निगमागम गाए ॥121:1॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई ॥121:2॥

सुनु गिरिजा = हे गिरिजा! सुनो, *हरिचरित सुहाए* = प्रभु के सुंदर चरित्रों को, *बिपुल बिसद* = जो विस्तृत व निर्मल हैं, *निगमागम गाए* = वेदों ने इन्हें गाया है, *हरि अवतार* = प्रभु अवतार, *हेतु जेहि होई* = जिस कारण से होता है, *इदमित्थं* = यही एकमात्र कारण है, *कहि जाइ न सोई* = ऐसा नहीं कहा जा सकता है।

शिव जी कहते हैं यह कथा बहुत श्रेष्ठ है, बहुत सी ज्ञान की बाते हैं, इसे हम आगे बतायेंगे। अभी तो तुम्हारा जो प्रश्न था कि प्रभु राम ने अवतार क्यों लिया उसकी कथा सुनो। प्रभु राम के गुण, नाम, कथा, रूप, चरित्र सभी अनेकों हैं। वेदों में भी इनके सुंदर, विस्तृत और निर्मल चरित्रों का वर्णन है। अवतार के अनेक कारणों का मैं अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन करता हूँ, पर ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि यही एकमात्र कारण है, जिसके कारण प्रभु राम अवतार लेते हैं।

अवतार के कारण तर्क से नहीं समझे जा सकते हैं

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी ॥121:3॥
तदपि संत मुनि बेद पुराना। जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना ॥121:4॥
तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही। समुझि परइ जस कारन मोही ॥121:5॥

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी = प्रभु राम मन; बुद्धि व वाणी से परे हैं, *मत हमार अस* = ऐसा हमारा मत है, *सुनहि सयानी* = तुम तो ज्ञानवान् हो; इसे सुनो, *तदपि संत मुनि बेद पुराना* = फिर भी; संतों; मुनियों; वेदों व पुराणों ने, *जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना* = अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा वर्णन किया है, *तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही* = वैसा ही मैं तुमको सुनाता हूँ, *समुझि परइ जस कारन मोही* = उसका जैसा कारण मेरी समझ में आता है; वह मैं तुमको सुनाता हूँ।

यह संसार तर्क से चलता है। विज्ञान के कार्य-कारण नियम संसार में लागू होते हैं, प्रभु राम पर नहीं। ब्रह्म जब सर्वव्यापक है, सर्वशक्तिमान है, तो वह

अपने संकल्प से ही रावण को मार सकता है, धर्म की स्थापना कर सकता है, उसे अवतार लेने की क्या आवश्यकता है? इस प्रकार के प्रश्न को तर्क कहते हैं। शिव जी कहते हैं राम तर्क के परे हैं, इसकी सीमा में नहीं आते हैं। वे मन, बुद्धि, वाणी से परे हैं, फिर भी वेदों ने, मुनियों ने जैसा वर्णन किया है, उसे मैं अपनी समझ के अनुसार तुम्हें सुनाता हूँ।

धर्म की स्थापना व भक्तों के हित के लिये अवतार लेते हैं

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥121:6॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ॥121:7॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥121:8॥

जब जब होइ धरम कै हानी = जब-जब धर्म नष्ट होता है, *बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी* = अधर्मी; अभिमानी; असुर स्वभाव के लोग ज्यादा हो जाते हैं, *करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी* = वे इतना ज्यादा अन्याय करते हैं कि वर्णन नहीं हो सकता है, *सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी* = विप्र; गाय; देवता व पृथ्वी बहुत कष्ट पाते हैं, *तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा* = तब-तब प्रभु राम आवश्यकता के अनुसार शरीर धारण करके, *हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा* = कृपानिधान राम सज्जनों के दु:ख को दूर करते हैं।

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु ॥दोहा 121॥

असुर मारि = दुष्टों को मारते हैं, *थापहिं सुरन्ह* = अच्छे लोगों की रक्षा करते हैं, *राखहिं निज श्रुति सेतु* = अपने वेदों के सेतु की रक्षा करते हैं, *जग बिस्तारहिं बिसद जस* = संसार में उनका यश फैलता है, *राम जन्म कर हेतु* = राम के अवतार लेने के यही कारण हैं।

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं ॥122:1॥

सोइ जस गाइ = उसी यश का स्मरण करके, *भगत भव तरहीं* = भक्त संसार समुद्र को पार कर लेते हैं, *कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं* = कृपा के सागर प्रभु राम भक्तों के हित के लिये शरीर धारण करते हैं।

जब अधर्मी, अभिमानी व असुर स्वभाव के लोगों की संख्या ज्यादा हो जाती है, तो ये लोग बहुत अनीति के कार्य करते हैं, जिससे चार प्रकार के लोगों को बहुत कष्ट होता है। 1. विप्र– शास्त्र के ज्ञाता व धर्म का उपदेश देने वाले, 2. धेनु– गाय जो धर्म का प्रतीक है, 3. सुर– सज्जन स्वभाव के अच्छे गुण वाले लोग, 4. धरनी– पृथ्वी जो धर्म के बल पर ही बनी रहती है। तब प्रभु राम जिस समय जैसी आवश्यकता होती है, वैसा शरीर धारण करके अवतार लेते हैं।

अवतार लेकर प्रभु राम क्या कार्य करते हैं?

1. विप्र, धेनु, सुर व पृथ्वी के दु:खों को दूर करते हैं।
2. असुरों को मारकर सुरों की रक्षा करते हैं। असुर मायने जो दूसरों को कष्ट पहुँचाते हैं, सुर मायने सज्जन स्वभाव के लोग।
3. इस संसार में अच्छे से जीवन जीने के लिये वेदों में रास्ता बताया गया है। अवतार लेकर प्रभु वेदों में बताये मार्ग पर चलने के लिये प्रेरणा देते हैं। जीवन कैसे जीना चाहिये, यह स्वयं करके बताते हैं। इसलिये वे श्रुति-सेतु रक्षक कहलाते हैं। रामचरितमानस में भी वेदों का सार ही है।
4. जब राम अवतार लेकर लीलायें करते हैं तो उनके गुणों का, महिमा का संसार को पता चलता है, जिससे उनका यश बढ़ता है। भक्त लोग राम के यश का गुणगान करके भवसागर को आसानी से पार कर जाते हैं।

कुछ अवतारों की कथा कहते हैं, सावधानी से सुनो

राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका ॥122:2।।
जनम एक दुइ कहउँ बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी ॥122:3॥

राम जनम के हेतु अनेका = राम जी के अवतार लेने के अनेक कारण हैं, *परम बिचित्र एक तें एका* = जो एक-से-एक बढ़कर विचित्र हैं, *जनम एक दुइ कहउँ बखानी* = एक-दो जन्मों की कथा विस्तार से सुनाते हैं, *सावधान सुनु सुमति भवानी* = हे बुद्धिमान भवानी! तुम उसे सावधानी से सुनो।

अधर्म होने पर राम अवतार लेते हैं, पर वे कौन से कारण हैं जिनसे अधर्म बढ़ता है? कारण भी तो बनने चाहिये। राम ने कई बार अवतार लिया है। शिव

जी कहते हैं कि एक-दो जन्मों की कथा हम सुनाते हैं। शिव जी परम विचित्र कारण बताने जा रहे हैं, इसलिये पार्वती जी से कहते हैं कि तुम बुद्धिमान तो हो पर सावधानी से मेरी बात को सुनना।

एक कल्प में जय-विजय की श्रापमुक्ति के लिये अवतार लिया

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ ॥122:4॥
बिप्र श्राप तें दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई ॥122:5॥

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ = विष्णु जी के दो प्रिय द्वारपाल हैं, *जय अरु बिजय* = एक का नाम जय है दूसरे का विजय है, *जान सब कोऊ* = जिनको सब लोग जानते हैं, *बिप्र श्राप तें दूनउ भाई* = विप्रों के श्राप से दोनों भाइयों ने, *तामस असुर देह तिन्ह पाई* = असुरों का तामसी शरीर प्राप्त किया।

भगवान के अवतार की व्यवस्था कैसे बनती है, उसका वर्णन शिव जी करते हैं। पौराणिक कथा के अनुसार विष्णु भगवान वैकुण्ठ धाम में रहते हैं जहाँ पर पाँच द्वार हैं। इन्हें पार करते हुए भगवान के पास पहुँचते हैं। एक द्वार पर जय व विजय नाम के दो द्वारपाल हैं। इन्होंने एक बार सनतकुमार को द्वार पर ही रोक लिया, अंदर नहीं जाने दिया। सनतकुमार ने देखा कि इन्हें तो अभिमान आ गया है कि ये किसी को भी रोक सकते हैं, वैकुण्ठ धाम में भी इन्हें अभिमान है। यह सोचकर मुनियों ने श्राप दे दिया कि तुम भूमि पर जाकर रहो, तुम्हें राक्षसी शरीर प्राप्त हो, तुम असुर हो जाओ। इतने में भगवान द्वार पर आ गये, क्षमा माँगकर सनतकुमार को अंदर ले गये। जब जय-विजय ने श्राप से मुक्त होने की प्रार्थना की तब भगवान ने कहा जब तुम असुर होगे हम आवश्यकता के अनुसार शरीर धारण करके आयेंगे, तुमसे युद्ध करके, तुम्हें मारेंगे, आसुरी शरीर समाप्त होगा, तुम फिर से यहाँ वापस आ जाओगे। तीन जन्मों में ये राक्षस बने, भगवान ने इन्हें मारने के लिये चार बार अवतार लिया।

1. एक जन्म में ये हिरण्याक्ष व हिरण्यकश्यप राक्षस बने। भगवान ने सूअर का व नरसिंह का अवतार लेकर इन दोनों का वध किया।
2. फिर ये रावण व कुंभकर्ण बनकर जन्मे, भगवान ने अदिति-कश्यप, जो कौसल्या-दशरथ हुए, के पुत्र बनकर इन दोनों का वध किया।

3. तीसरे जन्म में कंस व शिशुपाल के रूप में इनका जन्म हुआ तब भगवान ने कृष्ण के रूप में अवतार लेकर दोनों का वध करके श्रापमुक्त किया। तुलसीदास जी ने दो जन्मों के अवतार का उल्लेख किया है।

पहले जन्म में हिरण्यकशिपु व हिरण्याक्ष बने

कनककसिपु अरु हाटकलोचन। जगत बिदित सुरपति मद मोचन ॥122:6॥
बिजई समर बीर बिख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता ॥122:7॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा ॥122:8॥

कनककसिपु = एक हिरण्यकशिपु हुआ, अरु *हाटकलोचन* = और दूसरा हिरण्याक्ष हुआ, *जगत बिदित* = संसार जानता है, *सुरपति मद मोचन* = इन्होंने देवताओं के राजा इन्द्र के गर्व को नष्ट कर दिया, *बिजई समर बीर बिख्याता* = ये युद्ध में विजय पाने वाले विख्यात वीर हुए, *धरि बराह बपु एक निपाता* = एक को तो सूअर के रूप में अवतार लेकर मारा, *होइ नरहरि दूसर पुनि मारा* = दूसरे को नरसिंह रूप धारण करके मारा, *जन प्रह्लाद सुजस बिस्तारा* = अपने भक्त प्रह्लाद के यश को बढ़ाया।

सनतकुमार के श्राप से एक द्वारपाल का जन्म, *हाटक* = सोना, *लोचन* = आँख, जिसकी सोने की आँखे हों उसे हिरण्याक्ष भी कहते हैं, के रूप में हुआ। उसे आँखों से सब जगह धन ही धन दिखता था, सदैव धन की लालच करता था।

दूसरा द्वारपाल *कनक* = सोना, *कसिपु* = पलंग, जो स्वर्ण के पलंग पर सोये, उसे हिरण्यकश्यप भी कहते हैं, के रूप में हुआ। उसका स्वभाव था खूब धन का संग्रह करे, फिर उसी पर सो जाये। इन्होंने इन्द्र को भी हरा दिया, बहुत वीर थे, हर युद्ध में जीत जाते थे, ये कभी हारे नहीं।

भगवान ने सूअर बनकर हिरण्याक्ष का वध किया

हिरण्याक्ष ने पृथ्वी को चुराकर मल में छिपा दिया। मल के भंडार से पृथ्वी को कौन निकाले? सूअर के अतिरिक्त किसी की हिम्मत नहीं। भगवान ने सूअर बनकर अवतार लिया, मल में घुसकर पृथ्वी को निकालकर चलने लगे, तो हिरण्याक्ष ने क्रोधित होकर आक्रमण कर दिया। सूअर रूप धारण किये हुए भगवान ने उसका वध करके पृथ्वी का उद्धार किया।

नरसिंह अवतार लेकर हिरण्यकशिपु का वध किया

हिरण्यकशिपु असुर स्वभाव का था, पर उसका पुत्र प्रह्लाद भगवान का भक्त था, वह सबको कहता था भगवान का नाम लो। हिरण्यकशिपु ने खिसियाकर कहा मैं ही भगवान हूँ, बताओ तुम्हारा भगवान कहाँ है? प्रह्लाद ने कहा वह तो सब जगह है। दरबार में एक खंभा की तरफ इशारा करके हिरण्यकशिपु ने कहा क्या इस खंभे में भी हैं? प्रह्लाद ने कहा, हाँ। बस उसने गदा उठायी, खंभे पर जोर से वार कर दिया, खंभा टूट गया उसमें से भगवान, नरसिंह रूप में प्रकट हुए। हिरण्यकशिपु का वध करके अपने भक्त प्रह्लाद का मान बढ़ा दिया।

दूसरे जन्म में रावण व कुंभकर्ण हुए

भए निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान ।
कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान ।।दोहा 122।।

भए निसाचर जाइ तेइ = वे फिर से निसाचर बन गये, *महाबीर बलवान* = वे बहुत बलवान् व शक्तिशाली थे, *कुंभकरन रावन* = एक का नाम कुंभकरण; दूसरे का रावण हुआ, *सुभट सुर बिजई* = वे दोनों देवताओं को जीतने वाले योद्धा थे, *जग जान* = संसार उन्हें जानता है।

मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना ।।123:1।।

मुकुत न भए हते भगवाना = भगवान के मारने पर भी मुक्त नहीं हुए, *तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना* = क्योंकि तीन जन्म तक असुर बनने का श्राप द्विजों ने दिया था।

भगवान ने दो अवतार लेकर हिरण्याक्ष व हिरण्यकशिपु का वध किया, पर वे आसुरी स्वभाव से मुक्त नहीं हुए क्योंकि सनतकुमार ने उन्हें श्राप दिया था कि तीन बार जन्म लेने के बाद आसुरी स्वभाव से छुटकारा होगा। दूसरे जन्म में वे दोनों देवताओं को जीतने वाले, बहुत शक्तिशाली योद्धा रावण व कुंभकर्ण हुए।

दशरथ-कौशल्या के पुत्र बनकर रावण कुंभकर्ण का वध किया

एक बार तिन्ह के हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी ।।123:2।।
कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता ।।123:3।।
एक कलप एहि बिधि अवतारा। चरित पवित्र किए संसारा ।।123:4।।

एक बार तिन्ह के हित लागी = एक बार उनके हित के लिये, *धरेउ सरीर* = शरीर धारण किया, *भगत अनुरागी* = भक्त प्रेमी भगवान ने, *कस्यप अदिति तहाँ पितु माता* = कश्यप पिता व अदिति माता थीं, *दसरथ कौसल्या बिख्याता* = जो दशरथ व कौसल्या के नाम से जाने जाते हैं, *एक कलप एहि बिधि अवतारा* = एक कल्प में इस प्रकार अवतार लेकर, *चरित पवित्र किए संसारा* = इस प्रकार संसार में पवित्र चरित्र किये।

कश्यप एक ऋषि थे, उनकी पत्नी का नाम अदिति था। इन्होंने जब अगले जन्म में शरीर धारण किया तब इनका नाम दशरथ व कौसल्या था। इनके पुत्र के रूप में भगवान राम ने अवतार लेकर रावण व कुंभकर्ण का वध किया। एक कल्प में इस प्रकार अवतार लेकर पवित्र चरित्र एवं लीला करके, संसार को भी पवित्र कर दिया। प्रत्येक कल्प में अवतार,चरित्र एवं लीला का रूप बदलता जाता है।

एक कल्प में जलंधर की पत्नी के श्राप के कारण अवतार लिया

एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर सन सब हारे ॥122:5॥
संभु कीन्ह संग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा ॥122:6॥
परम सती असुराधिप नारी। तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी ॥122:7॥

एक कलप सुर देखि दुखारे = एक कल्प में देवताओं को दु:खी देखकर, *समर जलंधर सन सब हारे* = क्योंकि वे सब जलंधर के साथ युद्ध में हार गये थे, *संभु कीन्ह संग्राम अपारा* = शंकर जी ने भी उसके साथ घोर युद्ध किया, *दनुज महाबल मरइ न मारा* = पर वह शक्तिशाली दानव नहीं मरा, *परम सती असुराधिप नारी* = उस दैत्यराज की पत्नी परम पतिव्रता स्त्री थी, *तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी* = उसकी स्त्री के सतीत्व के बल के कारण शिव जी उसे जीत नहीं पाते थे।

छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह ।
जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह ॥दोहा 123॥

छल करि टारेउ तासु ब्रत = छल से उसका पतिव्रत धर्म भंग करके, *प्रभु सुर कारज कीन्ह* = भगवान ने देवताओं का कार्य किया, *जब तेहिं जानेउ*

मरम = जब उसे पता चला, *तब श्राप कोप करि दीन्ह* = तब क्रोध में आकर उसने भगवान को श्राप दे दिया।

एक कल्प में जलंधर नाम का एक राक्षस पैदा हो गया, उसकी पत्नी बहुत पतिव्रता व भगवान की भक्त थी। अपनी पत्नी के पुण्य के कारण से जलंधर युद्ध में हारता नहीं था, उसने सारे देवताओं को हरा दिया। एक बार शंकर जी के साथ युद्ध हुआ, जो बहुत दिनों तक चलता रहा पर वह मरा नहीं। देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर भगवान ने कहा कि उसकी पत्नी पतिव्रता है, इसलिये वह मर नहीं सकता है। पर असुर का विनाश होना चाहिये, इसलिये उसकी पत्नी का छलपूर्वक पतिव्रत धर्म भंग कर दिया। और शिव जी ने जलंधर का वध कर दिया। जब उसकी पत्नी को पता चला कि विष्णु भगवान ने उसके साथ छल किया है तो उसने क्रोध में आकर भगवान को श्राप दे दिया।

जलंधर रावण बना, प्रभु राम ने मनुष्य बनकर उसका वध किया

तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना ॥124:1॥
तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ ॥124:2॥

तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना = उस स्त्री के श्राप को भगवान ने स्वीकार कर लिया, *कौतुकनिधि कृपाल भगवाना* = भगवान तो कौतुक करने वाले कृपालु हैं, *तहाँ जलंधर रावन भयऊ* = उस समय जलंधर रावण हुआ, *रन हति राम परम पद दयऊ* = प्रभु राम ने युद्ध में मारकर उसे अपना परम पद दिया।

एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नरदेहा ॥124:3॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेरी ॥124:4॥

एक जनम कर कारन एहा = एक जन्म का कारण यह था, *जेहि लगि राम धरी नरदेहा* = जिसके कारण ब्रह्म राम ने मनुष्य शरीर धारण किया, *प्रति अवतार कथा प्रभु केरी* = प्रभु के प्रत्येक अवतार की कथा को, *सुनु मुनि* = हे मुनि सुनो, *बरनी कबिन्ह घनेरी* = कवियों ने अनेक प्रकार से वर्णन किया है।
जलंधर की पतिव्रता स्त्री के श्राप को भगवान ने स्वीकार कर लिया। अगले जन्म में जलंधर रावण हुआ, उसकी पत्नी मंदोदरी हुई। श्राप को पूरा करने

के लिये भगवान ने मनुष्य बनकर राम रूप में अवतार लिया, रावण का वध करके उसे मुक्त कर दिया। भगवान कौतुकी हैं इसलिये विचित्र-विचित्र नाना प्रकार के कार्य करते हैं, और वे कृपालु भी हैं इसलिये भक्तों पर कृपा करते रहते हैं।

रामचरितमानस में कई कल्पों के अवतार की कथा का समावेश है

जय-विजय वाली कथा में रावण को तीन बार जन्म लेना पड़ा तब वह मुक्त हुआ पर जलंधर की कथा में एक ही बार रावण बना, मरने पर परम् पद प्राप्त हुआ। लंकाकाण्ड में जब प्रभु राम रावण को मारते हैं, तो उसका प्रकाश, तेज राम में समा जाता है। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में यह बात अनेक बार कही है कि कल्प-कल्प में राम अवतार हुआ है, जिसका वर्णन कवियों ने, मुनियों ने अनेक प्रकार से किया है। तुलसीदास जी को जिस कल्प की घटना अच्छी लगी, शिक्षाप्रद लगी, कहने लायक लगी, उसको ले लिया, ऐसा नहीं है कि एक ही अवतार की बात कहे, दूसरे की बिल्कुल न बोले।

एक कल्प में नारद के श्राप के कारण अवतार लिया

नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा ॥124:5॥

नारद श्राप दीन्ह एक बारा = एक बार नारद जी ने श्राप दे दिया, *कलप एक तेहि लगि अवतारा* = एक कल्प में जिसके कारण अवतार लिया।

दो कल्पों की कथा कहने के बाद शिव जी पार्वती से कहते हैं कि एक कल्प में नारद ने भगवान को श्राप दे दिया जिसके कारण उन्हें अवतार लेना पड़ा।

पार्वती आश्चर्य से पूछती हैं, ज्ञानी-भक्त नारद ने क्यों श्राप दिया!

गिरिजा चकित भईं सुनि बानी। नारद बिष्नुभगत पुनि ग्यानी ॥124:6॥
कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा ॥124:7॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी ॥124:8॥

गिरिजा चकित भईं सुनि बानी = यह बात सुनकर पार्वती जी आश्चर्यचकित हो गईं, *नारद बिष्नुभगत पुनि ग्यानी* = नारद तो विष्णु जी का भक्त है और

ज्ञानी भी है, *कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा* = किस कारण से मुनि ने श्राप दे दिया?, *का अपराध रमापति कीन्हा* = लक्ष्मीपति विष्णु जी ने ऐसा क्या अपराध कर दिया? *यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी* = हे पुरारी! यह कथा हमें सुनाइये, *मुनि मन मोह आचरज भारी* = मुनि नारद के मन में मोह हो, यह बहुत आश्चर्य की बात है।

पार्वती जी को यह बात सुनकर आश्चर्य हुआ कि नारद तो भक्त व ज्ञानी दोनों हैं, फिर वे श्राप कैसे दे सकते हैं? वे दो प्रश्न पूछकर यह कथा विस्तार से सुनने की इच्छा व्यक्त करती हैं, प्रश्नों को ध्यान में रखें, तब शिव जी के उत्तर समझ में आयेंगे।

1. श्राप तो तब कोई देगा जब क्रोध आये, क्रोध तब आता है जब मोह हो। नारद जैसे ज्ञानी व भक्त मुनि को मोह हो जाये तब दुनिया में मोह से बचेगा कौन? पार्वती जी पूछती हैं नारद के मोह का क्या कारण है?
2. श्राप तब दिया जाता है जब किसी ने अपराध किया हो। भगवान ने ऐसा कौन-सा अपराध कर दिया जिससे उन्हें श्राप स्वीकार करना पड़ा?

न कोई ज्ञानी न मूर्ख, राम जब जिसे जैसा बना दें!

बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ ॥दोहा 124 (क)॥

बोले बिहसि महेस तब = शंकर जी मुस्कुरा कर कहते हैं, *ग्यानी मूढ़ न कोइ* = न तो कोई ज्ञानी है, न कोई मूर्ख है, *जेहि जस रघुपति करहिं* = जिसको राम जैसा कर देते हैं, *जब सो तस तेहि छन होइ* = तब वह उस क्षण वैसा ही हो जाता है।

शंकर जी हँसकर कहते हैं अरे! कौन ज्ञानी? कौन अज्ञानी? ये सब तो भगवान के बनाये हुए हैं। मेरे प्रभु राम जिस क्षण जिसको जैसा बना देते हैं, उस क्षण वह वैसा ही बन जाता है। सब उनकी कृपा है, वे चाहे जिसे ज्ञानी बना दें, चाहे अज्ञानी बना दें। शंकर जी की बात को इस प्रकार समझें कि भगवान की कृपा हम सब पर सदैव एक समान बनी रहती है। परंतु माया का चक्कर चलता रहता है, वह घूमती रहती है, कभी वह हमें ऐसे घेर लेती है कि भगवान का ज्ञान, प्रकाश, भक्ति सब लुप्त हो जाते हैं, और हम अज्ञानी जैसे व्यवहार करने लगते हैं।

नारद-मोह की कथा भी राम-कथा ही है, वैसी ही फलदायी है

कहउँ राम गुन गाथ भरद्वाज सादर सुनहु ।
भव भंजन रघुनाथ भजु तुलसी तजि मान मद ॥सोरठा 124 (ख)॥

कहउँ राम गुन गाथ = मैं राम के गुणों की कथा कहता हूँ, *भरद्वाज सादर सुनहु* = भरद्वाज तुम आदर के साथ सुनो, *भव भंजन रघुनाथ* = संसार के चक्कर से मुक्त कराने वाले राम जी हैं, *भजु तुलसी तजि मान मद* = तुलसीदास जी कहते हैं कि मान और मद का त्याग कर प्रभु राम का स्मरण करो।

तुलसीदास जी याद दिलाते रहते हैं कि जो कथा शिव जी ने पार्वती जी को सुनाई वही कथा याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज जी को प्रयाग में सुना रहे हैं। कहते हैं कि मैं राम-कथा सुनाता हूँ, पर सुनाते हैं नारद-मोह की कथा, क्योंकि यह भी राम-कथा ही है। इसमें नारद जी एक पात्र हैं, इसलिये इसे भी आदर के साथ सुनो। तुलसीदास जी नारद-मोह की कथा सुनने का फल भी बताते हैं कि यह संसार के चक्कर से मुक्त कराने वाली है। नारद जी के मन में उपजे मोह व क्रोध को दूर करके, जैसे भगवान उनके हृदय को शुद्ध कर देते हैं, वैसे ही इसके सुनने से हमारे भी मन के विकार दूर होते हैं व चित्त शुद्ध हो जाता है।

5. नारद-मोह की कथा

(दोहा 125 से 140)

हिमालय की सुंदर गुफा के पास बहती हुई गंगा जी के पवित्र वातावरण को देखकर नारद जी वहीं रहकर भगवान का स्मरण करने लगते हैं। उनकी समाधि की उच्च अवस्था देखकर इन्द्र भयभीत होकर कामदेव को समाधि भंग के लिये भेजता है, जो सारे प्रयास करके हार जाता है। नारद जी पर न काम का प्रभाव हुआ न उन्हें गुस्सा आया। पर काम-क्रोध जीतने का अहंकार आ गया। अहंकार आते ही भगवान का स्मरण त्याग करके शंकर जी व विष्णु जी को अपनी गुणगाथा बताने लगे। विष्णुजी ने अपने भक्त का अहंकार समाप्त करने के लिये, ऐसी माया रच दी कि नारद जी में काम-क्रोध दोनों आ गये। क्रोध में विष्णु जी को श्राप दे देते हैं। फिर नारद जी को अपनी भूल का अहसास हो जाता है, क्षमा माँगते हैं, भगवान उन्हें

वर देते हैं कि अब तुम्हें हमारी माया कभी परेशान नहीं करेगी। यही हम सबके साथ होता है, हमें अपने अच्छे होने का अहंकार जल्दी आ जाता है, इसके आते ही हमारे अंदर की वे सब अच्छाइयाँ नष्ट हो जाती हैं। इस प्रसंग का पाठ करते समय नारद जी का स्मरण करें, बार-बार पाठ से चित्त में इतना अधिक प्रभाव होगा कि अच्छे होने का अहंकार छूटेगा और भगवान की भक्ति मिलेगी।

हिमालय की पवित्र गुफा देख नारद के मन में भक्ति आ गई

हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि ॥125:1॥
आश्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवरिषि मन अति भावा ॥125:2॥

हिमगिरि = हिमालय पर्वत में, *गुहा एक अति पावनि* =एक अत्यंत पवित्र गुफा थी, *बह समीप सुरसरी सुहावनि* = उस गुफा के पास गंगा जी की सुंदर धारा बहती थी, *आश्रम परम पुनीत सुहावा* = वहाँ पर बहुत ही सुंदर व पवित्र आश्रम था, *देखि देवरिषि मन अति भावा* = नारद जी को यह स्थान बहुत ही सुंदर लगा।

निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा ॥125:3॥
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी ॥125:4॥

निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा = पर्वत; नदी व आस-पास सुंदर वन देखकर, *भयउ रमापति पद अनुरागा* = नारद जी के मन में भगवान की भक्ति जागृत हो गई, *सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी* = हरि का स्मरण करने से श्राप का असर नहीं हुआ, *सहज बिमल मन लागि समाधी* = निर्मल मन में भगवान का स्मरण करते ही नारद जी की समाधि लग गयी।

हिमालय पर्वत में एक पवित्र गुफा थी, जिसके समीप ही गंगा जी थी, चारों तरफ सुंदर बगीचा व वन था। स्थान की पवित्रता को देखकर नारद जी के हृदय में छिपी हुई भक्ति जागृत हो गई। नारद जी वहीं ठहर गये, गंगा में स्नान करने लगे व भगवान का स्मरण करने लगे। नारद जी को एक श्राप है कि वे ढाई घड़ी से ज्यादा एक स्थान पर टिक नहीं सकते, बस चलते-फिरते रहें। जब वे भगवान का स्मरण करने लगे तो श्राप कुछ नहीं कर पाया, वे स्थायी रूप

से वहीं ठहर गये। उनका हृदय तो निर्मल था ही, जैसे ही भगवान का ध्यान किया समाधि लग गयी, संसार भूल गये। उन्हें सर्वत्र परमात्मा दिखने लगे, बहुत समय तक उसी भाव में बने रहे।

स्थान का प्रभाव मन में होता है

जिस स्थान में यज्ञ होता है, मंत्र जप होता है, ऋषि-मुनि तपस्या किये हों या भगवान ने अवतार लेकर लीला की हो वह स्थान पवित्र कहलाता है। जब हम ऐसे स्थान में पहुँचते हैं, तब हमारे अंदर छिपे हुए अच्छे भाव, भगवान के प्रति प्रेम, भक्ति जागृत हो जाती है। अपवित्र स्थान पर जाने से पाप प्रकट होते हैं।

नारद जी की समाधि की अवस्था देखकर इन्द्र भयभीत

मुनि गति देखि सुरेस डेराना। कामहि बोलि कीन्ह सनमाना ॥125:5॥
सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हियँ जलचरकेतू ॥125:6॥

मुनि गति देखि = नारद जी की समाधि की अवस्था देखकर, *सुरेस डेराना* = इन्द्र डर गये, *कामहि बोलि* = कामदेव को बुलवाकर, *कीन्ह सनमाना* = उसका आदर-सत्कार किया, *सहित सहाय जाहु मम हेतू* = फिर कहा कि हमारे कार्य के लिये अपनी सेना लेकर जाओ, *चलेउ हरषि हियँ* = हर्षित होकर चल दिया, *जलचरकेतू* = मछली निशान की ध्वजा धारण करने वाले कामदेव।

सुनासीर मन महुँ असि त्रासा। चहत देवरिषि मम पुर बासा ॥125:7॥
जे कामी लोलुप जग माहीं। कुटिल काक इव सबहि डेराहीं ॥125:8॥

सुनासीर मन महुँ असि त्रासा = इन्द्र अपने मन में भयभीत है, *चहत देवरिषि मम पुर बासा* = उसे लगा कि देवर्षि नारद मेरा पद पाना चाहते हैं, *जे कामी लोलुप जग माहीं* = संसार में जो कामी व लोभी होते हैं वे, *कुटिल काक इव* = कुटिल कौआ के समान, *सबहि डेराहीं* = सबसे डरते रहते हैं।

सूख हाड़ लै भाग सठ स्वान निरखि मृगराज ।
छीनि लेइ जनि जान जड़तिमि सुरपतिहि न लाज ॥दोहा 125॥

सूख हाड़ लै भाग सठ स्वान = जैसे कुत्ता सूखी हड्डी का टुकड़ा लेकर भागे, *निरखि मृगराज* = सिंह को देखकर, *छीनि लेइ जनि जान जड़* = वह मूर्ख यह सोचता है कि सिंह कहीं छीन न ले, *तिमि सुरपतिहि न लाज* = इसी प्रकार इन्द्र को भी लज्जा नहीं आती है।

नारद जी की समाधि की अवस्था व भगवान का भजन करते देखकर इन्द्र डर गये। उन्हें लगा कि भगवान प्रसन्न होकर यदि वरदान माँगने को कहें तो नारद हमारा इन्द्रपद माँग लेंगे। इन्द्र को लगता है कि हम बहुत उँचे पद पर बैठे हैं, इससे ऊँची क्या चीज हो सकती है, तपस्या करके यदि कोई कुछ चाहेगा तो हमारा पद ही माँगेगा। इन्द्र को पता नहीं कि इन्द्र-पद से ऊपर भी कोई चीज है। इसी प्रकार संसार में जो लोग कामनाओं व लोभ में ही लिप्त रहते हैं वे तो सदैव कौओं के समान सबसे डरते रहते हैं। यदि कुत्ते के पास सूखी हड्डी का टुकड़ा हो तो वह शेर को देखकर सोचता है कि कहीं यह हमारा टुकड़ा छीन न ले, इसलिये डरकर भागता है। नारद जी के मन में इन्द्रपद की कामना है ही नहीं, पर इन्द्र को इस प्रकार डरने में लज्जा भी नहीं आती है।

कामदेव को समाधि भंग करने भेजते हैं

इन्द्र ने कामदेव को बुलवाया, उससे काम करवाना था इसलिये स्वागत किया, उसकी प्रशंसा की कि तुम्हारा सबके ऊपर शासन है, तुम बहुत शक्तिशाली हो। फिर कहा कि तुम अपनी सहायक सेना लेकर नारद जी के पास जाओ, हमारी रक्षा के लिये उनकी तपस्या को खंडित कर दो।

कामदेव ने समाधि भंग करने के अनेक उपाय किये

तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ। निज मायाँ बसंत निरमयऊ ॥126:1॥
कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा ॥126:2॥
चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। काम कृसानु बढ़ावनिहारी ॥126:3॥

तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ = उस आश्रम में जब कामदेव पहुँचा, *निज मायाँ बसंत निरमयऊ* = तो उसने अपनी माया से वसंत ऋतु का निर्माण कर दिया, *कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा* = तरह-तरह के वृक्षों पर रंग-बिरंगे फूल खिल गये, *कूजहिं कोकिल* = उन पर कोयल बोलने लगी, *गुंजहिं भृंगा* =

भौरें गुंजार करने लगे, *चली सुहावनि त्रिबिध बयारी* = शीतल; मंद व सुंगधित हवा चलने लगी, *काम कृसानु बढ़ावनिहारी* = जो कि मन में कामनाओं को बढ़ाने वाली थी।

रंभादिक सुर नारि नबीना। सकल असमसर कला प्रबीना ॥126:4॥
करहिं गान बहु तान तरंगा। बहुबिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा ॥126:5॥
देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना ॥126:6॥

रंभादिक सुर नारि नबीना = रंभा आदि देव स्त्रियाँ आ गईं, *सकल असमसर कला प्रबीना* = जो सब कलाओं में निपुण थीं, *करहिं गान बहु तान तरंगा* = वे अनेकों सुरों में गाना गाने लगीं, *बहुबिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा* = हाथों में गेंद लेकर तरह-तरह के खेल खेलने लगीं, *देखि सहाय मदन हरषाना* = अपने इन सहायकों को देखकर कामदेव मन में हर्षित हुआ, *कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना* = फिर उसने बहुत सारीं युक्तियाँ कीं।

कामदेव जब नारद जी के आश्रम में पहुँचा तो अपनी माया से बसंत का निर्माण कर दिया। आश्रम के आस-पास बहुत से वृक्षों में रंग-बिरंगे फूल आ गये, कोयल बोलने लगीं, भौंरे गुंजार करने लगे। शरीर को अच्छी लगने वाली शीतल, मंद व सुंगधित हवा चलने लगी। देवलोक से रंभा आदि स्त्रियाँ आ गईं जो नाच-गाना व खेल करने लगीं। इन सब सहायकों को देखकर कामदेव बहुत प्रसन्न हो गया। उसने वे सब युक्तियाँ कीं जिससे नारद जी का मन भगवान से हटकर संसार की तरफ आये, और उनकी समाधि भंग हो जाये।

नारद जी पर कोई असर नहीं, कामदेव नारद-चरणों में

काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी। निज भयँ डरेउ मनोभव पापी ॥126:7॥
सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू ॥126:8॥

काम कला = कामदेव की इन युक्तियों, *कछु मुनिहि न ब्यापी* = का असर नारद मुनि पर बिल्कुल नहीं हुआ, *निज भयँ डरेउ मनोभव पापी* = पापी कामदेव अपने मन में डर गया, *सीम कि चाँपि* = उस सीमा में प्रवेश, *सकइ कोउ तासू* = क्या कोई कर सकता है?, *बड़ रखवार रमापति जासू* = जिसके सबसे बड़े रक्षक, सीता जी के पति राम हों।

सहित सहाय सभीत अति मानि हारि मन मैन ।
गहेसि जाइ मुनि चरन तब कहि सुठि आरत बैन ॥दोहा 126॥

सहित सहाय = अपने सहायकों सहित, *सभीत अति* = बहुत डरकर, *मानि हारि मन मैन* = कामदेव मन में हार मानकर, *गहेसि जाइ मुनि चरन तब* = तब मुनि के चरणों को पकड़कर, *कहि सुठि आरत बैन* = वह मूर्ख डर-डर कर प्रार्थना करने लगा।

नारद मुनि के ऊपर कामदेव की कलाओं का कोई प्रभाव नहीं हुआ, वे भगवान के ध्यान में लगे रहे, विषयों की कामनायें मन में हुई ही नहीं, मन निष्काम बना रहा। यह देखकर काम अपने मन में डर गया, उसे लगा कि कहीं ये श्राप देकर हमें भस्म न कर दें। सहायकों सहित मन में हार मानकर, भयभीत कामदेव स्वयं नारद जी की शरण में जाकर प्रार्थना करने लगा कि हम क्या करें, हम तो इन्द्र के सेवक हैं, उसके कहने से आये हैं, आप तो भगवान के भक्त हो, आपका हम कुछ नुकसान नहीं करना चाहते।

जिसकी रक्षा राम करें, उसका कौन, क्या बिगाड़ सकता है?

'सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू' यह चौपाई बहुत प्रसिद्ध है, यह बात शिव जी पार्वती जी से कहते हैं। संसार में सबसे बड़े रक्षक तो सीता-पति प्रभु राम हैं। नारद जी की रक्षा राम कर रहे थे, इसलिये कामदेव की एक भी नहीं चली, वह उस सीमा में प्रवेश ही नहीं कर पाया। यदि हम पूजा करते हैं, ध्यान करते हैं, मंत्र-जप करते हैं तो भी आसक्तियों से स्वयं नहीं बच सकते, प्रभु राम रक्षा करते हैं, इसलिये बच पाते हैं।

काम-क्रोध विजयी नारद की इन्द्र-सभा में प्रशंसा

भयउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय बचन काम परितोषा ॥127:1॥
नाइ चरन सिरु आयसु पाई। गयउ मदन तब सहित सहाई ॥127:2॥

भयउ न नारद मन कछु रोषा = नारद जी के मन में कोई क्रोध नहीं आया, *कहि प्रिय बचन* = उन्होंने प्रिय वचन कहकर, *काम परितोषा* = कामदेव को संतुष्ट कर दिया, *नाइ चरन सिरु* = मुनि-चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया,

आयसु पाई = फिर उनकी आज्ञा लेकर, *गयउ मदन तब सहित सहाई* = तब कामदेव अपने सहायकों सहित वापस चला गया।

मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुरपति सभाँ जाइ सब बरनी ॥127:3॥
सुनि सब कें मन अचरजु आवा। मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिरु नावा ॥127:4॥

मुनि सुसीलता = नारद जी की सुशीलता, *आपनि करनी* = अपनी करतूत, *सुरपति सभाँ जाइ* = इन्द्र की सभा में पहुँचकर, *सब बरनी* = सब वर्णन किया, *सुनि सब कें मन अचरजु आवा* = यह सुनकर सबके मन में आश्चर्य हुआ, *मुनिहि प्रसंसि* = नारद मुनि की प्रशंसा की, *हरिहि सिरु नावा* = राम जी को प्रणाम किया।

नारद जी को जरा भी क्रोध नहीं आया। कामदेव से कहा तुम्हारा कोई दोष नहीं, तुमसे विरोध नहीं। इस प्रकार प्रिय वचन बोलकर उसे वापस भेज दिया। कामदेव अपने सहायकों सहित नारद जी के चरणों में प्रणाम करके इन्द्र की सभा में पहुँचे। वहाँ पर बताया कि हमने नारद जी की समाधि भंग के अनेक उपाय किये, पर हमारी कामनाओं का उन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ, उन्होंने तो काम को जीत लिया है। हमारी बाधाओं से उनके मन में क्रोध भी नहीं आया, वे तो हमसे प्रिय वचन ही बोलते रहे। सभा में उपस्थित सभी देवताओं ने नारद की काम-क्रोध पर विजय प्राप्ति पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए उनकी प्रशंसा की। पर प्रणाम मुनि को न करके हरि को किया, क्यों? भगवान ने ही अपने भक्त नारद की रक्षा की, यदि उनकी शक्ति न होती तो नारद बच नहीं पाते।

नारद जी में अहंकार उत्पन्न, हरि स्मरण व आश्रम छोड़ दिया

तब नारद गवने सिव पाहीं। जिता काम अहमिति मन माहीं ॥127:5॥

तब नारद गवने सिव पाहीं = तब नारद जी शिव जी के पास गये, *जिता काम* = काम को जीत लिया है, *अहमिति मन माहीं* = ऐसा अहंकार मन में आ गया।

कामदेव जब चला गया तब नारद जी के मन में यह अहंकार आ गया कि मैंने काम पर विजय प्राप्त कर ली, मैंने क्रोध को जीत लिया। काम दिखता है, क्रोध

दिखता है पर अहंकार दिखता नहीं है, यह चोरी से मन में घुसता है। फिर हरि-स्मरण भूल गये, उस सुंदर आश्रम को छोड़कर चल दिये। कहाँ जायेंगे? अहंकार में व्यक्ति अपनी तुलना दूसरे से करके, उसकी कमी निकालकर अपने को श्रेष्ठ मानता है। नारद जी, शिव जी से अपनी तुलना करते हैं। सोचते हैं, शंकर जी ने काम पर विजय प्राप्त की है, पर क्रोध तो आता है। हमें तो न काम है न क्रोध। चल दिये शिव जी के पास।

शिव के पास पहुँचकर अहंकार से अपनी विजय गाथा बताई

मार चरित संकरहि सुनाए। अतिप्रिय जानि महेस सिखाए ॥127:6॥
बार बार बिनवउँ मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोही ॥127:7॥
तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूँ। चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ ॥127:8॥

मार चरित संकरहि सुनाए = कामदेव की सब बातें शिव जी को सुनायी, *अतिप्रिय जानि महेस सिखाए* = शिव ने नारद को अपना प्रिय समझकर शिक्षा दी, *बार बार बिनवउँ मुनि तोही* = हे मुनि! मैं बार-बार आपसे निवेदन करता हूँ, *जिमि यह कथा सुनायहु मोही* = जिस प्रकार यह कथा मुझे सुनायी है, *तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूँ* = उस तरह श्रीहरि को कभी मत सुनाना, *चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ* = चर्चा भी चले तब भी इस बात को छिपा लेना।

अहंकार लेकर नारद जी शिव जी के पास पहुँचते हैं। बताया कि हम हिमालय पर समाधि में बैठे थे, इन्द्र ने कामदेव को भेजा, उसने बहुत लीलायें की, पर हम पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। हारकर उसने माफी माँगी, हमने बिना गुस्सा किये उसे क्षमा करके वापस भेज दिया। शिव जी को अहंकार दिख गया।

शिव जी ने समझाया कि विष्णु जी को ये बातें मत कहना

शंकर जी ने कहा तुम तो हमारे प्रिय हो, तुम्हें सुंदर बात बताते हैं। नारद जी ने सोचा होगा कि ये प्रशंसा करेंगे। पर शिव जी ने प्रशंसा करके नारद के अहंकार को बढ़ाया नहीं। व्यक्ति को प्रोत्साहित करने के लिये प्रशंसा आवश्यक है, पर साधना में यह बाधक है। जब शिष्य साधना में प्रगति करता है या सिद्धि पाता है तो सद्‌गुरु भी उसकी प्रशंसा नहीं करते। शिव जी ने

विनती करते हुए उपदेश दिया कि जैसे तुमने हमें यह सब बताया है वैसे विष्णु जी के सामने मत कहना, यदि वे अपने से बात चलाकर पूछें तो भी तुम उनको मत बताना। इस प्रकार शिव जी ने अहंकार के बीज को मिटाया नहीं, पर उसे दबाने का उपाय बता दिया।

शिव का उपदेश पसंद नहीं आया, नारद ब्रह्मलोक चले गये

संभु दीन्ह उपदेस हित नहिं नारदहि सोहान ।
भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान ॥दोहा 127॥

संभु दीन्ह उपदेस हित= शिव जी ने भलाई के लिये उपदेश दिया, *नहिं नारदहि सोहान*= पर नारद को यह अच्छा नहीं लगा, *भरद्वाज कौतुक सुनहु*= हे भरद्वाज कौतुक को सुनो, *हरि इच्छा बलवान*= भगवान की इच्छा बहुत बलवान् है।

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई । करै अन्यथा अस नहिं कोई ॥128:1॥
संभु बचन मुनि मन नहिं भाए। तब बिरंचि के लोक सिधाए ॥128:2॥

राम कीन्ह चाहहिं= राम जो करना चाहते हैं, *सोइ होई*= वही होता है, *करै अन्यथा*= उनकी इच्छा के विपरीत कार्य, *अस नहिं कोई*= करने वाला कोई नहीं है, *संभु बचन मुनि मन नहिं भाए*= शिव जी की बातें जब नारद को अच्छी नहीं लगी, *तब बिरंचि के लोक सिधाए*= तब वे वहाँ से ब्रह्मलोक को चले गये।

अहंकार में अपनी भलाई का कोई उपदेश भी समझ में नहीं आता है। नारद जी ने सोचा होगा कि शिव जी चाहते हैं कि उनकी प्रसिद्धि बनी रहे, और नारद का नाम न हो, इसलिये हमें मना कर रहे हैं। जब शिव जी का उपदेश अच्छा नहीं लगा तो वे वहाँ से अपने घर ब्रह्मलोक चले गये।

जो राम की इच्छा होगी वही होगा

भरद्वाज जी कहते हैं कि यह सब प्रभु राम का कौतुक है, वे जो करना चाहेंगे वही होगा। उनकी इच्छा के विपरीत कुछ नहीं हो सकता है। वे संसार को यह शिक्षा देना चाहते हैं कि नारद जैसे ज्ञानी व भक्त भी अहंकार में पड़कर कठोर परिणाम भोगते हैं। हम सबको अहंकार से बच कर रहना चाहिये।

ब्रह्मलोक से क्षीरसागर में विष्णु जी के पास पहुँचे

एक बार करतल बर बीना। गावत हरि गुन गान प्रबीना ॥128:3॥
छीरसिंधु गवने मुनिनाथा। जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा ॥128:4॥

एक बार करतल बर बीना = एक बार हाथ में सुंदर वीणा लिये हुए, *गावत हरि गुन* = भगवान नारायण का गुणगान करते हुए, *गान प्रबीना* = गानविद्या में निपुण, *छीरसिंधु गवने मुनिनाथा* = मुनि नारद क्षीर सागर पहुँचे, *जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा* = जहाँ वेदों के मस्तक के समान विष्णु जी निवास करते हैं।

गान विद्या में निपुण नारद जी, ब्रह्मलोक से निकलकर, एक बार हाथ में वीणा लिये हुए, भगवान का कीर्तन करते-करते क्षीरसागर पहुँच जाते हैं। वहाँ लक्ष्मी-पति विष्णु जी रहते हैं। रामचरितमानस में भगवान राम के एक हजार से ज्यादा नाम हैं। इस चौपाई में तुलसीदास जी उन्हें 'श्रुतिमाथ' नाम देते हैं।

विष्णु जी ने बगल में बैठाया, कहा बहुत दिनों बाद आये हैं

हरषि मिले उठि रमानिकेता। बैठे आसन रिषिहि समेता ॥128:5॥
बोले बिहसि चराचर राया। बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया ॥128:6॥

हरषि मिले उठि रमानिकेता = विष्णु जी सिंहासन से उठे व प्रसन्नता से मिले, *बैठे आसन रिषिहि समेता* = अपने आसन पर नारद जी को बैठा लिया, *बोले बिहसि* = मुस्कुराकर बोलते हैं, *चराचर राया* = चर व अचर सृष्टि के राजा, *बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया* = हे मुनि! आपने बहुत दिनों बाद दया की।

भगवान सिंहासन पर बैठे थे, मुनि आये तो वे उठे, उनका सम्मान करते हुए प्रेम से मिले। फिर अपने सिंहासन पर ही नारद जी को बैठा लिया। यहाँ पर तुलसीदास जी नारद जी की महिमा बताते हैं कि विष्णु जी उन्हें अपने सिंहासन पर बैठाते हैं। चर मायने जीव व अचर मायने पृथ्वी, जल आदि जितनी भी सृष्टि है उसके राजा विष्णु जी हैं। वे कहते हैं, हे मुनि! आपका बहुत दिनों बाद यहाँ आगमन हुआ है।

नारद जी ने विस्तार से काम-क्रोध विजय की गाथा बता दी

काम चरित नारद सब भाषे। जद्यपि प्रथम बरजि सिवँ राखे ॥128:7॥
अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया ॥128:8॥

काम चरित नारद सब भाषे = कामदेव का सारा चरित्र विस्तार से बता दिया, *जद्यपि प्रथम बरजि सिवँ राखे* = यद्यपि शिव जी ने पहले ही बताने से मना कर रखा था, *अति प्रचंड रघुपति कै माया* = प्रभु राम की माया बहुत बलवान् है, *जेहि न मोह* = जिसको यह मोहित न कर दे, *अस को जग जाया* = भला संसार में ऐसा कौन पैदा हुआ है।

जैसे ही भगवान ने पूछा, नारद जी को मौका मिल गया, उन्होंने बताया कि बहुत दिनों से आ नहीं पाये क्योंकि हिमालय पर्वत की एक सुंदर गुफा में ध्यान करते थे, समाधि लग गयी, इन्द्र ने घबराकर कामदेव को भेजा, पर उसका प्रभाव नहीं हुआ, हमें कामदेव पर क्रोध भी नहीं आया। शिव जी के मना करने के बाद भी नारद जी ने सब बातें बता दीं। याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि भगवान राम की माया बहुत शक्तिशाली है, इसके प्रभाव से संसार में कोई भी बच नहीं सकता है।

भगवान ने प्रशंसा कर दी, अहंकार का बीज वृक्ष बन गया

रूख बदन करि बचन मृदु बोले श्रीभगवान ।
तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं मोह मार मद मान ॥दोहा 128॥

रूख बदन करि = रूखा मुँह करके यानि बिना हँसे, *बचन मृदु बोले श्रीभगवान* = भगवान मधुर वाणी में कहते हैं, *तुम्हरे सुमिरन तें* = हे मुनि आपका स्मरण करने से ही, *मिटहिं मोह मार मद मान* = मोह; काम; मद और अभिमान दूर हो जाता है।

सुनु मुनि मोह होइ मन ताकें। ग्यान बिराग हृदय नहिं जाकें ॥129:1॥
ब्रह्मचरज ब्रत रत मतिधीरा। तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा ॥129:2॥

सुनु मुनि = हे मुनि सुनो, *मोह होइ मन ताकें* = मोह तो उसके मन में होता है, *ग्यान बिराग हृदय नहिं जाकें* = जिसके हृदय में ज्ञान व वैराग्य नहीं होता है, *ब्रह्मचरज ब्रत रत* = आप तो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले

हो, *मतिधीरा* = आपकी बुद्धि भी धैर्यवान् है, *तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा* = आपको कामदेव कैसे पीड़ित कर सकता है?

नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना ॥129:3॥
करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गरब तरु भारी ॥129:4॥

नारद कहेउ सहित अभिमाना = नारद जी ने अभिमान के साथ कहा, *कृपा तुम्हारि सकल भगवाना* = हे भगवन सब आपकी कृपा है, *करुनानिधि मन दीख बिचारी* = भगवान ने नारद के मन में देखकर सोचा, *उर अंकुरेउ गरब* = अहंकार का बीज तो, *तरु भारी* = भारी वृक्ष बन गया है।

नारद जी की बातें सुनकर भगवान हँसे नहीं, मृदु वचन में प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि आप तो बहुत महान् हैं, जब आपके स्मरण मात्र से ही व्यक्ति का मोह, काम, मद और अभिमान दूर हो जाता है, तब आपको ये कैसे हो सकते हैं, आप तो इन विकारों से मुक्त हैं। जिसके हृदय में ज्ञान व वैराग्य नहीं होता है उसे यह विकार होता है। आप तो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले हो, आपकी बुद्धि भी धैर्यवान् है, फिर कामदेव भला कैसे पीड़ित कर सकता है? नारद जी प्रशंसा सुनकर अहंकार से कहते हैं सब आपकी कृपा है। करुणानिधान भगवान ने देखा कि अहंकार का जो बीज छिपा हुआ था, वह भारी वृक्ष बन गया है।

भक्त के अहंकार-वृक्ष उखाड़ने का भगवान संकल्प लेते हैं

बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी। पन हमार सेवक हितकारी ॥129:5॥
मुनि कर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करबि मैं सोई ॥129:6॥

बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी = मैं शीघ्र ही इस वृक्ष को उखाड़ कर फेंक दूँगा, *पन हमार सेवक हितकारी* = क्योंकि भक्तों का हित करना ही मेरा प्रण है, *मुनि कर हित* = इसी में नारद मुनि का हित है, *मम कौतुक होई* = मेरा कौतुक भी होगा, *अवसि उपाय करबि मैं सोई* = इस प्रकार का उपाय मैं अवश्य करूँगा।

जिस हृदय में अहंकार हो वहाँ भगवान वास नहीं करते। भगवान ने सोचा नारद तो हमारा भक्त है, हमें तो इसके हृदय में रहना है, इसलिये अहंकार

के वृक्ष को जड़ से उखाड़ कर फेंक दूँगा। शिव जी उपदेश से अहंकार दूर करना चाहते थे, विष्णु जी आपरेशन से ठीक करने का संकल्प लेते हैं। हम लोग अहंकारी का समर्थन करते हैं, जिससे वह नाराज न हो, और हमारा काम करता रहे। पर भगवान तो स्वयं कष्ट सहकर भक्तों का हित करते हैं, नारद जी श्राप देंगे, प्रभु कष्ट सहेंगे, लीला करेंगे। इसे ही कौतुक कहते हैं।

नारद जी वहाँ से चले, भगवान ने माया को प्रेरित किया

तब नारद हरि पद सिर नाई। चले हृदयँ अहमिति अधिकाई ॥129:7॥
श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी ॥129:8॥

तब नारद = तब नारद जी ने, *हरि पद सिर नाई* = हरि चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया, *चले हृदयँ अहमिति अधिकाई* = फिर मन में और अधिक अहंकार लेकर वहाँ से चल दिये, *श्रीपति निज माया तब प्रेरी* = तब लक्ष्मी-पति भगवान ने अपनी माया को प्रेरित किया, *सुनहु कठिन करनी तेहि केरी* = माया बहुत कठिन है, वह कैसे कार्य करती है, उसे सुनो।

नारद जी, भगवान के चरणों में सिर नवाकर प्रणाम करके और अधिक अहंकार के साथ क्षीरसागर से निकलते हैं। भगवान ने अपनी माया को प्रेरित कर दिया। भगवान की कठिन माया कैसे कार्य करती है उसे अब सुनो।

माया ने नारद जी के रास्ते में बहुत सुंदर नया नगर बसा दिया

बिरचेउ मग महुँ नगर तेहिं सत जोजन बिस्तार ।
श्रीनिवासपुर तें अधिक रचना बिबिध प्रकार ॥दोहा 129॥

बिरचेउ मग महुँ नगर तेहिं = उस रास्ते में नगर बना दिया, *सत जोजन बिस्तार* = जो सौ योजन तक फैला था, *श्रीनिवासपुर तें अधिक रचना बिबिध प्रकार* = उस नगर की अनेक प्रकार की बनावट वैकुण्ठ से भी अधिक सुंदर थी।

भगवान ने जब माया को प्रेरित किया तो उसने नारद जी के रास्ते में सौ योजन लंबा नगर बना दिया। नारद जी उस नगर के पास पहुँचे। उस नगर में बहुत

सुंदर बगीचे व भवन आदि बने हैं, जो श्रीनिवास, जहाँ भगवान निवास करते हैं, से भी अधिक सुंदर है। क्या भगवान ने कारीगर लगाकर नगर बनवा दिया? नहीं, उन्होंने कल्पना की और नगर बन गया, वे एक बार में ही पूरी रचना कर देते हैं। जब हम यह भूल जाते हैं कि यह जगत् भगवान का बनाया है, तब हमें अहंकार या मोह होता है।

शीलनिधि राजा हैं, सुंदर नगरवासी, ऐश्वर्य संपन्न राज्य

बसहिं नगर सुंदर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनुधारी ॥130:1॥
तेहिं पुर बसइ सीलनिधि राजा। अगनित हय गय सेन समाजा ॥130:2॥
सत सुरेस सम बिभव बिलासा। रूप तेज बल नीति निवासा ॥130:2॥

बसहिं नगर सुंदर नर नारी = उस नगर में इतने सुंदर स्त्री-पुरुष रहते हैं, *जनु बहु मनसिज रति* = मानो बहुत से कामदेव व रति ने ही, *तनुधारी* = शरीर धारण कर लिया हो, *तेहिं पुर बसइ सीलनिधि राजा* = उस राज्य में शीलनिधि नाम का राजा है, *अगनित हय गय सेन समाजा* = जिसके पास असंख्य घोड़े, हाथी व सेना है, *सत सुरेस सम* = सौ इन्द्रों समान, *बिभव बिलासा* = उसका वैभव व ऐश्वर्य है, *रूप तेज बल नीति निवासा* = वह रूपवान्; तेजस्वी; बलवान् व राजनीति को जानने वाला था।

इस नगर के स्त्री-पुरुष तो इतने सुंदर हैं मानो कामदेव ने ही स्वयं पुरुषों का शरीर धारण कर लिया हो, और उसकी पत्नी रति ने स्त्रियों का वेष रख लिया हो। नगर के राजा का नाम शीलनिधि है, जो बहुत सुंदर, तेजस्वी, बलवान् व राजनीति का जानकार है। उसके पास तो अगनित हाथी, घोड़ों से सुसज्जित सेना है। उसका वैभव व ऐश्वर्य को देख कर लगता है कि यह सौ इन्द्रों के समान है।

राजकुमारी विश्वमोहिनी के लिये स्वयंवर हो रहा है

बिस्वमोहनी तासु कुमारी। श्री बिमोह जिसु रूपु निहारी ॥130:4॥
सोइ हरिमाया सब गुन खानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी ॥130:5॥
करइ स्वयंबर सो नृपबाला। आए तहँ अगनित महिपाला ॥130:6॥

बिस्वमोहनी तासु कुमारी = राजा की कन्या का नाम विश्वमोहिनी है, *श्री* = लक्ष्मी जी, *बिमोह* = मोहित हो जायें, *जिसु रूपु निहारी* = जिसके रूप को देखकर, *सोइ हरिमाया* = वही भगवान की माया है, *सब गुन खानी* = जो सब गुणों की खान है, *सोभा तासु कि जाइ बखानी* = उसकी शोभा का वर्णन कैसे कर सकते हैं, *करइ स्वयंबर सो नृपबाला* = उस राजा की कन्या के लिये स्वयंवर रचा गया है, *आए तहँ अगनित महिपाला* = जिसके लिये अनेकों राजा वहाँ पर आये हैं।

उस राजा की कन्या का नाम विश्वमोहिनी है जो इतनी सुंदर है कि लक्ष्मी जी भी उसे देखकर मोहित हो जायें। उन्हें लगे कि यह तो हमसे भी ज्यादा सुंदर है। माया के साथ हरि जोड़कर बताते हैं कि यह तो भगवान की ही माया है। हर व्यक्ति की भी अपनी माया है, व्यक्ति की माया स्वप्न है, जिसमें विभिन्न रूप दिखते हैं। भगवान की माया तो सब गुणों से भरपूर है, उसकी सुंदरता का वर्णन नहीं किया जा सकता है। राजकुमारी युवा हो गई है, उसके विवाह के लिये स्वयंवर रचा गया है, जिस राजा को वह चुन लेगी वही उसका पति होगा। स्वयंवर में बहुत से राजा अपने-अपने वैभव के साथ उपस्थित हुए हैं।

नारद जी राजमहल पहुँचे, राजा ने पूजन कर कन्या का भविष्य पूछा

मुनि कौतुकी नगर तेहिं गयऊ। पुरबासिन्ह सब पूछत भयऊ ॥130:7॥
सुनि सब चरित भूपगृहँ आए। करि पूजा नृप मुनि बैठाए ॥130:8॥

मुनि कौतुकी नगर तेहिं गयऊ = नारद जी कौतुक के लिये उस नगर में गये, *पुरबासिन्ह सब पूछत भयऊ* = नगर वासियों से सब जानकारी ली, *सुनि सब चरित* = सब समाचार सुनकर, *भूपगृहँ आए* = राजमहल पहुँच गये, *करि पूजा नृप मुनि बैठाए* = राजा ने पूजन करके मुनि को बैठाया।

आनि देखाई नारदहि भूपति राजकुमारि ।
कहहु नाथ गुन दोष सब एहि के हृदयँ बिचारि ॥दोहा 130॥

आनि देखाई नारदहि भूपति राजकुमारि = राजा ने राजकुमारी को बुलवाकर नारद जी को दिखलाया, *कहहु नाथ गुन दोष सब एहि के* = और कहा कि हे नाथ! इसके गुण-दोषों को बताइये, *हृदयँ बिचारि* = अपने मन में विचार करके।

भगवान का स्वभाव कौतुकी है, वैसे ही नारद जी का है। जो रास्ते में मिला उससे पूछ लिया कौन सा नगर है। लोगों ने बताया यह नगर है, यहाँ के ये राजा हैं, राजकुमारी का स्वयंवर होना है इसलिये इतनी भीड़ है। ये सब बातें सुनकर नारद जी राजमहल में गये, द्वारपालों ने राजा को बताया, वे तुरंत नारद जी को अंदर ले गये। राजा ने चरण धोये, उच्च आसन पर बैठाया, तिलक लगाया, माला पहनायी व आरती की। फिर राजा ने अपनी पुत्री को बुलवाकर प्रणाम करवाया। नारद जी से राजा ने कहा आप ज्योतिषी हैं, हमारी कन्या के भविष्य में क्या अच्छाइयाँ हैं, क्या बुराइयाँ हैं, विचारकर बताइये।

रूप व लक्षण देखकर नारद उससे विवाह की सोचने लगे

देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी ॥131:1॥
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने । हृदयँ हरष नहिं प्रगट बखाने ॥131:2॥

देखि रूप= कन्या का रूप देखकर, *मुनि बिरति बिसारी*= नारद जी वैराग्य भूल गये, *बड़ी बार लगि रहे निहारी*= बहुत देर तक उसको देखते ही रह गये, *लच्छन तासु बिलोकि भुलाने*= उसके लक्षणों को देख उसी में गुम हो गये, *हृदयँ हरष*= मन में हर्षित हुए, *नहिं प्रगट बखाने* = पर लक्षणों का वर्णन नहीं किया।

जो एहि बरइ अमर सोइ होई। समरभूमि तेहि जीत न कोई ॥131:3॥
सेवहिं सकल चराचर ताही। बरइ सीलनिधि कन्या जाही ॥131:4॥

जो एहि बरइ = जो इसके साथ विवाह करेगा, *अमर सोइ होई* = वह अमर हो जायेगा, *समरभूमि तेहि जीत न कोई* = युद्ध-भूमि में उसे कोई जीत नहीं सकता है, *सेवहिं सकल चराचर ताही* = सारा संसार उसकी सेवा करेगा, *बरइ सीलनिधि कन्या जाही* = शीलनिधि की कन्या जिसके साथ विवाह करेगी।

उस कन्या का रूप देखकर नारद जी अपने वैराग्य के गुण को भूल गये। बहुत देर तक उसकी तरफ देखते रहे। उन्होंने ज्योतिष ज्ञान से यह जान लिया कि इस कन्या के पति में तीन लक्षण होंगे। 1. वह अमर होगा 2. वह विश्वविजयी होगा 3. सारा संसार उसके अधीन होगा। यह सोचकर हर्षित हो गये कि यदि इससे मेरा विवाह हो जाये तो इसके प्रारब्ध से पति को प्राप्त होने वाले लाभ मुझे मिल जायेंगे।

मोह के कारण ज्योतिष विद्या का गलत अर्थ लगा लिये

ज्योतिष के अनुसार जो अमर, विश्वविजयी व सारे संसार द्वारा सेवित होगा वही इस कन्या का पति होगा। पर मोह के कारण नारद जी ने यह अर्थ लगा लिया कि जिससे यह कन्या विवाह कर लेगी उसमें ये सब गुण आ जायेंगे। ज्योतिष के जानकार भी मोह के कारण कई बार गलत बातें बता देते हैं, फिर लोग ज्योतिष विद्या को दोष देते हैं।

कन्या का भविष्य अच्छा है, कहकर चिंतित नारद चल दिये

लच्छन सब बिचारि उर राखे। कछुक बनाइ भूप सन भाषे ॥131:5॥
सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं। नारद चले सोच मन माहीं ॥131:6॥

लच्छन सब बिचारि = सब लक्षणों को विचार करके, *उर राखे* = मन में ही रखे रहे, *कछुक बनाइ भूप सन भाषे* = कुछ लक्षणों को बनाकर राजा से कह दिया, *सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं* = कन्या सुलक्षणी है ऐसा राजा से कहकर, *नारद चले* = नारद जी चल दिये, *सोच मन माहीं* = मन में चिंता है।

नारद जी सब लक्षण अपने मन में ही रखते हैं। अपने से बनाकर, राजा से कह दिया कि तुम्हारी पुत्री का भविष्य अच्छा है। चिंतित होकर नारद जी वहाँ से चल देते हैं। 'सोच' शब्द संस्कृत का है, जिसका आशय है चिंता करना। सदा प्रसन्न रहने वाले नारद के मन में कामना उत्पन्न हुई, कामना पूर्ण हो, इसके लिये चिंता हो गई। व्यक्ति को अपनी जिस अच्छाई का अहंकार होता है, अहंकार उसी अच्छाई को नष्ट कर देता है।

ऐसे रूप की कामना करते हैं, जिससे राजकुमारी उन्हे चुन लें

करौं जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी ॥131:7॥
जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला ॥131:8॥

करौं जाइ सोइ जतन = जाकर ऐसा उपाय करूँ, *बिचारी* = विचारने लगे, *जेहि प्रकार* = जिससे, *मोहि बरै कुमारी* = यह कन्या मुझे वरण कर ले, *जप तप कछु न होइ तेहि काला* = इस समय जप-तप से कुछ हो नहीं सकता, *हे बिधि* = हे प्रभु, *मिलइ कवन बिधि बाला* = मुझे यह कन्या किस तरह मिलेगी?

एहि अवसर चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल ।
जो बिलोकि रीझै कुअँरि तब मेलै जयमाल ॥दोहा 131॥

एहि अवसर = इस समय तो, *चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल* = अत्यंत शोभायमान विशाल रूप चाहिये, *जो बिलोकि* = जिसे देखकर, *रीझै कुअँरि* = राजकुमारी आकर्षित होकर, *तब मेलै जयमाल* = मेरे गले में जयमाला डाल दे।

नारद जी सोचते हैं कि कोई ऐसा उपाय करें कि जब हम उस स्वयंवर में जायें, राजकुमारी हमारी परम सुंदरता को देखकर, आकर्षित होकर, हमें ही वरण कर ले। एक विचार आया कि जप-तप करके सुंदर रूप पा सकते हैं, पर इसमें समय लगेगा। राजा आ गये हैं, राजकुमारी वर चुनने वाली है, समय बहुत कम है। फिर सोचते हैं, हे विधाता! हमारा यह कार्य कैसे हो?

मेरे तो भगवान ही सब कुछ हैं, उन्हीं से सुंदरता माँग लें

हरि सन मागौं सुंदरताई। होइहि जात गहरु अति भाई ॥132:1॥
मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ ॥132:2॥

हरि सन मागौं सुंदरताई = भगवान से सुंदरता माँग लूँ, *होइहि जात* = यदि उनके पास जाते हैं, *गहरु अति भाई* = तो भई बहुत देर हो जायेगी, *मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ* = पर मेरा हितैषी भगवान के अलावा कोई नहीं है, *एहि अवसर सहाय सोइ होऊ* = इस अवसर में वही सहायता करेंगे।

नारद जी राजभवन से निकलकर नगर में आये, किसी उद्यान में जाकर बैठ गये। अब उनके मन में आया कि भगवान से ही सुंदरता माँग लेते हैं। फिर सोचा वैकुण्ठधाम तक जाने व वापस आने में देर हो जायेगी। अब सोचते हैं कि हमारे सब कुछ तो भगवान ही हैं, जो भी कामना है वे ही पूरी कर सकते हैं, दूसरा उपाय नहीं है।

प्रार्थना करते हैं, कौतुकी-कृपालु प्रभु प्रगट हो जाते हैं

बहुबिधि बिनय कीन्हि तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला ॥132:3॥
प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने। होइहि काजु हिएँ हरषाने ॥132:4॥

बहुबिधि बिनय कीन्हि तेहि काला = उसी समय अनेक प्रकार से भगवान की प्रार्थना करने लगे, *प्रगटेउ प्रभु* = भगवान प्रगट हो गये, *कौतुकी कृपाला* = वे तो कौतुकी व कृपालु हैं ही, *प्रभु बिलोकि* = अपने प्रभु को देखकर, *मुनि नयन जुड़ाने* = मुनि के नयन तृप्त हो गये, *होइहि काजु* = कार्य पूर्ण होगा, *हिएँ हरषाने* = यह सोचकर मन में हर्षित हो गये।

नारद जी अपने हृदय में प्रभु का स्मरण करके प्रार्थना करते हैं, फिर विनती करते हैं कि हे प्रभु! प्रकट होकर मेरी सहायता करो। भगवान प्रकट हो गये। क्योंकि वे कौतुकी हैं मायने उन्हें लीला करनी है। वे कृपालु भी हैं, अपने भक्त नारद पर कृपा करके उन्हें शिक्षा देनी है। प्रभु को देखकर नारद जी के नयन तृप्त हो जाते हैं। यह सोचकर कि अब मेरा काम बन जायेगा, मन में हर्षित होते हैं।

नारद जी भगवान से उन्हीं का सुंदर रूप माँग लेते हैं

अति आरति कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई ॥132:5॥
आपन रूप देहु प्रभु मोही। आन भाँति नहिं पावौं ओही ॥132:6॥

अति आरति = बहुत दु:ख व विनम्रता से, *कहि कथा सुनाई* = पूरी घटना बताई, *करहु कृपा करि होहु सहाई* = कृपा करके मेरी सहायता कीजिये, *आपन रूप देहु प्रभु मोही* = हे प्रभु अपना रूप मुझे दे दीजिये, *आन भाँति* = और दूसरे उपाय से, *नहिं पावौं ओही* = उसे मैं प्राप्त नहीं कर सकता।

नारद जी विनम्रता व दीनता से भगवान को पूरी घटना बता देते हैं। कहते हैं सब ठीक है, नगर सुंदर, राजा सुंदर, कन्या सुंदर, बस आप सहायता कर दें, तो काम बन जाये। नारद जी जानते थे कि भगवान से सुंदर कोई नहीं है, राजकुमारी तभी चुनेगी जब सुंदर रूप हो। भगवान के ऊपर नहीं छोड़ते कि विवाह कैसे हो? सीधे कह देते हैं कि आप अपना सुंदर रूप मुझे दे दें, जिससे वह कन्या मुझे ही चुन ले, मेरा काम बन जाये।

मुँह से यह भी निकल गया कि जैसे मेरा हित हो वही करें

जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा ॥132:7॥
निज माया बल देखि बिसाला। हियँ हँसि बोले दीनदयाला ॥132:8॥

जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा = हे नाथ! जिस प्रकार से हमारा हित हो, *करहु सो बेगि* = वही तुरंत कीजिये, *दास मैं तोरा* = मैं आपका सेवक हूँ, *निज माया बल देखि बिसाला* = अपनी माया की इतनी अधिक शक्ति देखकर, *हियँ हँसि* = मन में हँसकर, *बोले दीनदयाला* = दीनों पर दया करने वाले भगवान बोलते हैं।

नारद जी के मुँह से एक बात और निकल गयी। क्या बोल गये? हे भगवान! हम तो आपके दास हैं, भक्त हैं, जिस प्रकार से हमारा हित हो, वही उपाय आप शीघ्रता से करने की कृपा करें। नारद जी को तो अपना हित विवाह करके, अमर होने, विश्वविजयी होने व संसार द्वारा पूजित होने में दिखता है। भगवान अपनी माया को देखते हैं कि यह कितनी शक्तिशाली है, नारद जैसे मुनि की बुद्धि को भी फेर देती है। भगवान मन में ही हँसते हैं, नारद के सामने नहीं, क्योंकि वे समस्या में फँसे हैं, दु:खी हैं, परेशान हैं। इसलिये भी हँसे कि नारद मायाजाल में अपना हित चाहता है, जबकि इसका हित इसमें नहीं है।

भगवान कहते हैं वही करेंगे, जिससे तुम्हारा परम-हित हो

जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार ।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार ॥दोहा 132॥

जेहि बिधि होइहि परम हित = जिस प्रकार परम हित होगा, *नारद सुनहु तुम्हार* = हे नारद! सुनो, तुम्हारा, *सोइ हम करब* = वही हम करेंगे, *न आन कछु* = और कुछ न करेंगे, *बचन न मृषा हमार* = हमारा वचन असत्य नहीं होता है।

कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ॥133:1॥
एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ। कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ ॥133:2॥

कुपथ माग = नुकसान करने की चीज खाने को माँगे, *रुज ब्याकुल रोगी* = रोग से व्याकुल रोगी, *बैद न देइ* = पर वैद्य उसे खाने को नहीं देता है, *सुनहु मुनि जोगी* = हे योगी मुनि सुनो, *एहि बिधि* = इसी प्रकार, *हित तुम्हार मैं ठयऊ* = मैंने भी तुम्हारा हित करने का निश्चय किया है, *कहि अस* = ऐसा कहकर, *अंतरहित प्रभु भयऊ* = भगवान अन्तर्धान हो गये।

भगवान ने कहा हे नारद सुनो! तुम हित की बात कहते हो, हम तो तुम्हारे परम हित का ही उपाय करेंगे, दूसरा नहीं। हमारी बात झूठ नहीं होगी। जैसे रोग से व्याकुल रोगी, नुकसान करने की चीज ही खाने के लिये माँगता है, पर वैद्य हानिकारक पदार्थ खाने को न देकर दवा ही देता है, उसी प्रकार हम भी वही करेंगे जिससे तुम्हारा हित हो। यह नहीं कहा कि सुंदर रूप देंगे, पर नारद जी ने गलत समझ लिया। भगवान अपने भक्त की प्रार्थना तो सुनते हैं, पर उसकी सभी कामनायें पूरी नहीं करते हैं, वही करते हैं जिससे उसका हित हो।

भगवान की स्पष्ट बात न समझकर, नारद जी स्वयंवर पहुँचे

माया बिबस भए मुनि मूढ़ा। समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा ॥133:3॥
गवने तुरत तहाँ रिषिराई। जहाँ स्वयंबर भूमि बनाई ॥133:4॥

माया बिबस = माया के वशीभूत होकर, *भए मुनि मूढ़ा* = मुनि ऐसे मूढ़ हो गये कि, *समुझी नहिं* = उन्हें समझ ही नहीं आया, *हरि गिरा निगूढ़ा* = भगवान की इतनी स्पष्ट बात भी, *गवने तुरत तहाँ रिषिराई* = ऋषिराज नारद जी तुरंत वहाँ गये, *जहाँ स्वयंवर भूमि बनाई* = जहाँ स्वयंवर होना था।

माया का प्रभाव बताते हैं, जिसके वश में आकर नारद जी जैसे ज्ञानी भी भगवान की इतनी सरल व स्पष्ट बात कि किसमें हित है, नहीं समझ पाते हैं। सुंदरता प्राप्त हो गई है, ऐसा सोचकर ऋषियों के राजा नारद जी तुरंत स्वयंवर में पहुँच जाते हैं।

कुरूप हैं, पर सबको नारद ही दिखे, सब प्रणाम करते हैं

निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा ॥133:5॥
मुनि मन हरष रूप अति मोरें। मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरें ॥133:6॥

निज निज आसन बैठे राजा = राजा अपने-अपने सिंहासन पर बैठे थे, *बहु बनाव करि* = बहुत प्रकार से सजधज कर, *सहित समाजा* = अपने समाज सहित, *मुनि मन हरष* = नारद जी मन में प्रसन्न हैं, *रूप अति मोरें* = कि मेरा रूप बहुत सुंदर है, *मोहि तजि* = मुझे छोड़कर, *आनहि बरिहि न भोरें* = कन्या दूसरे का वरण नहीं करेगी।

मुनि हित कारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना ॥133:7॥
सो चरित्र लखि काहुँ न पावा। नारद जानि सबहिं सिर नावा ॥133:8॥

मुनि हित कारन कृपानिधाना = मुनि के कल्याण के लिये भगवान ने, *दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना* = उन्हें ऐसा कुरूप बना दिया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता है, *सो चरित्र लखि काहुँ न पावा* = पर यह चरित्र कोई भी नहीं जान सका, *नारद जानि सबहिं सिर नावा* = नारद ही समझकर सबने प्रणाम किया।

वहाँ पर तमाम राजा लोग आये हुए थे, सब अपने लिये निश्चित किये हुए आसनों पर बैठे थे। वे सब खूब सज-धज कर आये थे, साथ में सेनापति आदि थे। नारद मुनि बहुत अभिमान के साथ मंडप के पास पहुँचे कि अब तो भगवान ने हमको इतना सुंदर रूप दे दिया है, ये राजा लोग हमारे सामने क्या हैं? राजकुमारी तो केवल हमारे गले में ही जयमाला पहनायेगी। भूल कर भी किसी दूसरे का वरण कर ही नहीं सकती है। मुनि के हित के लिये भगवान ने इतना कुरूप बना दिया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता है। भगवान ने ऐसी माया की, कि वहाँ अन्य लोगों को यह कुरूप दिखाई नहीं दिया। सबने सोचा नारद कौतुकी हैं, घूमते तो रहते हैं, यह कार्यक्रम देखने आये होंगे। सब उन्हें नारद ऋषि समझकर ही प्रणाम करते हैं।

शिव जी के दो गण वहीं थे, जो विप्र वेष में सब देख रहे थे

रहे तहाँ दुइ रुद्र गन ते जानहिं सब भेउ ।
बिप्रबेष देखत फिरहिं परम कौतुकी तेउ ॥दोहा 133॥

रहे तहाँ दुइ रुद्र गन = वहाँ शिव जी के दो गण थे, *ते जानहिं सब भेउ* = वे सब भेद जानते थे, *बिप्रबेष* = वे विप्र का वेष बनाकर, *देखत फिरहिं* = सारी लीला देखते घूम रहे थे, *परम कौतुकी तेउ* = वे दोनों भी बहुत मौजी थे।

जेहि समाज बैठे मुनि जाई। हृदयँ रूप अहमिति अधिकाई ॥134:1॥
तहँ बैठे महेस गन दोऊ। बिप्रबेष गति लखइ न कोऊ ॥134:2॥

जेहि समाज बैठे मुनि जाई = नारद जी जिस पंक्ति में राजाओं के साथ जाकर बैठे थे, *हृदयँ रूप अहमिति अधिकाई* = मन में सुंदर रूप का बहुत अहंकार लेकर,

तहँ बैठे महेस गन दोऊ= वहीं पर शिव जी के दोनों गण भी बैठ गये, *बिप्रबेष*= विप्र वेष के कारण, *गति लखइ न कोऊ*= इनकी चालाकी कोई समझ नहीं पाया।

वहाँ उस समय शंकर जी के दो गण भी उपस्थित थे, वे तमाशा देखने के शौकीन थे, इसलिये स्वयंवर देखने आए हुए थे। उन्हें सब भेद पता था कि ये नारद जी हैं, इन्होंने भगवान से सुंदर रूप माँगा है, पर इन्हें वानर का रूप दे दिया है। इन दोनों गणों व राजकुमारी को नारद जी वानर रूप में दिखे। वे दोनों गण विप्रवेष बनाकर, नारद जी के पास ही बैठ गये। इन्हें स्वयंवर से ज्यादा रुचि, नारद जी की गति देखने में थी।

शिव-गण व्यंग्य करते हैं, नारद जी समझ नहीं पाते

करहिं कूटि नारदहि सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई ॥134:3॥
रीझिहि राजकुअँरि छबि देखी। इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेषी ॥134:4॥

करहिं कूटि नारदहि सुनाई= नारद जी को सुना-सुनाकर व्यंग्य करते हैं, *नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई*= भगवान ने अच्छी सुंदरता दी है, *रीझिहि राजकुअँरि छबि देखी*= इनकी सुंदरता देखकर राजकुमारी रीझ जायेगी, *इन्हहि बरिहि*= इन्हें ही वरण करेगी, *हरि जानि बिसेषी* = भगवान नारायण जानकर, पर ये हैं वानर।

मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ। हँसहि संभु गन अति सचु पाएँ ॥134:5॥
जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी। समुझि न परइ बुद्धि भ्रम सानी ॥134:6॥

मुनिहि मोह मन= मुनि का मन मोह ग्रसित था, *हाथ पराएँ*= इसलिये उनके वश में नहीं था, *हँसहि संभु गन अति सचु पाएँ*= शिव जी के गण मजा लेकर हँस रहे थे, *जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी*= यद्यपि मुनि उनकी उल्टी-सीधी बातें सुन रहे थे, *समुझि न परइ*= पर उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था, *बुद्धि भ्रम सानी* = क्योंकि बुद्धि भ्रमित थी।

ये दोनों गण नारद जी को सुना-सुनाकर उल्टी बात बोलते हैं। एक कहता है, देखो इतने देशों के राजकुमार आये हैं, लेकिन नारद जी जैसा रूपवान् कोई नहीं है। दूसरा कहता है, हाँ भई! नारद जी पर भगवान की बहुत कृपा है, जो इतना सुंदर रूप दिया है। राजकुमारी इनकी सुंदरता देखकर प्रसन्न हो जायेगी। भगवान

नारायण समझकर इनका ही वरण कर लेगी, जबकि ये हैं हरि (वानर)। मुनि का मन मोहग्रस्त होने के कारण अपने हाथ में नहीं था। इसलिये गणों की अटपटी बातें सुनकर भी नारद जी उनका आशय समझ नहीं पा रहे थे।

राजकुमारी को नारद जी वानर दिखे, वह राजाओं को देखती है

काहुँ न लखा सो चरित बिसेषा। सो सरूप नृपकन्याँ देखा ॥134:7॥
मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदयँ क्रोध भा तेही ॥134:8॥

काहुँ न लखा सो चरित बिसेषा = यह विशेष लीला किसी को नहीं दिखी, *सो सरूप नृपकन्याँ देखा* = जो स्वरूप राजकुमारी ने देखा, *मर्कट बदन भयंकर देही* = नारद जी का बंदर के समान मुँह व भयंकर शरीर है, *देखत हृदयँ क्रोध भा तेही* = देखते ही कन्या के मन में गुस्सा आ गया।

सखीं संग लै कुअँरि तब चलि जनु राजमराल ।
देखत फिरइ महीप सब कर सरोज जयमाल ॥दोहा 134॥

सखीं संग लै कुअँरि तब = तब राजकुमारी सखियों को साथ लेकर, *चलि जनु राजमराल* = इस प्रकार चली मानो राजहंसिनी हो, *देखत फिरइ महीप सब* = सब राजाओं को देखते हुए वह चल रही है, *कर सरोज जयमाल* = कमल जैसे हाथों में जयमाल लिये हुए।

यह सब चरित्र हो रहा है, परंतु सब लोग जान नहीं पा रहे हैं। राजकुमारी जब हाथ में जयमाल लिये हुए निकली, तो केवल उसे ही नारद जी विशाल बंदर के शरीर में दिखे, जिससे उसे गुस्सा आ गया कि यह कुरूप यहाँ कैसे आ गया? राजकुमारी सखियों के साथ धीरे-धीरे मानो राजहंसिनी की तरह चल रही है। सब राजाओं को देखते हुए एक-एक के आगे से चलती जाती है कि कौन राजा कैसा है, कैसा उसका सौंदर्य है, कैसी उसकी शक्ति व तेज है।

नारद की तरफ देखा ही नहीं, वे व्याकुल होते हैं, गण हँसते हैं

जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली ॥135:1॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर गन मुसुकाहीं ॥135:2॥

जेहि दिसि बैठे नारद फूली = जिस ओर नारद जी गर्व से फूले बैठे हैं, *सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली* = उस ओर उसने भूल कर भी नहीं देखा, *पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं* = नारद मुनि बार-बार उचकते व व्याकुल होते हैं, *देखि दसा हर गन मुसुकाहीं* = उनकी यह दशा देखकर शंकर जी के गण मुस्कुराते हैं।

नारद जी अपनी सुंदरता के गर्व में गद्गद् जिस ओर बैठे हुए थे उस ओर तो राजकुमारी ने भूल कर भी नहीं देखा। नारद जी व्याकुल होते हैं कि यह हमारी तरफ क्यों नहीं आ रही है? वे बार-बार उचकते हैं कि शायद यह हमें अभी देख नहीं पायी है, देख लेगी तो अवश्य माला पहनायेगी। अकुला रहे हैं कि राजाओं के बीच में इतने सुंदर हम हैं, इसको हम दिखाई क्यों नहीं दे रहे हैं। नारद जी की उत्सुकता देख-देख कर पीछे बैठे शंकर जी के गण मुस्कुराते हैं।

भगवान राजा बनकर आये, राजकुमारी ने वरमाला पहना दी

धरि नृपतनु तहँ गयउ कृपाला। कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला ॥135:3॥
दुलहिनि लै गे लच्छिनिवासा। नृपसमाज सब भयउ निरासा ॥135:4॥

धरि नृपतनु = राजा का शरीर धारण करके, *तहँ गयउ कृपाला* = वहाँ कृपालु भगवान पहुँचते हैं, *कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला* = राजकुमारी ने हर्षित होकर उनके गले में जयमाला डाल दी, *दुलहिनि लै गे लच्छिनिवासा* = दुल्हन को भगवान ले गये, *नृपसमाज सब भयउ निरासा* = सारे राजा निराश हो गये।

भगवान ने एक राजा का वेष धारण किया, और जहाँ राजा लोग बैठे थे, उनके बीच में जाकर बैठ गये। राजकुमारी ने उन्हें देखते ही प्रसन्न होकर उनके गले में जयमाला डाल दी। जहाँ जयमाला पहनाई, तुरंत ही सखियाँ भगवान व राजकुमारी को अंदर ले गयीं और राजमहल में उनका विवाह हो गया। भगवान राजकुमारी को लेकर चले गये। वहाँ बैठे सारे राजा लोग निराश हो गये।

हाथ में आई संपत्ति जाने के दुःख से नारद व्याकुल

मुनि अति बिकल मोहँ मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी ॥135:5॥

मुनि अति बिकल = नारद जी बहुत व्याकुल हैं, *मोहँ मति नाठी* = मोह ने बुद्धि नष्ट कर दी है, *मनि गिरि गई* = रास्ते में मणि गिर गई हो, *छूटि जनु गाँठी* = गाँठ छूट जाने से।

मोह ने नारद जी की बुद्धि को नष्ट कर दिया जिससे उन्हें उल्टा ही सूझ रहा है। उन्हें ऐसा दु:ख हुआ मानो हाथ में बहुत बहुमूल्य मणि आ गई हो और रास्ते में गाँठ खुलने से वह गिर गयी हो। उन्होंने पहले से मान लिया था, राजकुमारी हमें ही माला पहनायेगी। इसलिये उन्हें ऐसा लगने लगा कि राजकुमारी हमारी ही संपत्ति थी जो चली गयी। माया के प्रभाव के कारण व्यक्ति जो वस्तु हाथ में पकड़ता है, उसे अपनी ही समझने लगता है, और उसके जाने पर दु:खी होता है।

'अपना मुँह तो जाकर शीशे में देखो' कहकर गण भाग जाते हैं

तब हर गन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई ॥135:6॥
अस कहि दोउ भागे भयँ भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी ॥135:7॥
बेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा ॥135:8॥

तब हर गन बोले मुसुकाई = शंकर जी के गण मुस्कुराकर कहते हैं, *निज मुख* = अपना चेहरा, *मुकुर* = दर्पण में, *बिलोकहु जाई* = जाकर देखो तो, *अस कहि दोउ* = ऐसा कहकर दोनों, *भागे भयँ भारी* = बहुत डर के कारण वहाँ से भाग गये, *बदन दीख मुनि बारि निहारी* = मुनि ने जल में झाँककर अपना मुँह देखा, *बेषु बिलोकि* = अपना रूप देखकर, *क्रोध अति बाढ़ा* = नारद जी बहुत क्रोधित हो गये, *तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा* = गणों को भयंकर श्राप दे दिया।

होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हँसेहु मुनि कोउ ॥दोहा 135॥

होहु निसाचर जाइ तुम्ह = तुम दोनों जाकर राक्षस हो जाओ, *कपटी पापी दोउ* = तुम दोनों कपटी व पापी हो, *हँसेहु हमहि* = तुमने हमारी हँसी की, *सो लेहु फल* = उसका फल चखो, *बहुरि हँसेहु मुनि कोउ* = अब फिर किसी मुनि की हँसी करके दिखाना!

शंकर जी के गण नारद जी के पीछे लगे थे, वे उनके सामने आये और मुस्कुरा कर बोले, जरा अपना मुँह तो जाकर शीशे में देखो। ऐसा कहकर वे दोनों भय के कारण भाग गये। मुनि को शीशा तो मिला नहीं, कहीं पानी भरा हुआ था, उसमें झाँककर देखा, तो मुँह बंदर जैसा दिखा। नारद जी को बहुत जोर से क्रोध आ गया। यह सिद्धांत है कि कामना जितनी प्रबल होती है, उसमें बाधा पड़ने पर क्रोध भी उतना ही प्रबल आता है।

वानर रूप देख, क्रोध में गणों को निशाचर होने का श्राप दिया

जब क्रोध आया तो भाग रहे दोनों गणों को श्राप दे दिया कि जाओ तुम दोनों निशाचर हो जाओ। हमारे वानर के रूप को तुम सुंदर बता रहे थे, सच्चाई पहले नहीं बतायी, यही कपट है। तुमने आसुरी व्यवहार किया है तो तुम वही असुर बनो। तुम हमारे ऊपर हँसे हो, तो उसका फल तुम पाओ! अब किसी और मुनि की हँसी उड़ाकर देखना, क्या होता है?

भगवान को श्राप देने, क्रोध में वैकुण्ठधाम की तरफ चल दिये

पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदयँ संतोष न आवा ॥136:1॥
फरकत अधर कोप मन माहीं। सपदि चले कमलापति पाहीं ॥136:2॥
देहउँ श्राप कि मरिहउँ जाई। जगत मोरि उपहास कराई ॥136:3॥

पुनि जल दीख = फिर से जल में देखते हैं, *रूप निज पावा* = तो अपना वास्तविक रूप दिखने लगा, *तदपि हृदयँ संतोष न आवा* = फिर भी मन में संतोष नहीं हुआ, *फरकत अधर* = ओंठ फड़क रहे थे, *कोप मन माहीं* = मन में गुस्सा भरा था, *सपदि चले* = शीघ्रता से चल दिये, *कमलापति पाहीं* = भगवान विष्णु के पास, *देहउँ श्राप कि* = या तो श्राप दूँगा, *मरिहउँ जाई* = या प्राण त्याग दूँगा, *जगत मोरि उपहास कराई* = उन्होंने संसार में हँसी करवाई है।

नारद जी ने फिर से पानी में अपना मुँह देखा तो उन्हें अपना स्वाभाविक मुख दिखा। असली रूप पाने पर भी मन में संतोष नहीं हुआ। अब क्रोध की दिशा बदल दी, विष्णु ने वानर बनाया इसलिये उन पर क्रोध उत्पन्न हुआ। जब कोई सामने नहीं होता तो मन में ही क्रोध आता है, उनके ओंठ फड़कने लगे। शीघ्रता से वैकुण्ठधाम की ओर चलते हैं। रास्ते में सोचते हैं कि भगवान

को श्राप दे देंगे या हम स्वयं अपनी जान दे देंगे। भगवान ने संसार में हमारी बहुत हँसी करवा दी है।

भगवान रास्ते में ही मिलकर पूछते हैं, नारद कहाँ जा रहे हो?

बीचहिं पंथ मिले दनुजारी। संग रमा सोइ राजकुमारी ॥136:4॥
बोले मधुर बचन सुरसाईं। मुनि कहँ चले बिकल की नाईं ॥136:5॥
सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। माया बस न रहा मन बोधा ॥136:6॥

बीचहिं पंथ मिले दनुजारी = बीच रास्ते में ही दैत्यों के शत्रु भगवान मिल गये, *संग रमा सोइ राजकुमारी* = साथ में लक्ष्मी जी हैं जिन्होंने राजकुमारी का रूप धारण किया है, *बोले मधुर बचन सुरसाईं* = देवताओं के स्वामी भगवान ने प्रेमपूर्वक कहा, *मुनि कहँ चले* = हे मुनि! कहाँ जा रहे हो? *बिकल की नाईं* = इतने व्याकुल क्यों हो, *सुनत बचन उपजा अति क्रोधा* = यह सुनते ही बहुत क्रोध उत्पन्न हो गया, *माया बस न रहा मन बोधा* = माया के कारण मन में बोध नहीं था।

नारद जी जल्दी-जल्दी वैकुण्ठधाम जा रहे थे, रास्ते में भगवान मिल गये। साथ में लक्ष्मी जी हैं, जिन्होंने उसी राजकुमारी का वेष धारण किया है। लक्ष्मी जी ही राजकुमारी बनी थीं। नारद तो गुस्से में थे, इसलिये भगवान को नहीं देख पाये। भगवान ने स्वयं ही बहुत विनम्रता से प्रेमपूर्वक कहा, नारद क्या बात है? कहाँ भागे चले जा रहे हो? इतने व्याकुल क्यों हो? जहाँ भगवान ने यह कहा तो नारद के मन में जो ज्वालामुखी की तरह क्रोध था, उसका विस्फोट हो गया। माया के वश में पूरी तरह हैं, इसलिये मन में न बोध है और न ज्ञान ही आ रहा है।

समुद्र-मंथन के संदर्भ में, भगवान को ईर्ष्यालु व कपटी कहते हैं

पर संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरें इरिषा कपट बिसेषी ॥136:7॥
मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु। सुरन्ह प्रेरि बिष पान करायहु ॥136:8॥

असुर सुरा बिष संकरहि आपु रमा मनि चारु ।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट ब्यवहारु ॥दोहा 136॥

पर संपदा सकहु नहिं देखी = तुम दूसरो की तरक्की नहीं देख सकते, *तुम्हरें इरिषा कपट बिसेषी* = तुम्हारे अंदर ईर्ष्या व कपट बहुत है, *मथत सिंधु* = समुद्र-मंथन के समय, *रुद्रहि बौरायहु* = शिव जी को बहकवा दिया, *सुरन्ह प्रेरि* = देवताओं को प्रेरित करके, *बिष पान करायहु* = उन्हें विषपान करवा दिया।

असुर सुरा = निशाचरों को मदिरा, *बिष संकरहि* = शिव जी को विष, *आपु रमा मनि चारु* = लक्ष्मी व मणि आप ले गये, *स्वारथ साधक* = मतलब सिद्ध करते हो, *कुटिल* = धोखेबाज हो, *तुम्ह सदा कपट ब्यवहारु* = व तुम सदा कपट का व्यवहार करते हो।

नारद जी भगवान से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। कहते हैं कि हम खूब समझते हैं, तुम ईर्ष्यालु हो, कपटी हो, दूसरे की तरक्की नहीं देख सकते हो। हम सब समझते हैं। भगवान ने कहा होगा, अरे! ऐसी बात नहीं है, तो नारद बोले, हम एक क्या, अनेक प्रमाण दे सकते हैं। समुद्र-मंथन की घटना का स्मरण दिलाते हुए कहते हैं, आपने शिव जी को बहका दिया, देवताओं से कहवाकर उन्हें विष पिलवा दिया। निशाचरों को मदिरा दिलवा दी। और आप स्वयं लक्ष्मी व मणि ले गये। अच्छी चीजें स्वयं लेते हैं, इस प्रकार मतलब सिद्ध करने में होशियार हो।

तुम्हारे ऊपर किसी का नियंत्रण नहीं, जो मन में आये करते हो

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई ॥137:1॥
भलेहि मंद मंदेहि भल करहू। बिसमय हरष न हियँ कछु धरहू ॥137:2॥

परम स्वतंत्र = तुम बिल्कुल स्वतंत्र हो, *न सिर पर कोई* = तुम्हारे ऊपर कोई नहीं है, *भावइ मनहि* = जो मन में आता है, *करहु तुम्ह सोई* = तुम वही करते हो, *भलेहि मंद* = बुद्धिमान को मूर्ख, *मंदेहि भल करहू* = मूर्ख को बुद्धिमान बना दो, *बिसमय हरष न हियँ कछु धरहू* = तुम्हें हर्ष व विषाद से कुछ फर्क नहीं पड़ता है।

नारद जी भगवान के दोष बताते हैं, पर ये गुण हैं। कहते हैं आप बिल्कुल स्वतंत्र हो। आपको दंड देने वाला कोई नहीं है। जो मन में आता है वही करते हो। अच्छे को बुरा बना दो, बुरे को अच्छा, मूर्ख को विद्वान् व विद्वा् को मूर्ख

बना दो। तुम्हें दया भी नहीं आती, कोई परेशान होता रहे कोई फर्क नहीं होता, क्योंकि तुम्हारे अंदर न हर्ष है न विषाद है।

अब मुझ जैसे मजबूत से पंगा लिया है, उसका फल मिलेगा

डहकि डहकि परिचेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू ॥137:3॥
करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा। अब लगि तुम्हहि न काहूँ साधा ॥137:4॥
भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा ॥137:5॥

डहकि डहकि परिचेहु सब काहू = सबके साथ यही करते-करते प्रचंड हो गये हो, *अति असंक* = तुम्हें बिल्कुल डर नहीं है, *मन सदा उछाहू* = इसी प्रकार का कार्य करने को सदैव उत्सुक रहते हो, *करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा* = तुम्हें शुभ व अशुभ कर्म का बंधन नहीं है, *अब लगि* = अभी तक, *तुम्हहि न काहूँ साधा* = तुम्हें सही रास्ते में लाने वाला कोई नहीं मिला, *भले भवन* = अच्छे घर में, *अब बायन दीन्हा* = अब बैना दिया है, *पावहुगे फल* = अब फल पाओगे, *आपन कीन्हा* = अपनी करनी का।

नारद जी कहते हैं, यही सब मनमानी करते रहते हो, सजा तो कभी मिली नहीं, इसलिये और प्रचंड हो गये हो। सजा न मिलने से निडर होकर यही सब करने का मन में सदा उत्साह बना रहता है। प्राणी तो डरता है कि अशुभ कर्म करेंगे तो नर्क जायेंगे, शुभ करेंगे तो स्वर्ग जायेंगे। पर तुम्हारे ऊपर तो कर्म का प्रभाव होता ही नहीं, इसलिये मनमानी करते हो। अभी तक सही रास्ते पर लाने वाला कोई मिला नहीं है। एक कहावत कहते हैं कि इस बार अच्छे घर में बैना दिया है मायने मुझ जैसे मजबूत आदमी से पंगा लिया है। अत: अपने किये का फल अवश्य पाओगे।

नारद जी तीन श्राप देते हैं, भगवान प्रेम से स्वीकारते हैं

बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा ॥137:6॥
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी ॥137:7॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी ॥137:8॥

बंचेहु मोहि = मुझे ठगा है, *जवनि धरि देहा* = जिस शरीर को धारण करके, *सोइ तनु धरहु* = वही शरीर धारण करो, *श्राप मम एहा* = यह मेरा श्राप है,

कपि आकृति = बंदर का रूप, *तुम्ह कीन्हि हमारी* = तुमने हमारा बनाया है, *करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी* = वही बंदर तुम्हारी सहायता करेंगे, *मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी* = तुमने मेरा बहुत नुकसान किया है, *नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी* = तुम भी स्त्री के वियोग में दुःखी होगे।

श्राप सीस धरि हरषि हियँ प्रभु बहु बिनती कीन्हि ।
निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्हि ॥दोहा 137॥

श्राप सीस धरि = श्राप को सिर पर धारण करते हैं, *हरषि हियँ* = मन में प्रसन्न होकर, *प्रभु बहु बिनती कीन्हि* = प्रभु ने नारद जी से बहुत बिनती की, *निज माया कै प्रबलता* = अपनी माया की प्रबलता, *करषि कृपानिधि लीन्हि* = कृपानिधि भगवान ने खींच लीया।

इतना सब कहने के बाद नारद जी भगवान को तीन कारणों से तीन श्राप देते हैं।

1. राजकुमार का मनुष्य शरीर धारण करके हमें ठगा है, इसलिये तुम्हें भी मनुष्य शरीर धारण करके राजकुमार बनना होगा।
2. बंदर का चेहरा देकर हमें संकट में डाला, इसी प्रकार तुम भी संकट में पड़ोगे, तब बंदर ही तुम्हारी सहायता करेंगे।
3. राजकुमारी के न मिलने से जैसे हम दुःखी हुए हैं वैसे तुम भी नारी-विरह में दुःखी होगे।

भगवान ने कहा हम श्राप स्वीकार करते हैं। यह नहीं कहा कि हमारी कोई गलती नहीं है, हम तो तुम्हें सुधारना चाहते थे। ऑपरेशन की सफलता के कारण भगवान मन में प्रसन्न हैं। विनती करते हैं कि श्राप तो दे दिया, अब शांति से विचार करो। यह कहकर भगवान अपनी माया की प्रबलता हटा लेते हैं।

माया हटी, बुद्धि ठीक, कहते हैं प्रभु रक्षा करो, श्राप मिथ्या हो

जब हरि माया दूरि निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी ॥138:1॥
तब मुनि अति सभीत हरि चरना। गहे पाहि प्रनतारति हरना ॥138:2॥
मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला ॥138:3॥

जब हरि माया दूरि निवारी = जब भगवान ने अपनी माया को हटा लिया, *नहिं तहँ रमा न राजकुमारी* = तो वहाँ न लक्ष्मी हैं न राजकुमारी, *तब मुनि*

अति सभीत = तब मुनि ने बहुत भयभीत होकर, *हरि चरना गहे* = भगवान के चरण पकड़कर कहते हैं, *पाहि* = मेरी रक्षा कीजिये, *प्रनतारति हरना* = हे प्रभु आप तो शरण में आये प्राणियों के दु:ख दूर करने वाले हैं, *मृषा होउ मम श्राप कृपाला* = हे कृपालु प्रभु मेरा श्राप मिथ्या हो जाये, *मम इच्छा कह दीनदयाला* = दीनों पर दया करने वाले प्रभु कहते हैं यह मेरी इच्छा है।

माया समाप्त हुई तो वहाँ राजकुमारी के रूप में लक्ष्मी गायब, अब बचे नारद व भगवान। नारद पश्चात्ताप करते हैं। वे भयभीत होकर भगवान के चरण पकड़कर कहते हैं, हे प्रभु! मैं आपकी शरण में हूँ, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। हे भगवन्! मेरा श्राप झूठा हो जाये, हमने तो मोह में, अज्ञान में ये सब गलत बातें बोल दीं।

भगवान कहते हैं, सब मेरी इच्छा से ही होता है

भगवान कहते हैं ऐसा नहीं हो सकता, क्षमा माँग सकते हो पर बात अनकही नहीं कर सकते। जो तुमने श्राप दिया है, हमारी इच्छा से दिया है, जो तुम करते हो, जो मैं करता हूँ वह हमारी इच्छा से होता है। तुमने ये कैसे कह दिया कि 'मैंने श्राप दिया है'। जो कुछ होता है विधि के विधान से होता है, उस विधान को चलने दो, संसार को चलने दो। भगवान ने श्राप पहले ही स्वीकार कर लिया था, वे श्राप से निपटना जानते हैं, इसलिये उससे डरते नहीं।

पाप निवारण के लिये शिव जी के शतनाम जपो

मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे ॥138:4॥
जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा ॥138:5॥

मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे = मैंने बहुत गलत बातें बोली हैं, *कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे* = नारद जी कहते हैं अब मेरे पाप कैसे दूर होंगे? *जपहु जाइ संकर सत नामा* = शंकर जी के शतनाम का जप करो, *होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा* = मन तुरंत शांत हो जायेगा।

नारद जी कहते हैं, हे प्रभु! मैंने आपको जो दुर्वचन कहे हैं, उसका मुझे पाप लगा है, उसके दूर होने का उपाय बताइये। भगवान कहते हैं, शिव जी के

शतनाम का जप करो, इसी से तुम्हें विश्राम प्राप्त होगा। ऋग्वेद में शत रुद्री है, उसी को यहाँ शतनाम कहा है। इसमें अनेक तरह के पापों से मुक्त होने की शंकर जी की प्रार्थनायें हैं। शिव लिंग पर जल चढ़ाते हुए रुद्री का पाठ करने को रुद्राभिषेक कहते हैं।

गलत ढंग से अर्जित धन के पाप का निवारण दान से करें

जब व्यक्ति जीवन भर गलत कार्य करके खूब धन कमा लेता है, वृद्ध अवस्था आने पर पश्चात्ताप होता है कि यह संपत्ति तो हमारे काम आई नहीं, बच्चे इसका दुरुपयोग करके बिगड़ रहे हैं। पूजा-पाठ, भगवान का नाम ले नहीं सकते क्योंकि जीवन इस प्रकार जीया ही नहीं। क्या करें? सरल उपाय है दान करें। संपत्ति का उपयोग गरीबों के हित में करके पापों का निवारण करें।

शंकर जी के समान हमें अन्य कोई प्रिय नहीं है

कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें ॥138:6॥
जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी ॥138:7॥
अस उर धरि महि बिचरहु जाई। अब न तुम्हहि माया निअराई ॥138:8॥

कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें = शिव जी के समान मुझे कोई और प्रिय नहीं है, *असि परतीति* = ऐसा विश्वास, *तजहु जनि भोरें* = भूलकर भी मत त्यागना, *जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी* = जिस पर पुरारी कृपा नहीं करते, *सो न पाव मुनि भगति हमारी* = हे मुनि वह हमारी भक्ति नहीं प्राप्त कर सकता, *अस उर धरि* = ऐसा मन में निश्चय करके, *महि बिचरहु जाई* = पृथ्वी पर घूमो, *अब न तुम्हहि माया निअराई* = अब मेरी माया तुम्हारे निकट नहीं आयेगी।

राम जी कहते हैं कि मुझे शंकर के समान अन्य कोई प्रिय नहीं है। इस बात को सदैव याद रखना। मेरी भक्ति पाने के लिये शिव जी की कृपा आवश्यक है। ऐसा मन में निश्चय कर लो, उसके बाद जाकर पृथ्वी पर विचरण करो। अब मेरी माया तुम्हारे पास नहीं आयेगी। शिव जी विश्वास के देवता हैं, जब मन में श्रद्धा व विश्वास होगा तभी प्रभु राम की भक्ति मिलेगी। जिनके अंदर भगवान के प्रति विश्वास है, ज्ञान है, उन पर माया

का प्रभाव नहीं होता है। धन-संपत्ति, जगत्, यश-कीर्ति आदि माया नहीं है, इनमें आसक्ति को माया कहते हैं।

नारद जी को समझाकर राम जी अंतर्धान हो गये

बहुबिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु तब भए अंतरधान ।
सत्यलोक नारद चले करत राम गुन गान ॥दोहा 138॥

बहुबिधि मुनिहि प्रबोधि = बहुत प्रकार से मुनि को समझा-बुझाकर, *प्रभु तब भए अंतरधान* = तब प्रभु अन्तर्धान हो गये, *सत्यलोक नारद चले* = नारद जी ब्रह्मलोक चल दिये, *करत राम गुन गान* = राम जी के गुणों का गान करते हुए।

इस तरह बहुत प्रकार से नारद जी को समझा-बुझाकर, प्रभु राम अंतर्धान हो जाते हैं। नारद जी अपने घर ब्रह्मलोक, जिसे सत्यलोक भी कहते हैं, की ओर प्रभु राम के गुणों का गान करते हुए चल देते हैं।

शिव-गण नारद जी से क्षमा मांग, श्राप मुक्ति की प्रार्थना करते हैं

हर गन मुनिहि जात पथ देखी। बिगत मोह मन हरष बिसेषी ॥139:1॥
अति सभीत नारद पहिं आए। गहि पद आरत बचन सुनाए ॥139:2॥
हर गन हम न बिप्र मुनिराया। बड़ अपराध कीन्ह फल पाया ॥139:3॥
श्राप अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीनदयाला ॥139:4॥

हर गन मुनिहि = शिव जी के गणों ने नारद जी को, *जात पथ देखी* = मार्ग में जाते देखा, *बिगत मोह मन हरष बिसेषी* = यह भी देखा कि वे मोहरहित होकर प्रसन्न हैं, *अति सभीत* = वे बहुत डरे हुए, *नारद पहिं आए* = नारद जी के पास आते हैं, *गहि पद आरत बचन सुनाए* = चरण पकड़कर दु:खी मन से कहते हैं, *हर गन हम न बिप्र मुनिराया* = हे मुनिराज! हम बिप्र नहीं हैं, शिव जी के गण हैं, *बड़ अपराध कीन्ह* = हमने बड़ा अपराध किया है, *फल पाया* = जिसका फल हमें प्राप्त हो गया है, *श्राप अनुग्रह करहु कृपाला* = हे कृपालु श्राप से मुक्त करने की कृपा करें, *बोले नारद दीनदयाला* = तब दीनों पर दया करने वाले नारद जी कहते हैं।

शिव गणों ने जब देखा कि नारद जी अब मोह के वश में नहीं हैं, वे तो अपने नारद रूप में प्रसन्नता से प्रभु स्मरण में वीणा बजाते हुए चले जा रहे हैं, तो उनके अंदर हिम्मत आई। वे दोनों मार्ग में ही नारद जी के चरणों को पकड़कर दु:खी भाव से कहते हैं कि हमसे बड़ी गलती हो गई है, हमने इस प्रकार से आपका उपहास किया, अपमान किया, हमें क्षमा करें, हम विप्र वेष धारण किये हैं पर हैं हम शिव जी के गण। हे कृपालु! हमें इस श्राप से बचाओ।

वैभवशाली व विश्वविजयी होकर राम द्वारा मारने पर मुक्त होगे

निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ। बैभव बिपुल तेज बल होऊ ॥139:5॥
भुज बल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ। धरिहहिं बिष्नु मनुज तनु तहिआ ॥139:6॥
समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि संसारा ॥139:7॥

निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ = तुम दोनों जाकर राक्षस तो होगे, *बैभव बिपुल तेज बल होऊ* = पर तुम्हें बहुत ऐश्वर्य, बल और तेज भी प्राप्त होगा, *भुज बल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ* = जब तुम अपनी भुजाओं के बल से विश्व को जीत लोगे, *धरिहहिं बिष्नु मनुज तनु तहिआ* = तब विष्णु भगवान मनुष्य शरीर धारण करेंगे, *समर मरन हरि हाथ तुम्हारा* = युद्ध में श्रीराम के हाथों तुम्हारी मृत्यु होगी, *होइहहु मुकुत* = जिससे तुम मुक्त हो जाओगे, *न पुनि संसारा* = फिर संसार में जन्म नहीं होगा।

नारद जी कहते हैं हमने श्राप तो दे दिया है, उसे बदला नहीं जा सकता है, तुम दोनों राक्षस तो होगे, हम थोड़ा परिवर्तन कर देते हैं कि तुम्हें खूब वैभव प्राप्त होगा, खूब तेजस्वी होगे और बहुत शक्तिशाली होकर सारे विश्व पर विजय प्राप्त करोगे। तब सारा संसार व देवता तुम्हारे बल के सामने त्राहि-त्राहि करने लगेंगे। फिर विष्णु जी मनुष्य शरीर धारण करके अवतार लेंगे, तुम्हारे साथ युद्ध करेंगे, तुम युद्ध में मारे जाओगे। भगवान के हाथों मरकर तुम इस श्राप से मुक्त हो जाओगे। उसके बाद इस संसार में तुम्हारा जन्म नहीं होगा।

समय आने पर शिव-गण राक्षस बने

चले जुगल मुनि पद सिर नाई। भए निसाचर कालहि पाई ॥139:8॥

चले जुगल मुनि पद सिर नाई = दोनों गण मुनि के चरणों में प्रणाम करके चल दिये, *भए निसाचर कालहि पाई* = समय आने पर निशाचर बने।

नारद जी ने जब श्राप को वरदान में बदल दिया, तब दोनों संतुष्ट होकर नारद जी के चरणों में प्रणाम करके चल दिये। ये तुरंत निशाचर नहीं हुए, समय के अनुसार घटनायें होती हैं। जब भगवान ने मनु-शतरुपा को पुत्र बनकर आने का वरदान दिया तो वह भी तुरंत नहीं घटित हुआ, समय आने पर ही वे अयोध्या में दशरथ-कौशल्या बनकर जन्में, तब भगवान, राम बनकर आये। मनुष्य के जीवन में भी अच्छे व बुरे कर्मों का फल तुरंत नहीं मिलता, कभी अच्छे कार्यों का फल न मिलने से हम निराश होते हैं, तो कभी यह देखकर कि दूसरा गलत कार्य कर रहा है और मजे में है, पर समय आने पर ही फल मिलेगा।

एक कल्प में नारद जी के कारण अवतार लिया

एक कलप एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार ।
सुर रंजन सज्जन सुखद हरि भंजन भुबि भार ॥दोहा 139॥

एक कलप एहि हेतु = एक कल्प में इस कारण से, *प्रभु* = प्रभु राम ने, *लीन्ह मनुज अवतार* = मनुष्य अवतार लिया था, *सुर रंजन* = देवताओं का दु:ख दूर करने, *सज्जन सुखद* = सज्जनों को सुख देने, *हरि* = प्रभु राम ने, *भंजन भुबि भार* = पृथ्वी का भार दूर करने के लिये।

शिव जी कहते हैं इस प्रकार एक कल्प में नारद के श्राप के कारण रावण व कुंभकर्ण राक्षस बने, उन्हें मारकर देवताओं का दु:ख दूर करने, सज्जनों को सुख देने और पृथ्वी का भार हरने के लिये भगवान ने मनुष्य बनकर अवतार लिया।

भगवान के जन्म के चरित्र सुंदर, सुखद व विचित्र हैं

एहि बिधि जनम करम हरि केरे। सुंदर सुखद बिचित्र घनेरे ॥140:1॥

एहि बिधि = इस प्रकार, *जनम करम हरि केरे* = भगवान का जन्म व उनके कर्म, *सुंदर सुखद बिचित्र घनेरे* = बहुत सुंदर; सुख देने वाले व विचित्र हैं।

शिव जी कहते हैं कि भगवान के विभिन्न जन्मों के चरित्रों एवं लीलाओं में तीन बाते रहती हैं–

1. सुंदर है–प्रभु अवतार लेकर जो व्यवहार करते हैं वह इतना सुंदर होता है कि सभी को अच्छा लगता है, जिसके भी संपर्क में वे आते हैं उसे सुखद अनुभूति होती है।
2. सुखद है–लीला के बाद जब लोग इन चरित्रों को सुनते हैं, समझते हैं, कहते हैं या गाते हैं तो उनके संस्कार बदलने लगते हैं, वासनायें बदलती हैं, मन में प्रसन्नता आने लगती है, जिससे व्यक्ति को सुख एवं शान्ति की प्राप्ति होती है।
3. विचित्र है–इन चरित्रों को सुनने से आश्चर्य लगता है, उनमें विशेषता व विचित्रता रहती है।

प्रत्येक कल्प के चरित्रों में फर्क है, इसलिये कथाओं में भी फर्क है

कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नानाबिधि करहीं ॥140:2॥
तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबंध बनाई ॥140:3॥
बिबिध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आचरजु सयाने ॥140:4॥

कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं = प्रत्येक कल्प में प्रभु अवतार लेते हैं, *चारु चरित नानाबिधि करहीं* = अलग-अलग तरह की सुंदर लीलायें करते हैं, *तब तब कथा मुनीसन्ह गाई* = तब-तब मुनियों ने कथा कही है, *परम पुनीत प्रबंध बनाई* = बहुत सुंदर काव्य रचना करके, *बिबिध प्रसंग अनूप बखाने* = भाँति-भाँति के अनुपम प्रसंगों का वर्णन किया है, *करहिं न सुनि आचरजु सयाने* = बुद्धिमान लोग इसे सुनकर आश्चर्य नहीं करते हैं।

हरि अनंत हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता ॥140:5॥
रामचंद्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाए ॥140:6॥

हरि अनंत = भगवान अनंत हैं, *हरि कथा अनंता* = भगवान की कथायें भी अनंत हैं, *कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता* = सब संत उसे अनेक प्रकार से कहते व सुनते हैं, *रामचंद्र के चरित सुहाए* = राम जी के सुंदर चरित्र, *कलप कोटि लगि* = करोड़ कल्प में भी, *जाहिं न गाए* = गाये नहीं जा सकते हैं।

भगवान प्रत्येक कल्प में अवतार लेकर अनेक प्रकार के सुंदर चरित्र करते हैं, हर कल्प में चरित्र बदल-बदलकर आते हैं। चरित्र सुनाने वाले किसी-किसी कल्प की कथा सुनाते हैं। कई बार कथाओं में फर्क के कारण संशय होता है कि कौन सी कथा सत्य है, कहीं ऐसा तो नहीं मुनियों ने कल्पना करके कथा कह दी है। तुलसीदास जी कहते हैं इसे कल्पना मत समझो, सभी अवतार व उनकी कथायें सत्य हैं। कल्प भेद के कारण कथाओं के फर्क को समझकर, बुद्धिमान लोग आश्चर्य नहीं करते हैं। भगवान अनंत हैं, उनकी कथायें भी अनंत हैं। जिस कवि को जो चरित्र प्रिय लगता है, उसे वह सुंदर काव्यरचना करके विस्तार से कहता है, यह कवियों की परंपरा है। राम जी के चरित्र इतने सुंदर हैं कि बहुत काल तक वर्णन करते रहो तो भी उनका अंत नहीं होगा। श्रीरामचरितमानस में तुलसीदास ने अनेक कल्पों की कथाओं को गूंथा है, जब कथा चलती है तो अवतार का कहीं कोई कारण, तो कहीं और कोई कारण दिखाई देता है।

माया से बचने का एकमात्र उपाय– माया के स्वामी का स्मरण करो

यह प्रसंग मैं कहा भवानी। हरिमायाँ मोहहिं मुनि ग्यानी ॥140:7॥
प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी। सेवत सुलभ सकल दुखहारी ॥140:8॥

यह प्रसंग मैं कहा भवानी = हे भवानी! मैंने यह पावन कथा इसलिये कही है, *हरिमायाँ* = कि भगवान की माया तो, *मोहहिं मुनि ग्यानी* = ज्ञानी मुनि को भी मोहित कर लेती है, *प्रभु कौतुकी* = भगवान लीला करके, *प्रनत हितकारी* = शरणागत हुए भक्त की रक्षा करते हैं, *सेवत सुलभ सकल दुखहारी* = भगवान की सेवा करने से अपने आप सारे दु:खों का हरण हो जाता है।

सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल ।
अस बिचारि मन माहिं भजिअ महामाया पतिहि ॥दोहा 140॥

सुर नर मुनि कोउ नाहिं = देवताओं; मनुष्यों व मुनियों में कोई नहीं है, *जेहि न मोह माया प्रबल* = जिसे भगवान की शक्तिशाली माया मोह में न डाल दे, *अस बिचारि मन माहिं* = ऐसा मन में विचार करके, *भजिअ महामाया पतिहि* = महामाया के स्वामी का भजन करो।

नारद मोह की कथा को समाप्त करते हुए शिव जी कहते हैं, हे भवानी! भगवान की माया इतनी प्रबल है कि देवताओं से मनुष्यों तक कोई ऐसा नहीं है जिसे माया मोह में न डाल दे। ब्रह्मा जी के पुत्र महर्षि नारद जी जैसा भक्त व ज्ञानी भी, जो ब्रह्मलोक में रहता हो, वैकुण्ठ तक जिसकी गति हो, फिर भी प्रभु की माया के वशीभूत हो गया। यह कथा इसलिये सुनायी है कि कोई यह अहंकार न करे कि हम बहुत ज्ञानवान् हैं। अहंकार से हमेशा सावधान रहें। भगवान अपने भक्त का अहंकार या अन्य कमियों को सीधे-सीधे दूर नहीं करते, सही समय आने पर कोई लीला करके दूर करते हैं, इसे ही कौतुक कहते हैं। माया द्वारा फैलाया दु:ख कैसे दूर हो? कैसे इससे बचें? माया के स्वामी भगवान राम हैं, उनका सतत् स्मरण करो, भजन करो, यही एकमात्र उपाय है। पर भजन से दु:ख कैसे दूर होंगे? दु:ख का कारण ममत्व है, यानि यह मेरा है, भगवान का स्मरण एव भजन इस ममत्व से छुटकारा दिला देता है।

6. मनु-शतरूपा की कथा

(दोहा 141 से दोहा 152)

स्वामी सत्यानंद जी कहते हैं कि जीवन एक सतत् यात्रा है, इसके लिये एक समय सारिणी आवश्यक है। रामचरितमानस मात्र धर्मग्रंथ नहीं है, यह जीवन की एक समय सारिणी है। इस प्रसंग में यह बताया है कि गृहस्थ जीवन के कर्त्तव्यों को पूरा करने के बाद, मृत्यु से पहले व्यक्ति को कैसे जीवन जीना चाहिये। प्रभु राम के अवतार लेने के कारण की यह कथा इतनी महत्त्वपूर्ण है कि शिव जी स्वयं विस्तार से पार्वती जी को सुनाते हैं। बुढ़ापे में कैसे रहना चाहिये, कैसे सादा भोजन करके भगवान का स्मरण करना चाहिये, जीव के जन्म व पुनर्जन्म का भी वर्णन है। इस प्रसंग में तुलसीदास जी ने राम जी के सिर से लेकर पैर तक के दिव्य सौंदर्य का वर्णन किया है। मनु-शतरूपा ने गृहस्थ जीवन का स्वेच्छा से त्याग कर, कठोर तप करके, परब्रह्म राम व सीता के साक्षात् दर्शन किये, फिर पुत्र रूप में भगवान को ही माँग लिया। अयोध्या में मनु दशरथ बने, शतरूपा कौसल्या बनीं, पुत्र राम बनकर प्रभु ने अवतार लिया। इसका प्रेम व आदर के साथ पाठ, राम के सुंदर शरीर का दर्शन मन में तो अवश्य करा देगा।

अयोध्या में अवतार के कारण की दूसरे कल्प की कथा सुनो

अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहउँ बिचित्र कथा बिस्तारी ॥141:1॥
जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा ॥141:2॥

अपर हेतु = दूसरा कारण, *सुनु सैलकुमारी* = शैलपुत्री पार्वती सुनो, *कहउँ बिचित्र कथा बिस्तारी* = उसकी विचित्र कथा विस्तार सहित सुनाते हैं, *जेहि कारन* = जिसके कारण से, *अज अगुन अरूपा ब्रह्म* = अजन्मा, निर्गुण, और निराकार ब्रह्म ने, *भयउ* = सगुण रूप धारण किया, *कोसलपुर भूपा* = अयोध्या के राजा के यहाँ।

रामचरितमानस में इस बात को बार-बार याद दिलाते रहते हैं कि जो ब्रह्म जन्म नहीं लेता, जो निर्गुण है और जिसका कोई आकार नहीं है, वही ब्रह्म सगुण होकर शरीर का आकार लेकर, जन्म लेता है। शिव जी कहते हैं, हे पार्वती! दूसरे कल्प की विचित्र कथा को विस्तार से हम सुनाते हैं, जिसके कारण ब्रह्म ने अयोध्या के राजा दशरथ के यहाँ जन्म लिया।

अवतार के सिद्धांत को ठीक से समझने का प्रयास करें

भगवान कहते हैं कि समस्त जगत् मुझसे उत्पन्न है, मुझमें स्थित है, और मुझमें ही लीन हो जाता है। यह जगत् मेरा ही रूप है। इस प्रकार जगत् व परमात्मा का संबंध है, जीव भी परमात्मा का ही प्रतिबिम्ब है। जब परमात्मा जगत् का रूप ले सकता है तब वह अवतार भी ले सकता है। यदि यह मानें कि ईश्वर का कार्य मात्र जगत् का संचालन करके जीवों के शुभ-अशुभ कर्मों का फल देना है, जीव का कार्य शुभ-अशुभ कर्म करना व सुख-दुःख भोगना है, जगत् मात्र जीव के रहने का रंगमंच है, ये तीनों स्वतंत्र हैं और इनमें आपस में कोई संबंध नहीं है, तब अवतार के सिद्धांत को समझना कठिन है।

जिस कल्प में प्रभु को वन में फिरते देख तुम बौरा गयी थी

जो प्रभु बिपिन फिरत तुम्ह देखा। बंधु समेत धरें मुनिबेषा ॥141:3॥
जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिहु बौरानी ॥141:4॥

जो प्रभु = जिन प्रभु को, *बिपिन फिरत तुम्ह देखा* = वन में घूमते हुए तुमने देखा था, *बंधु समेत धरें मुनिबेषा* = भाई के साथ मुनि वेष धारण किये हुए, *जासु चरित अवलोकि भवानी* = हे भवानी! जिनके चरित्र को देखकर, *सती सरीर रहिहु* = जब तुम्हारा शरीर सती का था, *बौरानी* = तुम बावली हो गयी थी।

हे भवानी! उस कल्प के अवतार के कारण की कथा सुनाते हैं, जिसमें तुम्हारा सती का शरीर था। तुमने मेरे प्रभु राम को भाई लक्ष्मण सहित मुनि वेष धारण किये सीता जी के हरण के बाद, वियोग में रोते हुए, वन में घूमते देखा था। प्रभु का यह चरित्र देखकर तुम पगला गयी थी, उल्टी-सीधी बातें करने लगी थी।

थोड़ा भ्रम बचा है, रामचरित्र सुनो, वह भी दूर हो जायेगा

अजहुँ न छाया मिटति तुम्हारी। तासु चरित सुनु भ्रम रुज हारी ॥141:5॥
लीला कीन्हि जो तेहिं अवतारा। सो सब कहिहउँ मति अनुसारा ॥141:6॥

अजहुँ न छाया मिटति तुम्हारी = अब भी तुम्हारे ऊपर उसकी छाया मिटती नहीं है, *तासु चरित सुनु* = उन्हीं प्रभु के चरित्र को सुनो, *भ्रम रुज हारी* = जो भ्रम के रोग को दूर करने वाले हैं, *लीला कीन्हि जो तेहिं अवतारा* = उस अवतार में प्रभु ने जो लीला की थी, *सो सब कहिहउँ* = उन सबको सुनायेंगे, *मति अनुसारा* = अपनी बुद्धि के अनुसार।

उस समय जो हुआ सो हुआ, पर उसका असर अब भी तुम्हारे ऊपर देखने में आता है। जो शंका सती को थी वह दूर हो गयी है, पर भ्रम का अंश अब भी बना है। उस समस्या का हल उन्हीं प्रभु राम के चरित्रों की कथा सुनने से ही होगा। यह भ्रम कि निर्गुण-निराकार कैसे साकार हो सकता है, उसका निवारण मनु-शतरूपा की कथा से होगा, जो शिव जी सुनाने जा रहे हैं। शिव जी कहते हैं जितनी मेरी समझ है, उसी के अनुसार कथा सुनाऊँगा।

शिव की बातें सुन उमा, सकुचाकर, प्रेम से मुस्कुराती हैं

भरद्वाज सुनि संकर बानी। सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी ॥141:7॥

भरद्वाज = याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज जी से कहते हैं, *सुनि संकर बानी* = शंकर जी की यह बात सुनकर, *सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी* = पार्वती जी सकुचाकर प्रेमसहित मुस्कुरायीं।

यह कथा प्रयाग में याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज मुनि को भी सुना रहे हैं, वे कहते हैं कि शिव जी की बातें सुनकर पार्वती जी ने तीन प्रकार से अपने भावों को व्यक्त किया। 1. संकोच लगा कि पिछले जन्म में हमने कितनी बड़ी गलती की थी। 2. प्रेम उमड़ा कि शिव जी कितने कृपालु हैं, हमारे भ्रम को दूर करने के लिये अब भी तत्पर हैं। 3. मुस्कुरा दीं – प्रेम व संकोच के साथ मुस्कुरा दीं। पार्वती जी के इन भावों की अनुभूति करते हुए कथा सुनें, तब रस आयेगा।

शिव जी पार्वती जी को मंगलकारी कथा सुनाने लगे

लगे बहुरि बरनै बृषकेतू। सो अवतार भयउ जेहि हेतू ॥141:8॥

लगे बहुरि बरनै बृषकेतू = फिर शिव जी उसका वर्णन करने लगे, *सो अवतार भयउ जेहि हेतू* = वह अवतार जिस कारण से हुआ था।

सो मैं तुम्ह सन कहउँ सबु सुनु मुनीस मन लाइ ।
राम कथा कलि मल हरनि मंगल करनि सुहाइ ॥दोहा 141॥

सो मैं तुम्ह सन कहउँ सबु = वह सब मैं तुमसे कहता हूँ, *सुनु मुनीस मन लाइ* = हे मुनि भरद्वाज तुम मन लगाकर सुनो, *राम कथा कलि मल हरनि* = राम जी की कथा कलियुग के पापों को दूर करने वाली, *मंगल करनि* = कल्याण करने वाली, *सुहाइ* = और बहुत सुंदर है।

याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि अयोध्या के राजा दशरथ के यहाँ पुत्र बनकर अवतार लेने के कारण की जो कथा शिव जी पार्वती जी को सुनाते हैं, वही कथा हे भरद्वाज मुनि! मैं तुम्हें सुनाता हूँ। तुम मन लगाकर सुनो। रामकथा बहुत ही सुंदर है, इसके सुनने से काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि कलियुग के मल दूर होते हैं, व्यक्ति का कल्याण होता है, वह सदा प्रसन्नता का अनुभव करता है।

मानवीय सृष्टि का आरंभ मनु-शतरूपा से हुआ

स्वायंभू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा ॥142:1॥
दंपति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका ॥142:2॥

स्वायंभू मनु अरु सतरूपा = स्वयंभू मनु और उनकी पत्नी शतरूपा, *जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा* = जिनसे मनुष्यों के इस संसार की अनुपम रचना हुई, *दंपति धरम आचरन नीका* = पति-पत्नी का धर्म से पूर्ण व्यवहार अच्छा था, *अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका* = उनके जीवन जीने के तरीके की वेदशास्त्र प्रशंसा करते हैं।

पुराणों के अनुसार ब्रह्मा जी ने जब सृष्टि प्रारंभ की तो मानस पुत्र जैसे– नारद व सनत कुमार उत्पन्न किये, उनसे सृष्टि आगे नहीं बढ़ी। फिर ब्रह्मा जी ने भगवान के कहने पर मानवीय सृष्टि प्रारंभ की। ब्रह्मा जी के शरीर के दो भाग हो गये– एक स्त्री दूसरा पुरुष, उनसे मानवीय शरीरों की उत्पत्ति हुई। कुछ शरीरों का सत्संग नारद व सनतकुमार से हो गया, वे परमात्म प्राप्ति में लग गये, उन्होंने ब्रह्मा जी के कहने पर भी और मानवीय शरीरों को उत्पन्न नहीं किया। जब मनु-शतरूपा हुए तो ब्रह्मा जी ने उन्हें सख्ती से आदेश दिया कि तुम संतान उत्पत्ति करके सृष्टि को बढ़ाओ, जीवन के सब कर्त्तव्य पूरा करके फिर भगवान के भजन में, परमात्मा की प्राप्ति में लग जाओ। तब मनु-शतरूपा गृहस्थ जीवन में पति-पत्नी का आचरण धर्मपूर्वक निभाते हुए, सदाचारी बने रहे। इनका इतना आदर्श जीवन था कि वेद भी उनकी प्रशंसा करते हैं।

मनु के वंश में ध्रुव व कपिल जैसे महान् लोग पैदा हुए

नृप उत्तानपाद सुत तासू। ध्रुव हरिभगत भयउ सुत जासू ॥142:3॥

नृप उत्तानपाद सुत तासू = राजा उत्तानपाद उनके पुत्र थे, *ध्रुव हरिभगत भयउ सुत जासू* = जिनके पुत्र भगवान के भक्त ध्रुव हुए।

लघु सुत नाम प्रियब्रत ताही। बेद पुरान प्रसंसहिं जाही ॥142:4॥
देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी ॥142:5॥

लघु सुत नाम प्रियब्रत ताही = मनु के छोटे पुत्र का नाम प्रियव्रत था, *बेद पुरान प्रसंसहिं जाही* = जिसकी वेद व पुराण प्रशंसा करते हैं, *देवहूति पुनि तासु*

कुमारी = देवहुति उनकी कन्या थी, *जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी* = जो कर्दम मुनि की प्रिय पत्नी थी।

आदिदेव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला ॥142:6॥
सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्त्व बिचार निपुन भगवाना ॥142:7॥

आदिदेव प्रभु दीनदयाला = आदिदेव दीनों पर दया करने वाले, *जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला* = कृपालु कपिल को जिन्होंने अपने गर्भ में धारण किया था, *सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना* = कपिल देव ने सांख्य शास्त्र का वर्णन किया था, *तत्त्व बिचार निपुन भगवाना* = तत्त्वों को विचार करके निपुणता के साथ।

तुलसीदास जी, मनु-शतरूपा की भौतिक उपलब्धियाँ बताते हैं। उनके दो पुत्र थे, बड़े का नाम उत्तानपाद था, जिनका पुत्र भगवान का परम भक्त ध्रुव हुआ। छोटे पुत्र का नाम प्रियव्रत था, वे इतने महान् थे कि वेद भी उनकी प्रशंसा करते हैं, उनकी पुत्री का नाम देवहुति था, जिसका विवाह ऋषि कर्दम के साथ हुआ था। देवहुति-कर्दम से कपिल मुनि पैदा हुए, जिन्होंने सांख्य दर्शन की रचना की। छः शास्त्रों में इसकी भी गणना होती है। कपिल मुनि तर्क करने में बहुत प्रवीण थे, तर्क से बुद्धि जहाँ तक जा सकती थी वहाँ तक वे ले गये।

मनु ने बहुत समय तक राज्य किया, ग्रंथ भी लिखे

तोहिं मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला ॥142:8॥

तोहिं मनु राज कीन्ह बहु काला = ऐसे मनु ने बहुत समय तक राज्य किया, *प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला* = सब प्रकार से भगवान की आज्ञा का पालन किया।

पिता ब्रह्मा जी के आदेश के अनुसार मनु ने संतान उत्पत्ति की, राज्य को बहुत समय तक कुशलतापूर्वक चलाया। मनु ने अपनी संतानों के लिये नियम बनाने के लिये एक ग्रंथ की रचना कर दी जिसे मनु-स्मृति कहते हैं। परिवार की व्यवस्था, राज्य की व्यवस्था, समाज में कैसे रहना है, आध्यात्मिक जीवन, यज्ञ आदि सभी का इसमें वर्णन है।

बुढ़ापे में वैराग्य न आया, बिना भक्ति जीवन व्यतीत होने का दुःख

होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन ।
हृदयँ बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु ॥सोरठा 142॥

होइ न बिषय बिराग = पर विषयों से वैराग्य नहीं हुआ, *भवन बसत भा चौथपन* = घर में रहते-रहते ही बुढ़ापा आ गया, *हृदयँ बहुत दुख लाग* = इस बात का मन में बहुत दुःख हुआ, *जनम गयउ हरिभगति बिनु* = यह जीवन भगवान की भक्ति के बिना यूँ ही चला गया।

इतना सब करने के बाद मनु का राजभवन में रहते-रहते ही चौथापन आ गया। यहाँ पर ध्यान दें, तीसरा नहीं चौथापन आ गया। जीवन के चौथेपन के बाद भी राज्य का सुख, धन का सुख, परिवार का सुख, सुख लग रहे हैं, आसक्ति बनी ही हुयी है, घर से निकलने का मन नहीं हो रहा है। मनु ने मनु-स्मृति में लिख तो दिया कि पहला आश्रम ब्रह्मचर्य, दूसरा गृहस्थ, तीसरा गृहस्थ त्यागकर वानप्रस्थ और चौथा संन्यास, लिख देना तो एक बात है, पर घर छोड़ें यह मन को स्वीकार ही नहीं हो रहा है। जब कार्य करने की क्षमता कम होने लगी, तो उन्हें लगा कि ब्रह्मा जी ने यह तो नहीं कहा था कि वृद्धावस्था में भी राज्य करते रहना। अब मनु को वैराग्य अवस्था न आने का दुःख होने लगा, उन्हें लगने लगा कि सारा जीवन बिना भगवान की भक्ति के यूँ ही बीत गया।

भोग न भोग पाने व भोग न छूटने के दुःख के फर्क को समझें

चौथेपन में सिर्फ भगवान की भक्ति ही करनी है, पर घर-परिवार, भोगों में आसक्ति के कारण वैसे भक्ति नहीं कर पाने की ग्लानि के दुःख का वर्णन इस प्रसंग में किया है। जो भौतिक जीवन में पूरी तरह डूबे हैं, उन्हें बुढ़ापे में इस बात का दुःख रहता है कि अब हम विषय-भोगों का सुख नहीं उठा सकते, बढ़िया भोजन नहीं कर सकते, ज्यादा बोल नहीं सकते, सारा धन यहीं छूट जायेगा। बुढ़ापे में ज्ञानी को इस बात का दुःख रहता है कि हम भोगों को छोड़ नहीं पा रहे हैं, अज्ञानी इस बात से दुःखी रहता है कि हमने जो विषय-भोग एकत्रित किये हैं उन्हें भोग नहीं पा रहे हैं।

मनु तैयार, पुत्र तैयार नहीं, तब जबर्दस्ती राज्य सौंप चल दिये

बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा ॥143:1॥

बरबस = जबर्दस्ती, *राज सुतहि तब दीन्हा* = तब राज्य पुत्र को सौंपकर, *नारि समेत* = पत्नी सहित, *गवन बन कीन्हा* = वन को चल दिये।

मनु ने अपने मन को समझा लिया, वैराग्य आ गया, राज्य त्याग कर वन जाने का मन में निश्चय कर लिया। उनका पुत्र उत्तानपाद राज्य लेने को तैयार नहीं हुआ, अरे! आप कहाँ वन में जाओगे, यहीं रहो, राजा आप रहें, हम युवराज हैं ही, सारे राज्य की व्यवस्था हम करेंगे, आपके सिर पर भार नहीं रहेगा, ऋषि-मुनियों को यहीं बुला लो, खूब सत्संग करो, पर वन मत जाओ। मनु ने बात नहीं मानी, यह जीवन अब राज्य भोगने के लिये नहीं है, हम तो जा रहे हैं। तब मनु ने प्रजा के सामने पुत्र को जबर्दस्ती राज्य सौंप कर राजा बना दिया। यह सारी व्यवस्था मनु ने अपने लिये की थी, पर उनकी पत्नी ने साथ दिया। उन्हें भी वैराग्य आ गया। साथ में शतरूपा भी चल दीं।

नैमिषारण्य तीर्थ की तरफ मनु-शतरूपा चल दिये

तीरथ बर नैमिष बिख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता ॥143:2॥
बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा। तहँ हियँ हरषि चलेउ मनु राजा ॥143:3॥
पंथ जात सोहहिं मतिधीरा। ग्यान भगति जनु धरें सरीरा ॥143:4॥

तीरथ बर नैमिष बिख्याता = सुंदर व प्रसिद्ध नैमिषारण्य तीर्थ है, *अति पुनीत साधक सिधि दाता* = यह अत्यंत पवित्र व साधकों को सिद्धि देने वाला है, *बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा* = वहाँ पर मुनियों व सिद्धों का समाज रहता है, *तहँ हियँ हरषि चलेउ मनु राजा* = राजा मनु मन में प्रसन्नता से वहाँ चल दिये, *पंथ जात* = रास्ते में जाते हुए, *सोहहिं मतिधीरा* = धैर्यवान् राजा-रानी ऐसे सुंदर लग रहे हैं, *ग्यान भगति जनु धरें सरीरा* = मानो ज्ञान व भक्ति शरीर धारण करके चले जा रहे हैं।

अयोध्या के पास नैमिषारण्य नाम का एक विशिष्ट तीर्थ था, वहाँ पर सिद्धों का समाज पहले से ही रहता था, इसलिये वातावरण ऐसा था कि साधकों का मन शांत हो जाता था, मन का नियंत्रित होना ही सिद्धि की अवस्था कहलाती है।

मनु-शतरूपा अयोध्या के राजा-रानी थे, नैमिषारण्य तीर्थ की तरफ प्रसन्नता से चल दिये। तुलसीदास जी को यह बताना पड़ा कि उनके मन में राज्य, परिवार, गृहस्थ जीवन व सुख-सुविधा छोड़ने का दु:ख नहीं है। कहते हैं मार्ग में जाते हुए वे ऐसे शोभायमान हो रहे हैं मानों ज्ञान व भक्ति दोनों शरीर धारण करके जा रहे हैं। मनु ज्ञान की मूर्ति और शतरूपा भक्ति की मूर्ति लग रही हैं।

गोमती नदी पहुँचे, स्नान किया, मुनिगण मिलने आये

पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा। हरषि नहाने निरमल नीरा ॥143:5॥
आए मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी। धरम धुरंधर नृपरिषि जानी ॥143:6॥
जहँ तहँ तीरथ रहे सुहाए। मुनिन्ह सकल सादर करवाए ॥143:7॥

पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा = वे गोमती नदी के किनारे पहुँचे, *हरषि नहाने निरमल नीरा* = प्रसन्नता से निर्मल जल में स्नान किया, *आए मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी* = उनसे मिलने के लिये सिद्ध, मुनि व ज्ञानी लोग आते हैं, *धरम धुरंधर नृपरिषि जानी* = यह समझकर कि ये धर्म का पालन करने वाले राजाओं के ऋषि हैं, *जहँ तहँ तीरथ रहे सुहाए* = वहाँ जितने भी सुंदर तीर्थ स्थान थे, *मुनिन्ह सकल सादर करवाए* = मुनियों ने आदरपूर्वक उन्हें दर्शन करवाये।

धेनु = गौ, *धेनुमति* = गोमती। ये दोनों गोमती नदी के किनारे पहुँचे। वहाँ नदी के निर्मल जल में स्नान किया, अयोध्या से पैदल ही आये थे, स्नान से थकान दूर हो गई। वहाँ रहने वाले सिद्ध, मुनि व ज्ञानिजनों ने सोचा कि ये तो हमारे राजा हैं, बहुत धर्मपूर्वक राज्य करते रहे हैं, इसलिये राजर्षि हैं। ये सब विचार करके वे लोग मिलने आये, और मुनियों ने उन्हें आसपास के सारे सुंदर तीर्थ एवं मंदिरों के दर्शन आदरपूर्वक करवाए।

साधारण वस्त्र में, साधारण भोजन में, वहीं रहने लगे

कृस सरीर मुनिपट परिधाना। सत समाज नित सुनहिं पुराना ॥143:8॥

कृस सरीर = उनका शरीर पतला हो गया था, *मुनिपट परिधाना* = मुनियों के वस्त्र धारण करते थे, *सत समाज नित सुनहिं पुराना* = संतों के समाज में नित्य पुराण सुनते थे।

मनु-शतरूपा वहीं रहने लगे। रहते कैसे हैं? राजसी वस्त्र नहीं पहनते, मुनि लोग जैसे साधारण वस्त्र पहनते हैं, वैसे पहनने लगे। मुनियों के बीच में सुंदर वस्त्र पहनना सभ्यता के विपरीत है। कृष शरीर इस बात को सूचित करता है कि वे भोजन भी मुनियों जैसा साधारण ही करते थे। गरिष्ठ भोजन नहीं करते, जिससे शरीर भारी हो। वृद्धावस्था के लिये दुबलापन व साधारण भोजन वरदान है।

खाकर सो नहीं जाते, बल्कि पुराण सुनते हैं

खाए पिए सोते रहो, नहीं, वे सो नहीं जाते, वहाँ पर मुनि लोग रोज पुराण सुनाते थे। दोनों पुराण की कथा को सुनकर उसे मन में धारण करते। इनके सुनने से मन में ज्ञान व भक्ति बढ़ती है। भगवान स्वयं नौ प्रकार की भक्ति में सबसे पहली सत्संग को बताते हैं। साधना की प्रथम सीढ़ी से मनु-शतरूपा आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत करते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, द्वादश अक्षर मंत्र का जप करते हैं

द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग ।
बासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग ॥दोहा 143॥

द्वादस अच्छर मंत्र पुनि = फिर द्वादश अक्षर मंत्र का, *जपहिं सहित अनुराग* = प्रेम सहित जप करते थे, *बासुदेव पद पंकरुह* = भगवान वासुदेव के चरण कमलों में, *दंपति मन अति लाग* = राजा-रानी का मन बहुत ही लगने लगा।

तुलसीदास जी ने द्वादश अक्षर मंत्र कह दिया, मायने ये लोग 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' नाम के 12 अक्षरों वाले मंत्र का बहुत ही प्रेम से अधिक से अधिक जप करने लगे। पुराणों के सुनने से ज्ञान उदय हुआ, मंत्र जप से पाप क्षीण हुए, स्वभाव बदला, फिर भगवान की भक्ति उत्पन्न होने लगी। इस प्रकार मनु-शतरूपा साधना में आगे बढ़ते हैं।

ब्रह्म के सत् चित् व आनंद स्वरूप का चिंतन करते हैं

करहिं अहार साक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा ॥144:1॥

करहिं अहार साक फल कंदा = वे भोजन में साग, फल व कंद खाते थे, *सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा* = और सत्, चित, आनंद स्वरूप ब्रह्म का स्मरण करते थे।

पुराण सुनने व मंत्र जप के बाद ब्रह्म का स्मरण करते थे। मनु-शतरूपा सोचते हैं कि ब्रह्म तो सदा है, वही सत्य है, बाकी सब तो नाशवान् है। ब्रह्म चेतन तत्त्व है, उसकी चेतना सब जगह भासित होती है। वही आनंद का भंडार है। भोजन के चिंतन में नहीं लगे रहते, आसानी से उपलब्ध होने वाली वस्तुयें जैसे फल, साग, शकर कंद इत्यादि खाकर ही शरीर को पालते हैं।

ब्रह्म के मनुष्य रूप में दर्शन की इच्छा से तप प्रारंभ

पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि अधार मूल फल त्यागे ॥144:2॥
उर अभिलाष निरंतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई ॥144:3॥

पुनि हरि हेतु करन तप लागे = फिर परमात्मा की प्राप्ति के लिये तप करने लगे, *बारि अधार* = जल पर निर्भर हो गये, *मूल फल त्यागे* = मूल-फल त्याग दिया, *उर अभिलाष निरंतर होई* = मन में हमेशा यही इच्छा होने लगी, *देखिअ नयन परम प्रभु सोई* = ऐसे परमात्मा का हम अपनी आँखों से दर्शन करें।

मनु-शतरूपा ने फिर उसी ब्रह्म के साक्षात् दर्शन की अभिलाषा से तप प्रारंभ कर दिया। उन्होंने स्थूल भोजन जैसे साग-सब्जी का त्याग कर दिया, अब केवल पानी पीकर ही रहने लगे। मन में एक ही कामना लगातार रहने लगी कि इन आँखों से उस परम ब्रह्म के दर्शन करें।

वह ब्रह्म कैसा है जिसे ये आँखों से देखना चाहते हैं

अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथबादी ॥144:4॥
नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा ॥144:5॥

अगुन = निर्गुण, *अखंड* = एक जैसा, *अनंत* = जिसका पार नहीं है, *अनादी* = जिसका प्रारंभ अंत नहीं है, *जेहि चिंतहिं परमारथबादी* = ब्रह्म-

ज्ञानी जिसका चिंतन करते हैं, *नेति नेति जेहि बेद निरूपा* = इतना ही नहीं; इतना ही नहीं कहकर वेद वर्णन करते हैं, *निजानंद* = वही अपना स्वरूप है, *निरुपाधि* = उपाधि रहित है, *अनूपा* = उसके समान दूसरा नहीं है।

जिस ब्रह्म को अपनी आँखों से राजा-रानी देखना चाहते हैं, वह है कैसा? वह निर्गुण है, वह सब जगह एक जैसा है, कहीं कम कहीं ज्यादा नहीं है, वह अनंत है, उसका न तो प्रारंभ है न ही अंत है, वह अपना ही स्वरूप है, उसकी कोई उपाधि नहीं है और उसके समान कोई दूसरा है ही नहीं। उस ब्रह्म के इतने ही लक्षण नहीं है, ऐसा कहकर वेद उसका वर्णन करते हैं। परमार्थवादी सदैव उसी का चिंतन करते रहते हैं।

उसके एक अंश से अनेकों ब्रह्मा-विष्णु-महेश उत्पन्न होते हैं

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना ॥144:6॥

संभु बिरंचि बिष्नु = ब्रह्मा, विष्णु व महेश, *भगवाना उपजहिं* = ईश्वर की उत्पत्ति, *जासु अंस तें* = जिसके एक अंश से, *नाना* = अनेकों होती है।

उसी ब्रह्म के एक अंश से ईश्वर की उत्पत्ति हुई। उस ईश्वर से तीन कार्य हुए 1. रचना करने वाले ब्रह्मा, 2. पालन करने वाले विष्णु, 3. विध्वंस करने वाले शिव। अनेक ब्रह्मांडों के अलग-अलग ब्रह्मा, विष्णु व महेश हैं, उनका स्वरूप भी भिन्न रहता है पर ब्रह्म सदैव एक-सा रहता है। उन सबकी उत्पत्ति एक ही ब्रह्म से होती है।

ब्रह्म मनुष्य बनता है, यदि यह सत्य है, तो हमें दर्शन हों

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई ॥144:7॥
जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा ॥144:8॥

ऐसेउ प्रभु = ऐसे महान् प्रभु, *सेवक बस अहई* = सेवक के वश में हैं, *भगत हेतु* = भक्त के हित के लिये, *लीलातनु गहई* = लीला करके मनुष्य शरीर धारण करते हैं, *जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा* = यदि वेदों का यह वचन सत्य है, *तौ हमार पूजिहि अभिलाषा* = तो हमारी इच्छा भी पूरी होगी।

मनु-शतरूपा सोचते हैं कि वेदों में कहा गया है कि ऐसे महान् ब्रह्म भक्तों के वश में रहते हैं, उनके हित के लिये नाटकीय शरीर धारण कर लेते हैं। यदि श्रुतियों में कही गयी ये बातें सत्य हैं तो फिर हमारी भी अभिलाषा पूरी हो। वे ब्रह्म हमारे लिये भी शरीर धारण करें, हमारे सामने प्रगट हों, हम उन्हें इन आँखों से देखें।

कठोर तप करते हैं – जल व वायु त्यागकर एक पैर पर खड़े रहे

एहि बिधि बीते बरष षट सहस बारि आहार ।
संबत सप्त सहस्त्र पुनि रहे समीर अधार ॥दोहा 144॥

एहि बिधि बीते = इस प्रकार व्यतीत हो गये, *बरष षट सहस* = छः हजार वर्ष, *बारि आहार* = पानी पीकर के, *संबत सप्त सहस्त्र पुनि* = फिर सात हजार वर्ष तक, *रहे समीर अधार* = वायु के बल पर ही रहे।

बरस सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एक पद दोऊ ॥145:1॥

बरस सहस दस = दस हजार वर्ष तक, *त्यागेउ सोऊ* = वायु का भी त्याग कर दिया, *ठाढ़े रहे एक पद दोऊ* = वे दोनों एक पैर पर खड़े रहे।

मनु-शतरूपा ने ब्रह्म के साकार रूप के दर्शन की इच्छा मन में रखकर कठोर तप प्रारंभ किया। 6 हजार वर्ष पानी का सेवन करके बिताये। पानी त्याग कर, 7 हजार वर्षों तक वायु का सेवन किया। फिर बिना वायु का सेवन किये, एक पैर पर ही स्थिर खड़े रहकर 10 हजार वर्षों तक दोनों ने तप किया। पौराणिक भाषा में हजार वर्षों से आशय है बहुत लंबे समय तक। जब व्यक्ति समाधि की अवस्था में चला जाता है तो श्वास की आवश्यकता नहीं होती है। जिस प्रकार दीपक की लौ शांत स्थान पर हिलती नहीं, स्थिर रहती है, उसी प्रकार मनु-शतरूपा लंबे समय तक एक ही स्थिति में रहकर ध्यान करते रहे, इसे समझाने के लिये कहते हैं कि एक पैर पर खड़े रहे।

त्रिदेवों ने वर माँगने को कहा, पर ये तप से डिगे नहीं

बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा ॥145:2॥
मागहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए ॥145:3॥
अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा। तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा ॥145:4॥

बिधि हरि हर = ब्रह्मा, विष्णु व महेश, *तप देखि अपारा* = अपार तप को देखकर, *मनु समीप आए बहु बारा* = मनु के पास बहुत बार आए, *मागहु बर* = और कहा वर माँगो, *बहु भाँति लोभाए* = अनेक लालच भी दिये, *परम धीर* = परम धैर्यवान् मनु व शतरूपा, *नहिं चलहिं चलाए* = तप से डिगाये नहीं डिगे, *अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा* = शरीर में मात्र अस्थियाँ बचीं, *तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा* = फिर भी उनके मन में रंचमात्र भी कष्ट नहीं था।

इनके कठोर तप से ब्रह्मा-विष्णु-महेश प्रसन्न होकर अनेकों बार मनु-शतरूपा के पास आकर बोले कि जो चाहो वर माँग लो, सब हमारी ही सृष्टि है। ये किसी भी तरह के प्रलोभन में न आकर, निश्चय भाव से प्रभु-दर्शन की इच्छा मन में लिये तप में लगे रहे। इनके शरीर का माँस सूख गया, केवल अस्थियाँ बचीं, वजन एकदम घट गया, पर इन्हें मन में रंचमात्र भी दु:ख नहीं हुआ।

अनन्य भक्ति देख, प्रभु ने आकाशवाणी की–वर माँगो

प्रभु सर्बग्य दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी ॥145:5॥
मागु मागु बरु भै नभ बानी। परम गभीर कृपामृत सानी ॥145:6॥

प्रभु सर्बग्य = भगवान तो सब जानने वाले हैं, *दास निज जानी* = देखा कि ये तो मेरे ही भक्त हैं, *गति अनन्य तापस नृप रानी* = इन तपस्वी राजा व रानी की भक्ति तो अनन्य है, *मागु मागु बरु भै नभ बानी* = वर माँगो, वर माँगो ऐसी आकाशवाणी हुई, *परम गभीर कृपामृत सानी* = भगवान की वाणी कृपा के अमृत से भरी हुई बहुत गंभीर थी।

ब्रह्म ने देखा कि यह तो केवल मुझे ही चाहता है, मेरा अनन्य भक्त है, इसे तो मेरे अतिरिक्त और कुछ चाहिये ही नहीं। तब प्रभु, कृपा के अमृत से भरी हुई गंभीर आकाशवाणी करते हैं। कहते हैं, जिसकी तुम आराधना कर रहे हो, हम वही बोल रहे हैं, तुम्हें जो वरदान चाहिये माँगो।

आकाशवाणी सुनते ही शरीर हृष्ट-पुष्ट हो गया

मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। श्रवन रंध्र होइ उर जब आई ॥145:7॥
हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए। मानहुँ अबहिं भवन ते आए ॥145:8॥

मृतक जिआवनि= मरे को भी जिंदा कर देने वाली, *गिरा सुहाई*= सुंदर वाणी, *श्रवन रंध्र होइ*= कानों के रास्ते से, *उर जब आई*= जब हृदय में पहुँची, *हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए*= उनके शरीर सुंदर हृष्ट-पुष्ट हो गये, *मानहुँ अबहिं भवन ते आए*= जैसे अभी-अभी घर से ही आये हों।

मनु-शतरूपा ने आकाशवाणी को कानों से सुना, अमृत के समान यह वाणी जब हृदय में पहुँची तो उसके परिणाम से इनके शरीर फिर पहले जैसे स्वस्थ व हृष्ट-पुष्ट हो गये। इन्हें देखकर लगने लगा कि ये अभी-अभी अपने घर से ही आये हैं। जैसे सूर्य उदय होने के पहले ही अंधकार मिट जाता है, सूर्य सदैव प्रकाश में ही उगता है, उसी प्रकार परमात्मा के प्रगट होने के पहले सारे क्लेश व अज्ञान समाप्त हो जाते हैं, व्यक्ति पूर्णत: स्वस्थ हो जाता है, फिर प्रभु प्रगट होकर दर्शन देते हैं।

भगवान के स्मरण से भी शरीर चल सकता है, इसे समझें

कई बार हम सोचते हैं कि भगवान का स्मरण करते रहेंगे तो यह शरीर कैसे चलेगा, जीवन-यापन कैसे होगा? शरीर के लिये अन्न-जल आवश्यक है। बात तो ठीक है, पर भगवान के शरीर चलाने के तरीके को भी समझें, उनकी वाणी कान में पड़ते ही व्यक्ति पूर्णत: स्वस्थ व प्रसन्न हो जाता है। यह वाणी मरे व्यक्ति में भी जान फूँक सकती है। इस बात पर बार-बार विचार करते रहना चाहिये।

प्रफुल्लित व रोमांचित हो गये, दंडवत् करके प्रार्थना करते हैं

श्रवन सुधा सम बचन सुनि पुलक प्रफुल्लित गात ।
बोले मनु करि दंडवत प्रेम न हृदयँ समात ॥दोहा 145॥

श्रवन सुधा सम= कानों में अमृत के समान, *बचन सुनि*= वचनों को सुनकर, *पुलक प्रफुल्लित गात*= प्रसन्नता व रोमांच से भरपूर हो गये, *बोले मनु करि दंडवत*= तब मनु दंडवत् प्रणाम करके बोलते हैं, *प्रेम न हृदयँ समात*= उनके मन में प्रेम समा नहीं रहा था।

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। बिधि हरि हर बंदित पद रेनू ॥146:1॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रनतपाल सचराचर नायक ॥146:2॥

सुनु = हे प्रभु सुनिये, *सेवक सुरतरु सुरधेनू* = भक्तों के लिये आप कल्पवृक्ष व कामधेनु के समान हैं, *बिधि हरि हर* = ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी, *बंदित पद रेनू* = आपकी चरण धूलि की वंदना करते हैं, *सेवत सुलभ* = आपकी भक्ति करना सरल है, *सकल सुखदायक* = आप सब सुख देने वाले हैं, *प्रनतपाल* = शरण में आये की रक्षा करते हैं, *सचराचर नायक* = चर व अचर सबके स्वामी हैं।

आकाशवाणी सुनकर मनु-शतरूपा बहुत प्रसन्न हो गये, उनके शरीर रोमांचित हो गये, मन प्रेम से भरपूर हो गया। वे प्रभु को दण्डवत् प्रणाम करते हैं। प्रभु अभी प्रकट नहीं हुए हैं। मनु प्रार्थना करते हुए उनका यश गाते हैं। कामधेनु व कल्पवृक्ष के समान ही आप अपने भक्तों को इच्छित फल देते हैं। आप परात्पर ब्रह्म हैं, ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी आपके ही अंश हैं, इसलिये वे आपकी चरण धूलि की वंदना करते रहते हैं। जो आपकी सेवा करते हैं, उनके लिये आप सुलभ हैं, उन्हें सब प्रकार से सुख देने वाले हैं। जो आपकी शरण में आता है, उसकी रक्षा करते हैं। चर व अचर सबके आप स्वामी हैं।

मनु-शतरूपा वरदान माँगते हैं– हे प्रभु प्रगट होकर दर्शन दें!

जौं अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू ॥146:3॥

जौं अनाथ हित = हे अनाथों का कल्याण करने वाले, *हम पर नेहू* = आपका हमारे ऊपर स्नेह है, *तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू* = प्रसन्न होकर हमें यह वरदान प्रदान करें।

जो सरूप बस सिव मन माहीं। जेहिं कारन मुनि जतन कराहीं ॥146:4॥
जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा ॥146:5॥

जो सरूप = आपका जो स्वरूप, *बस सिव मन माहीं* = शिव जी के मन में बसता है, *जेहिं कारन* = जिसे प्राप्त करने के लिये, *मुनि जतन कराहीं* = मुनि लोग प्रयत्न करते हैं, *जो भुसुंडि* = जो रूप काकभुशुण्डि के, *मन मानस हंसा* = मानसरोवर के समान हृदय में हंस के समान रहता है, *सगुन अगुन* = सगुण व निर्गुण कहकर, *जेहि निगम प्रसंसा* = जिसकी वेद प्रशंसा करते हैं।

देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन ॥146:6॥

देखहिं हम सो रूप = वही रूप हम देखना चाहते हैं, *भरि लोचन* = आँखें भरकर मायने खूब अच्छे से, *कृपा करहु* = आप हमारे ऊपर कृपा करें, *प्रनतारति मोचन* = आप तो शरण में आये का दु:ख मिटाते हैं।

मनु-शतरूपा कहते हैं, हे प्रभु आप अनाथों का हित करने वाले हो, हमारे ऊपर आपका स्नेह है, आपने कहा है वरदान माँगो तो हम यह वरदान माँगते हैं कि आप हमारे सामने साक्षात् प्रकट होवें। हम आपको अच्छे से, आँखें भरकर देखें, ऐसा नहीं कि कुछ क्षण के लिये आये फिर चल दिये। हे शरणागत के दु:खों को दूर करने वाले प्रभु! हमारे ऊपर कृपा करें। पर भगवान आयें तो किस रूप में? मनु-शतरूपा को लगा कि यदि हम कल्पना करते हैं कि भगवान ऐसे हैं, इस रूप में आयें, तो हो सकता है हमारी बुद्धि उतने सुंदर रूप की कल्पना न कर पाये, जैसे वे हैं, हम असली रूप के दर्शन से वंचित रह जायेंगे। इसलिये कहते हैं कि आप उस रूप में आयें–
1. जो रूप शिव जी के मन में बसता है। वे राम रूप में स्मरण करते हैं।
2. जो रूप काकभुशुण्डि के हृदय के मानसरोवर में हंस के समान रहता है।
3. जिस रूप को पाने के लिये मुनि लोग प्रयत्न करते रहते हैं।
4. जिस रूप को सगुण फिर निर्गुण कहकर वेद प्रशंसा करते हैं।

सर्वत्र विद्यमान भगवान, राम रूप में सीता सहित प्रगट हो गये

दंपति बचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे ॥146:7॥
भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना ॥146:8॥

दंपति बचन परम प्रिय लागे = राजा-रानी के वचन भगवान को बहुत प्रिय लगे, *मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे* = क्योंकि ये वचन कोमल थे; विनम्रता पूर्ण थे और प्रेम से भरे हुए थे, *भगत बछल प्रभु* = भक्तों से वात्सल्य प्रेम करने वाले, *कृपानिधाना* = कृपा के निधान, *बिस्वबास* = सब जगह विद्यमान, *प्रगटे भगवाना* = भगवान प्रगट हो गये।

मनु-शतरूपा की बातें भगवान को बहुत अच्छी लगीं। उन्हें लगा भक्त को इस प्रकार कोमलता से, विनम्रता से व प्रेम भरी मधुर वाणी से बोलना चाहिये। भगवान अपने भक्तों पर ऐसा प्रेम रखते हैं जैसे माँ अपने बच्चों

पर रखती है। भगवान तो आकाश की तरह सब जगह व्याप्त हैं ही, उन्हें कहीं से आना नहीं पड़ा, बस पहले निराकार थे, दिखाई नहीं दे रहे थे, अब सगुण राम रूप धारण कर लिया, तो वे मनु-शतरूपा को सीता जी सहित दिखाई देने लगे।

पहली दृष्टि में प्रभु का पूरा शरीर दिखा, जो श्याम वर्ण है

नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम ।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम ॥दोहा 146॥

नील सरोरुह= नीले कमल के समान, *नील मनि*= नीली मणि के समान, *नील नीरधर*= जल से भरे नीले बादल के समान, *स्याम*= नीले रंग के भगवान हैं, *लाजहिं तन सोभा निरखि*= उनके शरीर की शोभा देखकर लज्जित हो जाते हैं, *कोटि कोटि सत काम*= करोड़ों कामदेव भी।

मनु-शतरूपा की दृष्टि भगवान के ऊपर पड़ी, तो पहले उनका श्यामवर्ण दिखाई दिया। तुलसीदास जी तीन उदाहरणों से भगवान के नील रंग के शरीर की सुंदरता का वर्णन करते हैं।

1. नीले कमल के समान शरीर कोमल है, और सुंगधित भी है।
2. नीली मणि के समान स्वयं प्रकाशित है। मणि कठोर होती है, पर भगवान कमल के समान कोमल हैं। यदि वे अंधेरे में भी आयें तो दिखते हैं।
3. नीले बादल के समान सरस हैं। जब बादलों में जल भरा हो तो वे नीले व सरस दिखते हैं, वैसे ही भगवान दिख रहे हैं।

सबसे अधिक सुंदर कामदेव हैं, पर भगवान करोड़ों कामदेवों से भी ज्यादा सुंदर हैं।

मुख की मुस्कान, गाल, ठोड़ी, गर्दन, ओठ, दाँत, नाक सुंदर दिखे

सरद मयंक बदन छबि सींवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा ॥147:1॥
अधर अरुन रद सुंदर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा ॥147:2॥

सरद मयंक= शरदपूर्णिमा के चन्द्रमा के समान, *बदन छबि सींवा*= मुख की छवि शोभायमान है, *चारु कपोल चिबुक*= गाल व ठोड़ी बहुत सुंदर

है, *दर* = शंख के समान, *ग्रीवा* = गर्दन है, *अधर अरुन* = लाल ओठ, *रद* = दाँत, *सुंदर नासा* = व नासिका सुंदर है, *बिधु कर निकर* = चन्द्रमा की सुंदर किरणों की, *बिनिंदक* = निंदा करते हुए यानि उससे भी अच्छी, *हासा* = मुस्कुराहट है।

मनु-शतरूपा अब भगवान के मुख को देखते हैं, उन्हें लगा कि शरदपूर्णिमा के चन्द्रमा के समान यह शोभायमान है। फिर मुख के एक-एक भाग को देखते हैं, गाल व ठोड़ी बहुत सुंदर हैं। गर्दन तो शंख के समान गोलाकार व लंबी है। ओठ लाल रंग के हैं, दाँत व नासिका भी सुंदर हैं। भगवान का मुख प्रसन्न हैं, वे मुस्कुरा रहे हैं। प्रसन्नता ऐसे लग रही है मानों चन्द्रमा से शीतल किरणें प्रगट हो रहीं हैं। फिर लगा कि यह तो चन्द्र-किरणों से भी सुंदर है।

आँखें, भौहें, ललाट, कान, बाल, सिर की सुंदरता

नव अंबुज अंबक छबि नीकी। चितवनि ललित भावँती जी की ॥147:3॥
भुकृटि मनोज चाप छबि हारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी ॥147:4॥
कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा ॥147:5॥

नव अंबुज = नए खिले कमल के समान, *अंबक छबि नीकी* = आँखों की सुंदर छबि है, *चितवनि ललित* = भगवान का दृष्टिपात इतना प्यारा है, *भावँती जी की* = कि देखते ही मन को मोह ले, *भुकृटि* = भौंहें, *मनोज चाप* = कामदेव के धनुष, *छबि हारी* = से ज्यादा सुंदर थीं, *तिलक ललाट पटल* = माथे पर तिलक लगाये थे, *दुतिकारी* = जो प्रकाशित था, *कुंडल* = कानों में कुंडल पहने हैं, *मकर* = जो मछली के आकार के हैं, *मुकुट सिर भ्राजा* = सिर पर मुकुट सुशोभित था, *कुटिल केस* = घुँघराले बाल, *जनु मधुप समाजा* = ऐसे लग रहे थे मानो भौंरो का गुच्छा हो।

मनु-शतरूपा की दृष्टि जब प्रभु की आँखों तक पहुँची तो लगा कि ये तो ताजे खिले कमल के समान हैं। जब आँखों में देखा, तब प्रभु उनकी तरफ इतने प्यार से देख रहे थे कि उनके दृष्टिपात से इन दोनों के मन मोहित हो गये। भौहों की ओर देखा तो वे तिरछी थीं, उनका तिरछापन कामदेव के धनुष से ज्यादा सुंदर लग रहा था। अब माथे की तरफ देखते हैं, वहाँ पर लगा तिलक

प्रकाशमय था। कानों में मछली के आकार के कुंडल पहने थे। सिर पर मुकुट शोभायमान था। प्रभु के बाल सुंदर, काले, घने व घुँघराले थे, ऐसा लगा मानो कमल के पास काले भौंरों के झुंड मंडरा रहे हैं।

हृदय, कंधे, भुजाओं, कमर की सुंदरता व साज-शृंगार का सौंदर्य

उर श्रीबत्स रुचिर बनमाला। पदिक हार भूषन मनि जाला ॥147:6॥
केहरि कंधर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषन सुंदर तेऊ ॥147:7॥
करि कर सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग कर सर कोदंडा ॥147:8॥

उर = हृदय पर, *श्रीबत्स* = श्रीवत्स, *रुचिर बनमाला* = सुंदर वनमाला, *पदिक हार* = रत्नजड़ित हार, *भूषन मनि जाला* = मणियों के आभूषण सुशोभित थे, *केहरि कंधर* = सिंह के समान कंधे थे, *चारु जनेऊ* = सुंदर जनेऊ पहने थे, *बाहु बिभूषन* = बाहों में पहने हुए आभूषण, *सुंदर तेऊ* = भी सुंदर थे, *करि कर सरिस* = हाथी की सूँढ़ के समान, *सुभग भुजदंडा* = भुजायें सुंदर हैं । *कटि निषंग* = कमर में तरकस, *कर सर कोदंडा* = हाथ में धुनष-बाण था।

भगवान के हृदय पर श्रीवत्स, वनमाला, रत्नजड़ित हार और मणियों के आभूषण शोभा पा रहे थे। कंधे सिंह के समान शक्तिशाली व विशाल थे, उन पर सुंदर जनेऊ शोभायमान था। उनकी भुजायें हाथी के सूँढ़ के समान सुन्दर उतार-चढ़ाव वाली, सुदृढ़, लंबी और अत्यन्त बलशाली थी। भुजाओं में भी गहने पहने थे। कमर में तरकस कसा हुआ था और वे हाथ में धनुष-बाण पकड़े थे।

पेट, नाभि, पैर व पीले वस्त्र का सौंदर्य

तड़ित बिनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि ।
नाभि मनोहर लेति जनु जमुन भवँर छबि छीनि ॥दोहा 147॥

तड़ित = आकाश में चमकने वाली पीली बिजली, *बिनिंदक* = की निंदा करते हुए यानि उससे भी ज्यादा चमकदार, *पीत पट* = पीले वस्त्र पहने थे, *उदर रेख बर तीनि* = पेट में सुंदर तीन रेखायें थीं, *नाभि मनोहर* = नाभि ऐसी मनोहर थी, *लेति जनु जमुन भवँर छबि छीनि* = मानो यमुना जी के भँवरों की सुंदरता को छीन ले।

पद राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि मन मधुप बसहिं जेन्ह माहीं ॥148:1॥

पद राजीव = कमल के समान चरण हैं, *बरनि नहिं जाहीं* = जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता है, *मुनि मन मधुप* = भौंरों के समान मुनियों के मन, *बसहिं जेन्ह माहीं* = जिन चरणों में बसते हैं।

सुनहरे पीले रंग का पीताम्बर उनके पावन शरीर पर ऐसा चमक रहा है कि आकाश में चमकने वाली बिजली की चमक भी उसके सामने फीकी पड़ जाये। जब पेट पर दृष्टि गयी तो देखा वहाँ पर सुंदर तीन रेखायें थीं। नाभि तो ऐसी सुंदर थी मानो यमुना जी की भँवरों का समस्त सौंदर्य आकर उसी में समा गया हो। भगवान के एक-एक अंगों को देखते हुए मनु-शतरूपा अंत में चरणों की तरफ देखते हैं। चरण तो कमल के समान इतने सुंदर हैं कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। जैसे भ्रमर सदैव कमल के ऊपर मण्डराते रहते हैं, ऐसे ही मुनियों के मन सदा ही इन कमल रूपी चरणों का ध्यान करते रहते हैं।

बाँये भाग में सीता जी भी हैं, जो आदिशक्ति हैं

बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला ॥148:2॥

बाम भाग = बाँये तरफ, *सोभति* = शोभायमान हैं, *अनुकूला* = सदा भगवान के अनुकूल चलने वाली, *आदिसक्ति* = जो आदिशक्ति हैं, *छबिनिधि* = जो सुंदरता का समुद्र हैं, *जगमूला* = जो संसार की उत्पत्ति का मूल हैं।

प्रभु राम अकेले नहीं हैं, उनके बाँयी तरफ सीता जी भी शोभायमान हैं। वे सदा राम जी के अनुकूल रहती हैं। वे सुंदरता का समुद्र हैं। वे आदिशक्ति हैं। माया से जगत् की उत्पत्ति होती है, वे जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण हैं।

सीता जी के अंश से अनेकों लक्ष्मी, उमा, ब्रह्माणी उत्पन्न होती हैं

जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ॥148:3॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई ॥148:4॥

जासु अंस = जिसके अंश से, *उपजहिं गुनखानी* = गुणों की खान उत्पन्न होती हैं, *अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी* = अनेकों लक्ष्मी; उमा व ब्रह्माणी,

भृकुटि बिलास जासु = जिनके भौह के इशारे से ही, *जग होई* = जगत् की रचना हो जाती है, *राम बाम दिसि सीता सोई* = राम के बाँयी तरफ वही सीता जी हैं।

पहले कहा था कि परब्रह्म परमेश्वर प्रभु राम के एक अंश से अनेकों ब्रह्मा, विष्णु व महेश उत्पन्न होते हैं। उन्हीं ब्रह्म की आदिशक्ति सीता जी हैं। उनसे ही गुणों की खान तीनों देवियाँ उपन्न होती हैं। ब्रह्मा की शक्ति ब्रह्माणी, विष्णु की शक्ति लक्ष्मी, शिव की शक्ति पार्वती, ये तीनों देवियाँ सीता जी के अंश से उत्पन्न होती हैं। ये देवियाँ माया शक्ति हैं, सीता जी महामाया शक्ति हैं। सीता जी के भुकृटि के इशारे से ही ब्रह्मा की शक्ति जगत् को उत्पन्न करती है, विष्णु की शक्ति जगत् का पालन करती है व शिव की शक्ति जगत् का संहार करती है। राम जी के बाँयी तरफ वही सीता जी हैं।

ब्रह्म व उसकी माया शक्ति को समझें

रामचरितमानस में तुलसीदास जी ने वेदों की बातों को बहुत सरल करके समझाया है। ब्रह्म एक है, दूसरा नहीं। वह अपनी माया शक्ति से जगत् बनाता है। राम ब्रह्म हैं तो सीता जी माया शक्ति हैं। वही ब्रह्म जब जगत् की रचना करता है तो ब्रह्मा कहलाने लगता है, उसकी शक्ति का नाम ब्रह्माणी हो जाता है। जब जगत् का पालन करता है तो उसका नाम विष्णु हो जाता है, उसकी शक्ति का नाम लक्ष्मी हो जाता है। वही ब्रह्म जब संहार करता है तो शिव कहलाने लगता है, उसकी शक्ति पार्वती कहलाती है। ये सब कार्य होते रहते हैं, पर ब्रह्म, ब्रह्म ही बना रहता है। वह सदा एक सा रहता है। अलग-अलग ब्रह्मांडों में ब्रह्मा-ब्रह्माणी, विष्णु-लक्ष्मी, शिव-पार्वती के रूप अलग-अलग दिखते हैं, पर उन सबमें ब्रह्म की शक्ति सदा एक सी दिखती है।

मनु-शतरूपा एकटक देखते रह गये, मन भरा ही नहीं

छबिसमुद्रहरि रूप बिलोकी। एकटक रहे नयन पट रोकी ॥148:5॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा ॥148:6॥

छबिसमुद्रहरि = सुंदरता के समुद्र प्रभु राम, *रूप बिलोकी* = के रूप को देखकर, *एकटक रहे नयन पट रोकी* = पलकें रोककर आँखों से लगातार

देखते रह गये, *चितवहिं सादर रूप अनूपा* = प्रभु के अनुपम रूप को आदर सहित देखते हैं, *तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा* = मनु-शतरूपा के मन में तृप्ति ही नहीं हो रही थी।

प्रभु राम व सीता का सगुण साकार रूप तो सुंदरता का समुद्र है। इस अनुपम सौंदर्य को आदरसहित देखने के लिये मनु-शतरूपा ने पलकों को रोक लिया, वे बिना पलक झपकाये ही आँखों से लगातार देखते रह गये। लगता था और देखो, ठीक से देखो, मन में तृप्ति का भाव आ ही नहीं रहा था। भगवान भी खूब देर तक रुके रहे, क्योंकि अच्छे से, जी भरकर देखने का वरदान राजा-रानी ने पहले ही मांग लिया था।

ध्यान में इसी सुंदर रूप को देख सकते हैं

मनु-शतरूपा ने गृहस्थ जीवन के कर्त्तव्यों को पूरा करके, कठोर तप किया, फिर प्रभु प्रकट हुए, उनके दिव्य स्वरूप का दर्शन हुआ। पर, हम न तो गृहस्थी छोड़ पा रहे हैं, न तप कर पा रहे हैं। कैसे प्रभु के दर्शन हों? आसन करें, प्राणायाम करें, शरीर को ठीक रखें, फिर ध्यान करें। ध्यान में, जिस क्रम से तुलसीदास जी ने भगवान के स्वरूप के एक-एक अंग के सौंदर्य, उसकी उपमाओं का वर्णन किया है उसे देखें। अभ्यास से हम अपने मन में ही प्रभु के दर्शन कर सकते हैं। स्वामी सत्यानंद जी कहते हैं, प्रभु राम के सुंदर शरीर का मन में दर्शन होता रहे, उनकी कृपा बनी रहे। इस प्रसंग को बार-बार समझकर पढ़ें, सद्‌गुरु की कृपा से राम जी के दर्शन मन में तो अवश्य होंगे।

दंडवत् प्रणाम करते हैं, सिर पर हाथ फेरकर प्रभु उठा लेते हैं

हरष बिबस तन दसा भुलानी। परे दंड इव गहि पद पानी ॥148:7॥
सिर परसे प्रभु निज कर कंजा। तुरत उठाए करुनापुंजा ॥148:8॥

हरष बिबस = आनंद में इतने लीन हो गये कि, *तन दसा भुलानी* = शरीर की सुधि भूल गये, *परे दंड इव* = फिर दण्ड की तरह सीधे जमीन में लेट गये, *गहि पद* = चरणों को पकड़ लिया, *पानी* = अपने हाथों से, *सिर परसे प्रभु* = प्रभु ने उनके मस्तकों का स्पर्श किया, *निज कर कंजा* = अपने कमल के समान हाथों से, *तुरत उठाए करुनापुंजा* = करुणानिधान प्रभु ने उन्हें तुरंत ही उठा लिया।

राम व सीता के सुंदर शरीर का दर्शन करके मनु-शतरूपा इतना अधिक आनंदित हो गये कि अपने शरीर की सुध-बुध भूल गये। भगवान को प्रणाम करना भी भूल गये। जब याद आया तो दंडवत् लेट गये। राम जी ने अपना कमल के समान सुंदर हाथ उनके सिर पर रख दिया, उनके मस्तकों का स्पर्श कर दिया। फिर तुरंत ही करुणानिधान राम ने उन्हें जमीन से उठा लिया।

राम जी कहते हैं–मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ, मनचाहा वरदान माँग लो

बोले कृपानिधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि ।
मागहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि ॥दोहा 148॥

बोले कृपानिधान पुनि= फिर कृपानिधान भगवान बोले, *अति प्रसन्न मोहि जानि*= मुझे बहुत प्रसन्न जानकर, *मागहु बर जोइ भाव मन*= तुम्हारे मन में जो अच्छा लगे वह वर माँग लो, *महादानि अनुमानि*= यह समझकर कि मैं महादानी हूँ।

प्रभु राम उन दोनों को उठाकर कहते हैं कि तुम दोनों पर मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम जो चाहो वह वरदान माँग लो। तुम ऐसा समझो कि मुझसे बड़ा दान देने में अन्य कोई भी समर्थ नहीं है। इसलिये माँगने में कोई कमी मत रखना, ज्यादा से ज्यादा माँग लो।

प्रभु आपके दर्शन हो गये, सब मनोकामना पूर्ण हो गई

सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। धरि धीरजु बोली मृदु बानी ॥149:1॥
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे ॥149:2॥

सुनि प्रभु बचन = प्रभु की बातें सुनकर, *जोरि जुग पानी* = दोनों हाथों को जोड़कर, *धरि धीरजु* = धैर्य रखकर, *बोली मृदु बानी* = राजा कोमल वचन में बोलते हैं, *नाथ देखि पद कमल तुम्हारे* = हे नाथ! आपके कमल के समान चरण देखकर, *अब पूरे सब काम हमारे* = हमारी सारी मनोकामनायें पूरी हो गयी हैं।

भगवान के दर्शन पाकर मनु और शतरूपा का हृदय गद्‌गद् हो गया था, वाणी अवरुद्ध हो गई थी, प्रेम से लबालब हो गये थे, मन में संवेगों का उछाल चल रहा था। भगवान के मधुर एवं प्रेमपूर्ण वचन सुनकर धैर्य धारण किया, हाथों

को जोड़कर, बहुत कोमल वाणी में राजा मनु कहते हैं। हे नाथ! हमने आपके चरण कमलों के दर्शन कर लिये, अब हमारी सभी मनोकामनायें पूरी हो गई हैं।

एक इच्छा है, पर कहने में संकोच है, आप अंतर्यामी हो, पूरा करें

एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं ॥149:3॥
तुम्हहि देत अति सुगम गोसाईं। अगम लाग मोहि निज कृपनाईं ॥149:4॥

एक लालसा बड़ि उर माहीं = पर मन में एक इच्छा है, *सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं* = यह सरल है या कठिन हमें नहीं पता, *तुम्हहि देत अति सुगम गोसाईं* = पर आपके लिये तो देने में एकदम सरल है, *अगम लाग मोहि निज कृपनाईं* = हमें अपनी दुर्बलता के कारण यह बहुत कठिन लगता है।

जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई। बहु संपति मागत सकुचाई ॥149:5॥
तासु प्रभाउ जान नहिं सोई। तथा हृदयँ मम संसय होई ॥149:6॥

जथा दरिद्र = जैसे दरिद्र व्यक्ति, *बिबुधतरु पाई* = कल्पवृक्ष को पा जाये, *बहु संपति मागत सकुचाई* = पर उसे ज्यादा संपत्ति मांगने में संकोच लगे, *तासु प्रभाउ जान नहिं सोई* = क्योंकि वह उसके प्रभाव को नहीं जानता है, *तथा हृदयँ मम संसय होई* = उसी प्रकार का संदेह मेरे मन में भी हो रहा है।

सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी ॥149:7॥

सो तुम्ह जानहु अंतरजामी = आप तो सबके मन की बात जानने वाले हैं, *पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी* = मेरी मनोकामना को पूरी करें।

मनु कहते हैं कि हमारे मन में एक इच्छा है, पर हमें पता नहीं कि इसका पूरा होना सरल है या कठिन है। जब हम आपकी तरफ देखते हैं, तो आप सर्वसमर्थ हो, महादानी हो, आप कुछ भी दे सकते हैं, तब लगता है, इसे पूरा करना आपके लिये सुगम है। पर जब हम अपनी तरफ देखते हैं, तो हम दुर्बल हैं, साहस की कमी है, हमारी आपसे माँगने की हिम्मत ही नहीं हो रही है, तब लगता है इसका पूरा होना अगम है। जैसे दरिद्र व्यक्ति कल्पतरु के सामने जाये, तो उसकी ज्यादा माँगने की हिम्मत नहीं होती, क्योंकि कल्पतरु के सब कुछ दे सकने के प्रभाव को वह समझता नहीं है, जानता नहीं है। वैसा ही संदेह

हमें है, इसलिये हम माँग नहीं पा रहे हैं। पर आप तो सबके मन की बात जानने वाले अन्तर्यामी हैं, हमारे मन की कामना को देखकर हे प्रभु! उसे पूरा करें।

राम जी कहते हैं संकोच छोड़ो, मुझसे वर माँगो

सकुच बिहाइ मागु नृप मोही। मोरें नहिं अदेय कछु तोही ॥149:8॥

सकुच बिहाइ मागु नृप मोही = हे राजन! संकोच छोड़कर मुझसे तुम माँगो, *मोरें नहिं अदेय कछु तोही* = मेरे लिये ऐसा कुछ नहीं है, जो मैं तुम्हें न दे सकूँ।

हमारे मन में जो कुछ है वह भगवान जानते हैं, पर एक नियम है कि भगवान से स्पष्ट, साफ-साफ कहना पड़ता है, कि हे प्रभु हमारी यह इच्छा है, आप पूरा करें। इसलिये राम जी कहते हैं कि हे राजन् तुम संकोच का त्याग करो, और मुख से, मुझसे यह समझकर माँगो कि मेरे लिये कुछ भी देना असंभव नहीं है।

मनु ने वरदान माँगा–आपके समान हमारा पुत्र हो

दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ ॥दोहा 149॥

दानि सिरोमनि = आप दानशिरोमणि हैं, *कृपानिधि* = कृपानिधान हैं, *नाथ कहउँ सतिभाउ* = हे नाथ! सच्चे भाव से कहता हूँ, *चाहउँ तुम्हहि समान सुत* = मैं आप के समान पुत्र चाहता हूँ, *प्रभु सन कवन दुराउ* = हे प्रभु! आपसे से क्या छुपाना?

मनु अपने मुँह से भगवान के सामने कहते हैं, हे कृपानिधान! आप तो दानियों के शिरोमणि हैं, हे नाथ! सच्चे भाव से कहते हैं कि 'हम आपके समान पुत्र चाहते हैं' आप से क्या छुपाना? जैसे आप हैं, वैसा ही हमारा पुत्र हो।

मेरे समान अन्य नहीं, मैं स्वयं ही पुत्र बनकर आऊँगा

दोखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले ॥150:1॥
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई ॥150:2॥

देखि प्रीति = राम जी ने मनु का प्रेम देखा, *सुनि बचन अमोले* = उनके अनमोल वचन सुने, *एवमस्तु करुनानिधि बोले* = करुणा के निधान राम जी ने कहा ऐसा ही होगा, *आपु सरिस* = अपने समान, *खोजौं कहँ जाई* = दूसरा कहाँ जाकर खोजूँ, *नृप तव तनय होब मैं आई* = हे राजन् मैं ही आकर तुम्हारा पुत्र बनूँगा।

करुणा निधान राम ने राजा मनु के प्रेम को देखा, उनके अच्छे वचनों को सुना, फिर कहा ऐसा ही होगा। भगवान कहते हैं कि हम अपने समान दूसरा कहाँ खोजें? हमारे समान एक हम ही हैं, दूसरा है ही नहीं। इसलिये तुम्हें स्पष्ट बता देते हैं कि हम ही तुम्हारे पुत्र बनकर आयेंगे।

संस्कार के अनुसार ही व्यक्ति की कामना होती है

मनु ने सारा जीवन प्रजा उत्पन्न की, प्रजा का विस्तार व पालन किया तो उनके संस्कार भी पुत्र प्राप्ति की कामना व राजा होने के बन गये। भगवान से वरदान माँगते समय पुत्र की ही कामना हुई, उनके कपिल जैसे ज्ञानी वंशज हुए पर भगवान जैसा कोई नहीं हुआ, इसलिये कहा कि आप जैसा पुत्र हो। राजा के संस्कार थे, इसलिये आगे जाकर राजा दशरथ बने।

शतरूपा से भी कहते हैं मनचाहा वरदान माँगो

सतरूपहि बिलोकि कर जोरें। देबि मागु बरु जो रुचि तोरें ॥150:3॥

सतरूपहि बिलोकि कर जोरें = अब राम ने शतरूपा की तरफ देखा जो हाथ जोड़े खड़ी थीं, *देबि मागु बरु* = कहा कि देवी वर माँगो, *जो रुचि तोरें* = जो तुम्हारी इच्छा हो।

जब मनु ने वरदान माँग लिया तब भगवान ने शतरूपा की तरफ देखा, वह दोनों हाथ जोड़े खड़ी थीं। भगवान को लगा कि मनु को तो वरदान दे दिया, इसे यह न लगे कि हमसे पूछा तक नहीं कि हम भी यही चाहते हैं। भगवान ने कहा तुम्हारे मन में जो इच्छा हो, तुम भी वह वरदान माँग लो।

आप हमारे पुत्र बनें, यह वरदान हमें भी प्रिय

जो बरु नाथ चतुर नृप मागा। सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा ॥150:4॥

जो बरु नाथ = हे नाथ! जो वर, *चतुर नृप मागा* = चतुर राजा ने माँगा है, *सोइ कृपाल मोहि* = हे कृपालु! वही मुझे, *अति प्रिय लागा* = बहुत अच्छा लगा है।

शतरूपा कहती हैं, हे नाथ! राजा ने बहुत चतुराई से ऐसा वर माँगा है, जो हम दोनों के लिये हो। यदि आप राजा के पुत्र बनोगे तो क्या हमारे पुत्र नहीं बनोगे? आप हमारे लिये पुत्र बनकर आयेंगे, यह वरदान हमें बहुत प्रिय लगा।

आप अंतर्यामी हैं, फिर भी आपके कहने से हम दूसरा वर माँगते हैं

प्रभु परंतु सुठि होत ढिठाई। जदपि भगत हित तुम्हहि सोहाई ॥150:5॥
तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल उर अंतरजामी ॥150:6॥
अस समुझत मन संसय होई। कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई ॥150:7॥

प्रभु परंतु सुठि होत ढिठाई = हे प्रभु! यह हमारी बहुत धृष्टता है, *जदपि भगत* = फिर भी हम आपके भक्त हैं, *हित तुम्हहि सोहाई* = हित करना आपको अच्छा लगता है, *तुम्ह ब्रह्मादि जनक* = आप ब्रह्मा इत्यादि देवताओं के पिता हैं, *जग स्वामी* = समस्त ब्रह्मांड के स्वामी हैं, *ब्रह्म* = आप ब्रह्म हो, *सकल उर अंतरजामी* = सबके हृदय की बात जानने वाले हो, *अस समुझत मन संसय होई* = ऐसा समझकर मन में शंका होती है, *कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई* = फिर भी आपने जो कहा है वही सत्य है।

शतरूपा कहती हैं, हे प्रभु! यह हमारी बहुत धृष्टता है कि हम आपसे इस प्रकार से माँगें, फिर भी हम हैं तो आपके भक्त ही, और भक्त का हित करना आपको अच्छा लगता है। आप तो त्रिदेवों के भी पिता हैं, इनके बनाये पूरे ब्रह्मांड के स्वामी हैं, आप ब्रह्म हैं, आप सबके मन की बात जानने वाले हैं। ऐसा जानते हुए कि आप अंतर्यामी हैं, फिर भी आप कहते हैं वर माँगो, तो मन में संशय होता है। लेकिन आप जो कहते हैं वह प्रमाणिक सत्य होता है, इसलिये आपके कहने से हम वरदान माँगते हैं। रानी शतरूपा भी बहुत तरीके से, विनम्रता से प्रभु राम से बोलती हैं।

शतरूपा सुंदर शब्दावली में भक्ति का वरदान माँगती हैं

ते निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं ॥150:8॥

ते निज भगत नाथ तव अहहीं = हे नाथ! जो आपके भक्त हैं, *जो सुख पावहिं* = उन्हें जो सुख प्राप्त होता है, *जो गति लहहीं* = उन्हें जो गति प्राप्त होती है।

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु ।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु ॥दोहा 150॥

सोइ सुख = वही सुख, *सोइ गति* = वही गति, *सोइ भगति* = वही भक्ति, *सोइ निज चरन सनेहु* = वही आपके चरणों का स्नेह, *सोइ बिबेक* = वही ज्ञान, *सोइ रहनि* = उसी प्रकार का जीवन, *प्रभु हमहि कृपा करि देहु* = हे प्रभु! कृपा करके हमें प्रदान करें।

शतरूपा कहती हैं, हे प्रभु हमें यह वरदान दें कि–
1. आपके भक्त को जो सुख प्राप्त है, वही हमें भी प्राप्त हो।
2. भक्त को जो गति मिलती है, वही हमें भी मिले।
3. भक्त को जो भक्ति मिलती है, वही हमें भी मिले।
4. भक्त के मन में आपके चरणों के प्रति जो प्रेम होता है, वही हमें मिले।
5. भक्त के मन में जैसा ज्ञान होता है, वैसा हमें भी प्राप्त हो।
6. भक्त का जैसा जीवन होता है वैसा ही हम जियें।

प्रभु राम शतरूपा को भक्ति व ज्ञान का वरदान दे देते हैं

सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बर रचना। कृपासिंधु बोले मृदु बचना ॥151:1॥
जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं। मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं ॥151:2॥
मातु बिबेक अलौकिक तोरें। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें ॥151:3॥

सुनि मृदु गूढ़ = विनम्रता से गंभीर बातें सुनकर, *रुचिर बर रचना* = जिसकी शब्दावली भी बहुत सुंदर थी, *कृपासिंधु बोले मृदु बचना* = कृपा के सागर राम मधुर वचन में कहते हैं, *जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं* = तुम्हारे मन में जो कुछ इच्छा है, *मैं सो दीन्ह सब* = वह सब मैं तुम्हें देता हूँ, *संसय नाहीं* = इसमें संदेह नहीं है, *मातु बिबेक अलौकिक तोरें* = हे माता तुम्हारा अलौकिक ज्ञान, *कबहुँ न मिटिहि* = कभी नष्ट नहीं होगा, *अनुग्रह मोरें* = मेरी कृपा से।

शतरूपा के विनम्रता से भरपूर, सुंदर वाक्य रचना को प्रभु राम ने सुना, उसके पीछे छिपी गहरी बात को समझकर, कृपा के सागर राम मधुर वाणी में वरदान देते हुए कहते हैं, तुम जिस प्रकार की भक्ति चाहती हो वह सब हम तुम्हें देते हैं। हमारे अनुग्रह से तुम्हारा अलौकिक विवेक भी सदैव बना रहेगा। सत्य क्या है, असत्य क्या है, इस बात के ज्ञान को विवेक कहते हैं।

मनु एक और वरदान माँगते हैं–पुत्र प्रेम व भक्ति दोनों बनी रहे

बंदि चरन मनु कहेउ बहोरी। अवर एक बिनती प्रभु मोरी ॥151:4॥
सुत बिषइक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ ॥151:5॥

बंदि चरन= भगवान के चरणों को पकड़कर, *मनु कहेउ बहोरी*= मनु फिर से कहते हैं, *अवर एक बिनती प्रभु मोरी*= हे प्रभु! मेरी एक विनती और है, *सुत बिषइक तव पद रति होऊ*= आपके चरणों में वात्सल्य प्रेम बना रहे, *मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ*= जिससे मुझे कोई बहुत बड़ा मूर्ख न कहे।

मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना ॥151:6॥
अस बरु मागि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ ॥151:7॥

मनि बिनु फनि= जैसे मणि के बिना सर्प नहीं रह सकता, *जिमि जल बिनु मीना*= जैसे जल के बिना मछली नहीं रहती, *मम जीवन तिमि*= इसी प्रकार मेरा जीवन, *तुम्हहि अधीना*= आपके अधीन रहे; आपके बिना हम जीवित न रहें, *अस बरु मागि*= ऐसा वरदान माँगकर, *चरन गहि रहेऊ*= मनु भगवान के चरण पकड़े रह गये, *एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ*= तब दयानिधान राम ने कहा ऐसा ही हो।

मनु को अपनी गलती समझ में आयी कि हमने भक्ति तो माँगी नहीं, इसलिये राम जी से विशेष आग्रह करते हुए, उनके चरण पकड़कर एक और वरदान माँगते हैं। भक्ति के अनेक रूपों में हमें वात्सल्य भक्ति प्राप्त हो। हमारे मन में आपके चरणों के प्रति पुत्र प्रेम की भावना हो। जब आप पुत्र बनकर आओ, हम आपको भगवान जानते हुए, चरण पकड़ें तो दुनिया कहेगी बहुत मूर्ख व्यक्ति है, जो पुत्र के पाँव छूता है। इसलिये ऐसा हो कि पुत्र प्रेम व भक्ति दोनों बनी रहे। कहते हैं जिस प्रकार से मणि के बिना सर्प या जल के बिना मछली

जीवित नहीं रह सकती, इसी प्रकार आपके बिना हम जीवित न रहें। आपका वियोग होते ही हमारे प्राण निकल जायें। भगवान ने यह वरदान भी दे दिया।

अयोध्या में पुनर्जन्म होगा, तब तक इन्द्रलोक में रहो

अब तुम्ह मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी ॥151:8॥

अब तुम्ह मम अनुसासन मानी = अब तुम मेरा आदेश मानकर, *बसहु जाइ सुरपति रजधानी* = इन्द्र की राजधानी में जाकर रहो।

तहँ करि भोग बिसाल तात गएँ कछु काल पुनि ।
होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत ॥सोरठा 151॥

तहँ करि भोग बिसाल तात = हे तात! वहाँ के भोग भोगकर, *गएँ कछु काल पुनि* = कुछ समय व्यतीत हो जाने पर, *होइहहु अवध भुआल* = तुम अयोध्या के राजा होगे, *तब मैं होब तुम्हार सुत* = तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा।

मनु-शतरूपा को वरदान देने के बाद भगवान कहते हैं, अब तुम मेरे आदेश का पालन करो, यहाँ शरीर त्याग करने के बाद इन्द्रलोक में वास करो। वहाँ खूब भौतिक सुख प्राप्त होंगे, वहाँ रहते हुए कुछ समय व्यतीत होगा। उसके बाद तुम अयोध्या के राजा होगे, तब मैं तुम्हारे यहाँ पुत्र बनकर आऊँगा।

अपने अंश भरत, लक्ष्मण व शत्रुघ्न सहित तुम्हारे घर जन्म लूँगा

इच्छामय नरबेष सँवारें। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें ॥152:1॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता ॥152:2॥
जे सुनि सादर नर बड़भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी ॥152:3॥

इच्छामय नरबेष सँवारें = अपनी इच्छा से मनुष्य शरीर धारण करके, *होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें* = तुम्हारे घर में प्रकट होंगे, *अंसन्ह सहित देह धरि ताता* = मैं अपने अंशों सहित शरीर धारण करूँगा, *करिहउँ चरित भगत सुखदाता* = भक्तों को सुख पहुँचाने वाले कार्य करूँगा, *जे सुनि सादर* = जिसे आदर से सुनकर, *नर बड़भागी* = भाग्यशाली मनुष्य, *भव तरिहहिं* = संसार पार करेंगे, *ममता मद त्यागी* = मेरेपन का भाव व अहँकार उनका छूट जायेगा।

भगवान कहते हैं, हम अपनी इच्छा से मनुष्य शरीर धारण करके तुम्हारे घर में प्रकट होंगे। हे तात! मेरे ही अंश भरत, लक्ष्मण व शत्रुघ्न भी अवतार लेंगे। उस समय हम ऐसे कार्य करेंगे, जिससे भक्तों को सुख पहुँचे। लीला समाप्त होने के बाद भी जो लोग इस लीला की कथा को आदरपूर्वक सुनेंगे, उनका मेरेपन का भाव व अहंकार दूर होगा, वे आसानी से इस संसार सागर को पार कर जायेंगे।

मेरी माया शक्ति सीता भी अवतार लेंगी

आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ॥152:4॥

आदिसक्ति = मेरी आदिशक्ति, *जेहिं जग उपजाया* = जिसने इस जगत् की रचना की है, *सोउ अवतरिहि* = वे भी अवतार लेंगी, *मोरि यह माया* = ये मेरी माया हैं।

प्रभु राम कहते हैं कि मेरी आदि शक्ति, जिसने इस जगत् की रचना की है, जो हमारे साथ ही खड़ी हैं, ये मेरी माया सीता भी अवतार लेंगी। पद्म पुराण की कथा के अनुसार हरिदेव व कनकलता नाम के दंपत्ति को भगवान ने वरदान दिया था कि तुम्हारे यहाँ मेरी शक्ति, पुत्री बनकर अवतार लेंगी, और हम दामाद बनेंगे। अगले जन्म में हरिदेव जनक हुए, कनकलता सुनयना हुईं और सीता जी उनकी पुत्री हुईं।

मेरा वरदान सत्य होगा, कहकर प्रभु अंर्तधान हो गये

पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। सत्य सत्य पन सत्य हमारा ॥152:5॥
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना। अंतरधान भए भगवाना ॥152:6॥

पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा = तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा, *सत्य सत्य पन सत्य हमारा* = हमारा प्रण सत्य है-सत्य है-सत्य है, *पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना* = बार-बार इस प्रकार समझाकर, *अंतरधान भए भगवाना* = भगवान दिखाई देना बंद हो गये।

भगवान ने तीन बार सत्य कह कर अपनी बात को प्रमाणिक बताया, जिससे मनु को कोई संदेह न रह जाये। बार-बार समझाकर कहा कि मैं पुत्र बनकर

जन्म लूँगा, तुम्हें वात्सल्य प्रेम व भक्ति मिलेगी। फिर प्रभु अंतर्धान हो गये। उनका सगुण रूप दिखाई देना बंद हो गया, वे निराकार हो गये।

बिना कष्ट शरीर त्याग कर अमरावती पहुँच गये

दंपति उर धरि भगत कृपाला। तेहिं आश्रम निवसे कछु काला ॥152:7॥
समय पाइ तनु तजि अनयासा। जाइ कीन्ह अमरावति बासा ॥152:8॥

दंपति उर धरि = राजा-रानी ने मन में स्मरण करते हुए, *भगत कृपाला* = भक्तवत्सल भगवान को, *तेहिं आश्रम निवसे कछु काला* = उस आश्रम में कुछ समय तक रहे, *समय पाइ* = समय पूरा होने पर, *तनु तजि अनयासा* = बिना कष्ट के शरीर त्याग दिया, *जाइ कीन्ह अमरावति बासा* = जीव रूप में जाकर स्वर्गलोक में रहने लगे।

भगवान का स्मरण करते हुए मनु-शतरूपा कुछ समय तक उस आश्रम में ही निवास करते रहे। जब उनके शरीर का समय पूरा हो गया, तब बिना किसी कष्ट के शरीर त्याग दिया। उसके बाद जीव रूप में स्वर्गलोक में जाकर रहने लगे।

जीव के पुर्नजन्म व भगवान के जन्म के फर्क को समझें

शास्त्रों के अनुसार जीव शरीर में प्रवेश करता है, समय पूरा होने पर शरीर छोड़ देता है। कभी-कभी तो जीव को एक शरीर छोड़ने पर तुरंत ही दूसरा शरीर मिल जाता है, लेकिन यदि दूसरा उपयुक्त शरीर उपलब्ध नहीं है, तब बीच में कुछ विलंब हो जाता है। उस समय जीव कर्म के अनुसार स्वर्ग लोक या नर्क लोक में रहते हैं। समय आने पर कर्म के अनुसार मनुष्य का अथवा दूसरा कोई शरीर प्राप्त हो जाता है। यह क्रम चलता रहता है, इसे जीव का बंधन भी कहते हैं। पर भगवान कर्म के कारण नहीं बल्कि स्वेच्छा से मनुष्य शरीर धारण करते हैं। भगवान कहते हैं जिसे यह बात समझ में आ जाये वह भी कर्म-बंधन से मुक्त हो जाता है।

मनु-शतरूपा की अत्यंत पवित्र ऐतिहासिक कथा पूरी

यह इतिहास पुनीत अति उमहि कही बृषकेतु ।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि राम जनम कर हेतु ॥दोहा 152॥

यह इतिहास पुनीत अति = यह परम पवित्र इतिहास, *उमहि कही बृषकेतु* = शंकर जी ने पार्वती को सुनाया, *भरद्वाज सुनु* = हे भरद्वाज अब सुनो, *अपर पुनि राम जनम कर हेतु* = राम के जन्म के एक और कारण को।

याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज जी से कहते हैं, यह परम पवित्र इतिहास शंकर जी ने पार्वती जी को सुनाया था। हे भरद्वाज! प्रभु राम के अवतार लेने का एक और कारण बना, वह भी हम तुमको सुनाते हैं।

7. राजा प्रतापभानु की कथा

(दोहा 153 से 175)

राजा प्रतापभानु प्रजापालक है, विश्व विजय के बाद भी संयम से रहता है, गुरु व विप्र का सेवक है, दानी है, वेद-पुराण सुनता है, सभी यज्ञों को निष्काम भाव से भगवान को अर्पित करके करता है। ये सब कार्य, मंत्री धर्मरुचि के कहे अनुसार करता है। मंत्री बुद्धिमान है और *'हरि पद प्रीती'* है। तुलसीदास जी राजा के लिये यह शब्द नहीं कहते। यह बात समझने की है। भगवान के चरणों में प्रेम न होने से राजा, शरीर, पद, यश, कीर्ति को ही सबकुछ मानने लगता है। ऐसे व्यक्ति के लिये मूढ़ शब्द का प्रयोग किया है। कपटी मुनि से मुलाकात होने पर लालच में उसे ही गुरु बनाकर सदैव जीवित रहने, सदैव युवा रहने, सदा राज्य बना रहने का असंभव वरदान माँग लेता है।

अपने स्वार्थ के लिये हम लोग भी कपटी लोगों को अपना मार्गदर्शक बना लेते हैं। योजना के अनुसार विप्रों को वश में करने के लिये राजा उन्हें भोजन के लिये आमंत्रित करता है, कपटी मुनि मायावी कालकेतु से भोजन में माँस मिलवा देता है। विप्र लोग नाराज होकर राजा को निशाचर होने का श्राप दे देते हैं। निशाचार मायने अपने स्वार्थ के लिये दूसरों का धर्म नष्ट करो, उन्हें कष्ट पहुँचाओ, अनुचित कार्य करो। यहाँ पर राजा निर्दोष था पर श्राप क्यों मिला? तो कहते हैं भावी वश। गलत कामनायें, कपटी का साथ, बुद्धिमान मंत्री से सलाह नहीं लेना, दूसरों को वश में करने की अनुचित योजना बनाना, इन सभी कर्मों के कारण उसका अगला जन्म निशाचर होने का निश्चित हो गया। यह कथा समझने के लिये शब्दों के अर्थ व उसके पीछे के भाव को समझें। बार-बार इसका पाठ, जीवन के प्रति हमारे सोचने के तरीके को ही बदलकर, सुख, शांति व आनंद की अनुभूति करा देगा।

कैकेय देश के राजा सत्यकेतु थे, जो धर्मात्मा व प्रतापी थे

सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति संभु बखानी ॥153:1॥
बिस्व बिदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू ॥153:2॥
धरम धुरंधर नीति निधाना। तेज प्रताप सील बलवाना ॥153:3॥

सुनु मुनि कथा = हे भरद्वाज मुनि वह कथा सुनो, *पुनीत पुरानी* = जो प्राचीन व पवित्र है, *जो गिरिजा प्रति संभु बखानी* = जो शंकर जी ने पार्वती जी को सुनायी थी, *बिस्व बिदित* = संसार में प्रसिद्ध, *एक कैकय देसू* = एक कैकेय देश था, *सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू* = वहाँ सत्यकेतु नाम के राजा राज्य करते थे, *धरम धुरंधर* = धर्म के अनुसार जीवन जीने वाले, *नीति निधाना* = राजनीति को जानने वाले, *तेज प्रताप सील बलवाना* = वे बहुत तेजस्वी, प्रतापी, शीलनिधान व बलवान् थे।

याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज जी से कहते हैं, हे मुनि! एक बहुत पुरानी व पवित्र कथा है, जिसे शिव जी ने पार्वती जी को सुनाया था, वही हम तुम्हें सुनाते हैं। संसार में प्रसिद्ध एक कैकेय देश था। सत्यकेतु नाम के राजा वहाँ राज्य करते थे। वे धर्म के अनुसार जीवन जीने वाले, राजनीति को जानने वाले, बहुत तेजस्वी, शक्तिशाली व शीलनिधान थे। इस प्रकार राजा में क्या गुण होने चाहिये सब बता दिये। ऐसा कहा जाता है कि भारत के पश्चिम में ब्लैक-सी (काला सागर) के पास काकेशस पर्वत है, वह प्राचीनकाल में कैकेय देश था।

प्रतापभानु व अरिमर्दन दो पुत्र थे, दोनों गुणी, योद्धा, आपस में प्रेमी

तेहि कें भए जुगल सुत बीरा। सब गुन धाम महा रनधीरा ॥153:4॥
राज धनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही ॥153:5॥

तेहि कें भए जुगल सुत बीरा = उसके दो वीर पुत्र थे, *सब गुन धाम महा रनधीरा* = जो कि बहुत गुणवान्; वीर व युद्ध में प्रवीण थे, *राज धनी जो जेठ सुत आही* = राज्य का उत्तराधिकारी बड़ा पुत्र था, *नाम प्रतापभानु अस ताही* = उनका नाम प्रतापभानु था।

अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुजबल अतुल अचल संग्रामा ॥153:6॥
भाइहि भाइहि परम समीती। सकल दोष छल बरजित प्रीती ॥153:7॥

अपर सुतहि अरिमर्दन नामा = दूसरे पुत्र का नाम अरिमर्दन था, *भुजबल अतुल* = जिसकी भुजाओं में अपार बल था, *अचल संग्रामा* = वह युद्ध से भागता नहीं था, *भाइहि भाइहि परम समीती* = दोनों भाइयों में बहुत प्रेम था, *सकल दोष छल बरजित प्रीती* = सब प्रकार के दोषों व छलों से रहित सच्चा प्रेम था।

राजा सत्यकेतु के दो पुत्र थे, दोनों प्रतापी, वीर व गुणवान् थे। बड़े पुत्र का नाम प्रतापभानु व छोटे का नाम अरिमर्दन था। बड़े पुत्र को राज्य प्राप्त होना था, उसे राज्य प्राप्त हुआ। छोटे की भुजाओं में अपार बल था, युद्ध में अटल रहता था, उसे सेनापति बनाया गया। दोनों भाइयों में बहुत प्रेम था, दोषरहित व छलरहित दोनों एक दूसरे से प्रेम करते थे।

प्रतापभानु को राजा बनाकर, सत्यकेतु वन चले गये

जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा। हरि हित आपु गवन बन कीन्हा ॥153:8॥

जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा = राजा बड़े पुत्र को राज्य देकर, *हरि हित आपु गवन बन कीन्हा* = भगवान के भजन के लिये स्वयं वन चले गये।

जब प्रतापरबि भयउ नृप फिरी दोहाई देस ।
प्रजा पाल अति बेदबिधि कतहुँ नहीं अघ लेस ॥दोहा 153॥

जब प्रतापरबि भयउ नृप = जब प्रतापभानु राजा हुआ, *फिरी दोहाई देस* = नगर में सबको सूचना दे दी गई, *प्रजा पाल अति बेदबिधि* = वह वेद में बतायी विधि से राज करने लगा, *कतहुँ नहीं अघ लेस* = राज्य में नाम मात्र का भी पापकर्म नहीं बचा।

जब दोनों पुत्र बड़े हो गये, तब राजा सत्यकेतु ने ज्येष्ठ पुत्र प्रतापभानु को राजा बना दिया। सारे जीवन राजा बने रहना धर्म विरुद्ध है। भगवान की आराधना तपस्या करने के लिये स्वयं वन चले गये। प्रतापभानु ने राजा बनने के बाद सारे नगर में सूचना दे दी कि हम राजा हैं, सारी प्रजा नीति व धर्म का जीवन जियेगी। दुराचारी कोई होगा तो दण्ड पायेगा। राजा बहुत शक्तिशाली है, यह समझकर, दुष्ट लोग भी चुप हो गये। इस प्रकार राजा वैदिक विधि से ही प्रजा का पालन करता था। उसके राज्य में रंचमात्र भी पाप कोई नहीं करता था।

मंत्री का नाम धर्मरुचि, जो बहुत बुद्धिमान था

नृप हितकारक सचिव सयाना। नाम धरमरुचि सुक्र समाना ॥154:1॥
सचिव सयान बंधु बलबीरा। आपु प्रतापपुंज रनधीरा ॥154:2॥

नृप हितकारक = राजा का हित करने वाला, *सचिव सयाना* = बुद्धिमान मंत्री था, *नाम धरमरुचि* = उसका नाम धर्मरुचि था, *सुक्र समाना* = वह शुक्राचार्य के समान था, *सचिव सयान* = मंत्री बुद्धिमान, *बंधु बलबीरा* = भाई शक्तिशाली, *आपु प्रतापपुंज रनधीरा* = राजा प्रतापी व रणधीर।

राजा प्रतापभानु के मंत्री का नाम धर्मरुचि था जो बहुत बुद्धिमान, शुक्राचार्य के समान राजनीति की व्यवस्था जानने वाला व बहुत योग्य था। मंत्री बुद्धिमान, भाई शक्तिशाली सेनापति, राजा स्वयं प्रतापी व युद्ध में प्रवीण। इस प्रकार तीनों का शक्तिशाली जोड़ बन गया।

चतुरंगी सेना सजाकर राजा विश्वविजय हेतु चल दिया

सेन संग चतुरंग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा ॥154:3॥
सेन बिलोकि राउ हरषाना। अरु बाजे गहगहे निसाना ॥154:4॥
बिजय हेतु कटकई बनाई। सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई ॥154:5॥

सेन संग चतुरंग अपारा = उसके पास बहुत बड़ी चतुरंगिणी सेना थी, *अमित सुभट सब समर जुझारा* = साथ में अनगिनत योद्धा– सब युद्ध में कुशल थे, *सेन बिलोकि राउ हरषाना* = सेना देखकर राजा को बहुत प्रसन्नता हुई, *अरु बाजे गहगहे निसाना* = घमाघम नगाड़े बजने लगे, *बिजय हेतु* = दूसरे राज्यों को जीतने के लिये, *कटकई बनाई* = सेना को व्यवस्थित करके, *सुदिन साधि* = शुभ मुहूर्त निकलवाकर, *नृप चलेउ बजाई* = राजा युद्ध का डंका बजाकर चल दिया।

राजा के पास रथ, हाथी, घोड़े, और पैदल मिलाकर विशाल चतुरंगिणी सेना थी। और सेना ऐसी पराक्रमी थी कि योद्धा युद्ध में लड़ते-लड़ते मर भले ही जायें लेकिन युद्ध क्षेत्र छोड़कर भागने वाले नहीं थे। अपनी पराक्रमी सेना देख, राजा बहुत प्रसन्न हुआ, उसे लगा सब तरफ से व्यवस्था ठीक है। उसके

मन में दूसरे राज्यों पर आक्रमण करके, सबको अपने अधीन कर चक्रवर्ती सम्राट् बनने का विचार आया। विजयी मुहूर्त का दिन देखकर, राजा ने युद्ध का डंका बजवा दिया, और अपनी सेना लेकर अन्य राज्यों पर विजय पाने चल दिया।

विश्वविजय कर प्रतापभानु चक्रवर्ती सम्राट् बन गया

जहँ तहँ परीं अनेक लराईं। जीते सकल भूप बरिआईं ॥154:6॥
सप्त दीप भुजबल बस कीन्हे। लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हे ॥154:7॥
सकल अवनि मंडल तेहि काला। एक प्रतापभानु महिपाला ॥154:8॥

जहँ तहँ परीं अनेक लराईं = कहीं-कहीं बहुत से युद्ध हुए, *जीते सकल भूप बरिआईं* = उसने बलपूर्वक सब राजाओं को जीत लिया, *सप्त दीप भुजबल बस कीन्हे* = सातो द्वीपों के राजाओं को अपने अधीन कर लिया, *लै लै दंड* = कर ले लेकर, *छाड़ि नृप दीन्हे* = राज्यों के राजाओं को छोड़ दिया, *सकल अवनि मंडल तेहि काला* = उस समय पूरे पृथ्वी मंडल का, *एक प्रतापभानु महिपाला* = प्रतापभानु एकमात्र राजा था।

प्रतापभानु राजा की इतनी विशाल सेना देखकर अधिकतर राजा तो इसकी शरण में आकर अधीनता स्वीकार कर लेते थे। परंतु कहीं-कहीं के राजा कहते थे हम बिना युद्ध किये इनके अधीन नहीं होंगे। वहाँ फिर लड़ाई होती थी। इसने अपनी शक्ति से उन राजाओं को भी जीत लिया। तब उन राजाओं ने भी प्रतापभानु की अधीनता स्वीकार कर ली, वे जब भेंट लेकर आये तो इसने कहा कि तुम शासन व्यवस्था चलाते रहना और हमको इसी प्रकार हर वर्ष कर देते रहना। इस प्रकार पृथ्वी के सातों महाद्वीपों के राजाओं को जीत लिया, उन्हें अपने राज्य में मिलाया नहीं, केवल अधीन करके, कर लेने की व्यवस्था करके छोड़ दिया। विश्वविजय करके, प्रतापभानु पृथ्वी का चक्रवर्ती सम्राट् बन गया।

विश्वविजय के बाद भी प्रतापभानु संयम से रहते थे

स्वबस बिस्व करि बाहुबल निज पुर कीन्ह प्रबेसु ।
अरथ धरम कामादि सुख सेवइ समयँ नरेसु ॥दोहा 154॥

स्वबस बिस्व करि बाहुबल = भुजाओं के बल से सारे विश्व को अपने अधीन करके, *निज पुर कीन्ह प्रबेसु* = अपने नगर में वापस आया, *अरथ धरम कामादि* = अर्थ; धर्म व काम, *सुख सेवइ* = के सुख का सेवन, *समयँ नरेसु* = समय के अनुसार राजा करता था।

पूरे संसार को पराक्रम से अपने वश में करके राजा प्रतापभानु वापस कैकेय देश आ गये। अर्थ, धर्म और कामादि के सुखों को समयानुसार ही सेवन करते थे। इतनी बड़ी सफलता प्राप्त करने के बाद भी वह संयमित रहते हुए प्राप्त सुखों का भोग करते थे।

धर्ममय राज्य में खूब पैदावर, प्रजा सुखी व धर्मपरायण

भूप प्रतापभानु बल पाई। कामधेनु भै भूमि सुहाई ॥155:1॥
सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धरमसील सुंदर नर नारी ॥155:2॥

भूप प्रतापभानु बल पाई = राजा प्रतापभानु का बल पाकर, *कामधेनु भै भूमि सुहाई* = पृथ्वी सुंदर कामधेनु के समान हो गई, *सब दुख बरजित प्रजा* = प्रजा के सब दु:ख दूर हो गये, *सुखारी* = प्रजा सुखी हो गयी, *धरमसील सुंदर नर नारी* = राज्य के स्त्री-पुरुष धर्म के अनुसार जीवन जीते व सुंदर थे।

जब सारी पृथ्वी पर प्रतापभानु का राज्य हो गया, तो राजा का बल पाकर पृथ्वी कामधेनु के समान मनचाहा फल देने वाली हो गयी। आशय है राज्य में खूब पैदावर होने लगी। प्रजा के भौतिक अभाव से उत्पन्न सारे दु:ख दूर हो गये, और वह सुखी हो गई। राजा के चरित्र का प्रभाव प्रजा पर भी हुआ। राज्य के स्त्री-पुरुष अपने कर्त्तव्यों का पालन करते, धर्ममय व नैतिकता के साथ जीवन जीने लगे। धर्ममय राज्य व देश में आर्थिक समृद्धि होती है, क्योंकि लोगों का ध्यान लड़ाई-झगड़े की बजाय उत्पादन की तरफ ज्यादा रहता है।

मंत्री का हरि चरणों में प्रेम, उसकी सलाह से राजा धार्मिक है

सचिव धरमरुचि हरि पद प्रीती। नृप हित हेतु सिखव नित नीती ॥155:3॥

सचिव धरमरुचि हरि पद प्रीती = सचिव धर्मरुचि को भगवान के चरणों में प्रेम था, *नृप हित हेतु* = वह राजा के हित के लिये, *सिखव नित नीती* = सैदव नीति सिखाता था।

इस कथा में यह बात बहुत ठीक से समझने की है कि मंत्री धर्मरुचि की सलाह पर ही राजा प्रतापभानु धर्म के मार्ग पर चल रहा है। राजा का धर्म पालन मंत्री के कहने से है। तुलसीदास जी मंत्री के लिये कहते हैं *'हरि पद प्रीती'* मायने उसका धर्मपालन के साथ-साथ भगवान के चरणों में भी प्रेम है। पर राजा व उसके भाई के लिये ये शब्द नहीं कहे हैं। इन दोनों का प्रेम तो धर्म में इसलिये है कि राज्य में खूब सुख-समृद्धि व शांति हो, यश-कीर्ति हो, पृथ्वी पर हमारा शासन हो। हम सदैव राजा बने रहें। भौतिक समृद्धि में धर्म सहायता करता है, पर उसके बाद भगवान के चरणों में प्रेम तो करना ही चाहिये। कथा को यहीं से ठीक से समझने का प्रयास करें। आगे देखेंगे कि जब राजा मंत्री से बिछड़ जाता है तो अपनी बुद्धि से काम लेता है और सदैव चक्रवर्ती सम्राट् बने रहने की उसकी इच्छा विनाश का कारण बन जाती है। प्रकृति के नियम के अनुसार समय आने पर हमें सब छोड़कर जाना है, नियम विरुद्ध कार्य करेंगे तो परिणाम गंभीर होंगे।

प्रजा की सुविधा के लिये अनेक कार्य किये, यज्ञ भी किया

गुर सुर संत पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सब कै सेवा ॥155:4॥
भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करइ सादर सुख माने ॥155:5॥
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना। सुनइ सास्त्र बर बेद पुराना ॥155:6॥

गुर सुर संत पितर महिदेवा = गुरु; देवता; सज्जन; पितृ और विप्र, *करइ सदा नृप सब कै सेवा* = इन सबकी राजा सदैव सेवा किया करता था, *भूप धरम जे बेद बखाने* = वेदों में राजा के जो धर्म बताये गये हैं, *सकल करइ सादर सुख माने* = उन सबका पालन आदर व प्रसन्नता से राजा करता था, *दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना* = प्रतिदिन अनेक प्रकार के दान देता था, *सुनइ सास्त्र बर बेद पुराना* = सुंदर शास्त्र, वेद व पुराण सुनता था।

नाना बापीं कूप तड़ागा। सुमन बाटिका सुंदर बागा ॥155:7॥
बिप्रभवन सुरभवन सुहाए। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए ॥155:8॥

नाना बापीं कूप तड़ागा = बहुत से बावलियाँ; कुएँ व तालाब, *सुमन बाटिका सुंदर बागा* = फूलों की वाटिका व सुंदर बगीचे बनवाये, *बिप्रभवन सुरभवन सुहाए* = विप्रों के घर व सुंदर मंदिर बनवा दिये, *सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए* = सब तीर्थों का जीर्णोद्धार करवा दिया।

जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग ।
बार सहस्त्र सहस्त्र नृप किए सहित अनुराग ॥दोहा 155॥

जहँ लगि कहे पुरान श्रुति = वेद व पुराण में जितने तरह के यज्ञ बताये गये हैं, *एक एक सब जाग* = राजा ने एक-एक करके उन सब यज्ञों को, *बार सहस्त्र सहस्त्र* = हजार-हजार बार, *नृप किए सहित अनुराग* = राजा ने प्रेम के साथ किया।

राजा वेदों में बताये धर्म के अनुसार कार्य करता है। प्रतिदिन अन्नदान, भूमिदान अन्य तरह-तरह के दान देता है। मंत्री ने कहा शास्त्र भी सुनना चाहिये तो वह भी सुनता है। प्रजा के लिये पानी की व्यवस्था के लिये बहुत से कुएँ, तालाब, बावलियाँ बनवा दीं। उसने खूब बगीचे व फूलों की वाटिकाएँ भी बनवा दीं। विप्रों के रहने के लिये घर बनवा दिये। देवताओं के मंदिर बनवा दिये। जहाँ तीर्थ थे उनका जीर्णोद्धार करवा दिया। जिन यज्ञों का वर्णन वेदों में हैं, उनको एक-एक हजार बार बहुत प्रेम से किया। वेदों में राजसूय यज्ञ इत्यादि का वर्णन है, वे सब किये।

मंत्री के कहने से निष्काम भाव से सब कार्य किये

हृदयँ न कछु फल अनुसंधाना। भूप बिबेकी परम सुजाना ॥156:1॥
करइ जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी ॥156:2॥

हृदयँ न कछु फल अनुसंधाना = राजा के मन में फल की कामना नहीं थी, *भूप बिबेकी परम सुजाना* = राजा बहुत बुद्धिमान व ज्ञानी था, *करइ जे धरम करम मन बानी* = मन; वाणी व कर्म से जो धर्म के कार्य करता था, *बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी* = ज्ञानी राजा वासुदेव भगवान को अर्पित करके करता था।

राजा ने मन से, वाणी से व कर्म से जो भी धर्म के कार्य किये वे सब वासुदेव को अर्पित करके किये। राजा ने सकाम भाव से नहीं किया। राजा ज्ञानवान् व

बहुत समझदार था, जैसा मंत्री कहता गया वैसा ही करता गया। राजा के मन में क्या है? यह आगे की कथा में खुलासा होता है।

विन्ध्याचल के वन में राजा शिकार खेलने जाते हैं

चढ़ि बर बाजि बार एक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा ॥156:3॥
बिंध्याचल गभीर बन गयऊ। मृग पुनीत बहु मारत भयऊ ॥156:4॥

चढ़ि बर बाजि = अच्छे घोड़े पर सवार होकर, *बार एक राजा* = एक बार राजा, *मृगया कर* = शिकार करने का, *सब साजि समाजा* = सब सामान तैयार करके, *बिंध्याचल गभीर बन गयऊ* = विन्ध्याचल के घने जंगल में गया, *मृग पुनीत बहु* = वहाँ पर बहुत से अच्छे पशुओं का, *मारत भयऊ* = शिकार किया।

एक बार राजा एक अच्छे घोड़े पर सवार होकर, शिकार के लिये अस्त्र-शस्त्र व सेवक लेकर, विंध्याचल के गहन वन में जाते हैं। वहाँ पर बहुत से पशु मिले, उन्हें राजा ने मारा।

वन में एक विशाल जंगली सूअर दिखा

फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू ॥156:5॥
बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं। मनहुँ क्रोध बस उगिलत नाहीं ॥156:6॥

फिरत बिपिन नृप = राजा ने वन में घूमते हुए, *दीख बराहू* = जंगली सूअर को देखा, *जनु बन दुरेउ* = मानों वन में छिपा हो, *ससिहि ग्रसि राहू* = चन्द्रमा को दाँतों में दबाकर राहु, *बड़ बिधु* = चन्द्रमा बड़ा होने से, *नहिं समात मुख माहीं* = जैसे राहु के मुख में समा नहीं रहा हो, *मनहुँ क्रोध बस उगिलत नाहीं* = मानों क्रोध के कारण वह उसे उगलता नहीं।

कोल कराल दसन छबि गाई। तनु बिसाल पीवर अधिकाई ॥156:7॥
घुरुघुरात हय आरौ पाएँ। चकित बिलोकत कान उठाएँ ॥156:8॥

कोल कराल दसन छबि गाई = यह तो सूअर के भयानक दाँतों की छबि कही गयी, *तनु बिसाल* = उसका शरीर भी विशाल था, *पीवर अधिकाई* = चर्बी खूब चढ़ी थी, *घुरुघुरात* = घुरघुराकर आवाज कर रहा था, *हय आरौ*

पाएँ = घोड़े की आहट पाकर, *चकित बिलोकत कान उठाएँ* = चौकन्ना होकर कान उठाकर देखने लगा।

राजा जब वन में और आगे बढ़े तब एक विशाल जंगली सूअर दिखाई दिया। उसके दाँतों की तुलना काव्यात्मक उपमा से करते हैं। जैसे चन्द्रमा को राहु ने मुँह में तो दबा लिया हो, लेकिन वह मुँह में समाता नहीं, तो कुछ मुँह के भीतर कुछ मुँह के बाहर है। क्रोधवश राहु चँद्रमा को दबाये है, न छोड़ रहा न निगल रहा है। उसी प्रकार सूअर के विशाल सफेद चमकते हुए दाँत लग रहे थे मानो चन्द्रमा का एक भाग राहु के मुँह के बाहर निकला हो। इसका शरीर बहुत बड़ा था, उस पर चर्बी भी खूब चढ़ी हुई थी। घोड़े की टापों की आवाज सुनकर वह घुरघुरा रहा था। फिर चौकन्ना होकर कान उठाकर इधर-उधर देखने लगा।

राजा ने सूअर का पीछा किया पर वह पहुँच के बाहर रहा

नील महीधर सिखर सम देखि बिसाल बराहु ।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप हाँकि न होइ निबाहु ॥दोहा 156॥

नील महीधर सिखर सम = नीले पर्वत के शिखर के समान, *देखि बिसाल बराहु* = उस विशाल सूअर को देखकर, *चपरि चलेउ हय* = घोड़े को चाबुक मारकर, *सुटुकि नृप* = राजा ने तेजी से, *हाँकि न होइ निबाहु* = घोड़े को दौड़ाया पर वह सूअर को नहीं पा सका।

आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ बराह मरुत गति भाजी ॥157:1॥
तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना ॥157:2॥
तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा ॥157:3॥

आवत देखि अधिक रव बाजी = घोड़े को तेजी से आवाज करते हुए आते देखकर, *चलेउ बराह मरुत गति भाजी* = सूअर पवन की गति से भाग चला, *तुरत कीन्ह नृप सर संधाना* = राजा ने तुरंत ही बाण को धनुष पर चढ़ाया, *महि मिलि गयउ बिलोकत बाना* = बाण को देखते ही वह जमीन में झुक गया, *तकि तकि तीर महीस चलावा* = राजा तक-तक कर तीर चलाता है, *करि छल सुअर सरीर बचावा* = सूअर छल करके शरीर को बचाता जाता है।

राजा ने देखा कि ऐसे भयंकर काले रंग का सूअर है, मानों नीलगिरि पर्वत का शिखर हो। राजा ने घोड़े को चाबुक मारकर तीव्रता से सूअर की तरफ दौड़ाया। जब सूअर ने बहुत आवाज के साथ घोड़े को अपनी तरफ आते देखा तो वह हवा की तरह तेज गति से गहन वन की ओर भागता चला गया। राजा ने धनुष संभाल कर जैसे ही सूअर पर बाण चलाया, वह नीचे जमीन की तरफ झुक गया और बाण उसके ऊपर से निकल गया। राजा ने बार-बार निशाना लगाकर तीर चलाये पर वह चालाकी से अपने को बचाता चला गया।

सूअर छल से राजा को सुनसान वन में ले गया, साथी छूटे

प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिस बस भूप चलेउ सँग लागा ॥157:4॥
गयउ दूरि घन गहन बराहू। जहँ नाहिन गज बाजि निबाहू ॥157:5॥
अति अकेल बन बिपुल कलेसू। तदपि न मृग मग तजइ नरेसू ॥157:6॥

प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा = वह पशु कभी प्रगट कभी छिपता हुआ भाग रहा था, *रिस बस भूप चलेउ सँग लागा* = राजा भी क्रोध के वश उसके पीछे चला जा रहा था, *गयउ दूरि घन गहन बराहू* = सूअर बहुत दूर ऐसे घने जंगल में चला गया, *जहँ नाहिन गज बाजि निबाहू* = जहाँ हाथी घोड़े नहीं जा सकते थे, *अति अकेल बन* = राजा बिल्कुल अकेला था, *बिपुल कलेसू* = वहाँ बहुत कष्ट थे, *तदपि न मृग मग तजइ नरेसू* = तब भी राजा ने उस पशु का पीछा नहीं छोड़ा।

झाड़ियों की आड़ लेकर वह कभी छिप जाता था, जब देखता राजा नहीं देख रहे हैं तो फिर बाहर निकल आता था। उसने छल करके राजा को अपने पीछे लगाये रखा। राजा को गुस्सा आया कि हम एक सूअर को नहीं मार पा रहे हैं, इसलिये उसने भी पीछा नहीं छोड़ा। इस प्रकार सूअर इतने गहन वन में राजा को ले गया, जहाँ लताओं, झुरमुट के बीच घुस कर राजा के हाथी व घोड़े तो जा नहीं सकते थे, लेकिन सूअर शरीर को दबाकर झाड़ियों के बीच से किसी प्रकार रास्ता बनाकर निकल गया। अब राजा वन में अकेला ही रह गया। मंत्री साथ होता तो सलाह देता, चलो जाने दो। राजा यह सोचकर कि हम बहुत शक्तिशाली हैं, सूअर को मार ही लेंगे, कष्ट सहते हुए भी उसके पीछे लगा रहा।

सूअर गुफा में छिपा, राजा रास्ता भूल गया, पछता रहा है

कोल बिलोकि भूप बड़ धीरा। भागि पैठ गिरिगुहाँ गभीरा ॥157:7॥
अगम देखि नृप अति पछिताई। फिरेउ महाबन परेउ भुलाई ॥157:8॥

कोल बिलोकि भूप बड़ धीरा = सूअर ने देखा राजा बहुत धैर्यवान है, *भागि पैठ गिरिगुहाँ गभीरा* = पर्वत में एक लंबी गहरी गुफा में जाकर छिप गया, *अगम देखि* = उसमें जाना कठिन देखकर, *नृप अति पछिताई* = राजा को बहुत पछतावा हुआ, *फिरेउ महाबन* = घोर वन में वापस आया, *परेउ भुलाई* = पर रास्ता भूल गया।

जब सूअर ने देखा कि राजा पीछा नहीं छोड़ रहा है, बहुत धैर्यवान् लगता है, तब वह पर्वत में एक लंबी गुफा के भीतर घुस गया। राजा ने देखा उस गुफा में न तो घोड़ा जा सकता है न वह स्वयं, तो वह हार मानकर पश्चात्ताप करने लगा। अब राजा अपने घर की ओर जाने का विचार करके वहाँ से लौटने लगा, तब तक सायंकाल हो गया। वन से बाहर निकलने का रास्ता ही नहीं पहचान पाया। राजा के साथ केवल उसका घोड़ा ही रह गया था।

भूख-प्यास से व्याकुल, भटकते हुए, कपटी मुनि के आश्रम पहुँचा

खेद खिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत ।
खोजत ब्याकुल सरित सर जल बिनु भयउ अचेत ॥दोहा 157॥

खेद = पश्चात्ताप है, *खिन्न* = दु:ख है, *छुद्धित* = भूख लगी है, *तृषित* = प्यास भी लगी है, *राजा बाजि समेत* = राजा व घोड़ा दोनों को, *खोजत ब्याकुल सरित सर* = नदी-तालाब खोजता हुआ राजा व्याकुल है, *जल बिनु भयउ अचेत* = बिना पानी के राजा शिथिल हो गया।

फिरत बिपिन आश्रम एक देखा। तहँ बस नृपति कपट मुनिबेषा ॥158:1॥

फिरत बिपिन = वन में भटकते हुए, *आश्रम एक देखा* = राजा ने एक आश्रम देखा, *तहँ बस नृपति* = वहाँ एक राजा रहता था, *कपट मुनिबेषा* = जो कपट से मुनि का वेष बनाये था।

सूअर को न मार पाने की असफलता का दु:ख था और उसे भूख-प्यास भी लग आई थी। राजा यह देखता हुआ कि इस वन में कहीं नदी, तालाब दिखाई दे, इधर उधर भटकने लगा। बिना पानी के राजा शिथिल होने लगा, उसे चलना फिरना भी मुश्किल लगने लगा। इतने में उसे एक आश्रम दिखाई दिया। सूअर जान बूझकर राजा को उस आश्रम की ओर ले जाकर स्वयं पर्वत की गुफा में छिप गया था। उस आश्रम में एक राजा कपटी मुनि के वेष में रहता था।

प्रतापभानु से युद्ध में हारा हुआ राजा मुनि के वेष में रहता था

जासु देस नृप लीन्ह छड़ाई। समर सेन तजि गयउ पराई ॥158:2॥
समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी ॥158:3॥
गयउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी ॥158:4॥
रिस उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसइ तापस कें साजा ॥158:5॥

जासु देस = जिसका राज्य, *नृप लीन्ह छड़ाई* = युद्ध में राजा प्रतापभानु ने छीन लिया था, *समर सेन तजि* = जो अपनी सेना को छोड़कर, *गयउ पराई* = युद्ध से पलायन हो गया था, *समय प्रतापभानु कर जानी* = प्रतापभानु का अच्छा समय जानकर, *आपन अति असमय अनुमानी* = और अपना बहुत बुरा समय का अनुमान लगाकर, *गयउ न गृह* = राजा घर वापस नहीं गया, *मन बहुत गलानी* = मन में बहुत ग्लानि थी, *मिला न राजहि नृप अभिमानी* = यह राजा अभिमानी था इसलिये प्रतापभानु से नहीं मिला, *रिस उर मारि* = क्रोध को मन में ही दबाकर, *रंक जिमि राजा* = वह राजा भिखारी के समान, *बिपिन बसइ* = वन में रहता था, *तापस कें साजा* = तपस्वी का वेष बनाकर।

प्रतापभानु ने एक राजा का राज्य युद्ध में छीन लिया था। उस राजा ने सोचा कि इस समय प्रतापभानु के पास ज्यादा सेना है, इसका समय अच्छा चल रहा है, हमारा समय खराब है। हार जाने के दु:ख से घर नहीं गया। अभिमान के कारण प्रतापभानु से संधि भी नहीं की। क्रोध को मन में ही दबाकर रखे रहा। बदला लेने के विचार से वन में कपट से मुनि का वेष बनाकर भिक्षुक की तरह एक कुटिया में रहता था।

मुनि समझकर राजा उसे प्रणाम करते हैं

तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रतापरबि तेहिं तब चीन्हा ॥158:6॥
राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। देखि सुबेष महामुनि जाना ॥158:7॥
उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निज नामा ॥158:8॥

तासु समीप गवन नृप कीन्हा = प्रतापभानु उसी के पास पहुँचा, *यह प्रतापरबि तेहिं तब चीन्हा* = उसने तुरंत पहचान लिया कि यह प्रतापभानु राजा है, *राउ तृषित नहिं सो पहिचाना* = राजा प्यास से व्याकुलता के कारण उसे पहचान नहीं पाया, *देखि सुबेष महामुनि जाना* = मुनि के वेष में देखकर उसे मुनि ही समझा, *उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा* = घोड़े से उतरकर प्रणाम किया, *परम चतुर* = बहुत चतुरताई से, *न कहेउ निज नामा* = अपना नाम नहीं बताया।

राजा प्रतापभानु उस कपटी मुनि के पास गया, उसने पहचान लिया कि यह वही राजा है जिसने हमारा राज्य छीना था। पर प्रतापभानु भूखा-प्यासा थका हुआ था, वह पहचान नहीं पाया, उसने वेष देखकर मुनि ही समझा। राजा को जैसे मुनियों को प्रणाम करना चाहिये, उसी प्रकार घोड़े से उतरकर प्रणाम किया। राजा लोग सब जगह अपना नाम नहीं बताते, इसलिये प्रतापभानु ने चतुराई से अपनी पहचान छिपाये रखी।

मुनि ने राजा को तालाब में स्नान व जलपान करवाया

भूपति तृषित बिलोकि तेहिं सरबरु दीन्ह देखाइ ।
मज्जन पान समेत हय कीन्ह नृपति हरषाइ ॥दोहा 158॥

भूपति तृषित बिलोकि तेहिं = उसने राजा को प्यासा देखकर, *सरबरु दीन्ह देखाइ* = सरोवर दिखला दिया, *मज्जन पान* = स्नान किया व पानी पीया, *समेत हय कीन्ह* = घोड़े को भी पानी पिलाया, *नृपति हरषाइ* = राजा प्रसन्न हो गया।

कपटी मुनि ने देखा कि राजा बहुत भूखा-प्यासा व्याकुल दिखाई दे रहा है, तो उसने सरोवर दिखाकर कहा कि जाओ पहले स्नान करके पानी पीओ। राजा ने स्वयं पानी पीया, घोड़े को भी पानी पिलाया, स्नान किया। थकान कुछ घटी जिससे राजा हर्षित हो गया।

आश्रम ले जाकर, बनावटी कोमल वाणी में परिचय पूछता है

गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निज आश्रम तापस लै गयऊ ॥159:1॥
आसन दीन्ह अस्त रबि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी ॥159:2॥
को तुम्ह कस बन फिरहु अकेलें। सुंदर जुबा जीव परहेलें ॥159:3॥
चक्रबर्ति के लच्छन तोरें। देखत दया लागि अति मोरें ॥159:4॥

गै श्रम सकल = सारी थकान दूर हो गयी, *सुखी नृप भयऊ* = राजा सुखी हो गया, *निज आश्रम तापस लै गयऊ* = तपस्वी राजा को अपने आश्रम ले गया, *आसन दीन्ह* = राजा को बैठने के लिये आसन दिया, *अस्त रबि जानी* = सूर्यास्त का समय जानकर, *पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी* = वह तपस्वी कोमल वाणी से बोला, *को तुम्ह* = तुम कौन हो? *कस बन फिरहु अकेलें* = बन में अकेले क्यों घूम रहे हो, *सुंदर जुबा* = सुंदर युवक होकर, *जीव परहेलें* = जीवन की परवाह न करके, *चक्रबर्ति के लच्छन तोरें* = तुम्हारे चक्रवर्ती राजा के लक्षण हैं, *देखत दया लागि अति मोरें* = जिसे देखकर मुझे बहुत दया लगती है।

कपटी मुनि राजा को अपने आश्रम में ले आया। राजा उसके जाल में फँस गया। उसने बैठने के लिये आसन दिया, फिर कोमलता के साथ बनावटी वाणी में पूछता है, तुम कौन हो? इस निर्जन वन में अकेले क्यों घूम रहे हो? तुम्हें मरने का भय नहीं है क्या? तुम सुंदर हो, युवा हो, तुम्हारे तो लक्षण चक्रवर्ती राजा के समान हैं। तुमको इस दशा में देखकर मुझे दया भी लगती है।

राजा अपने को मंत्री बताकर, मुनि-दर्शन को हितकारी कहता है

नाम प्रतापभानु अवनीसा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा ॥159:5॥
फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। बड़ें भाग देखेउँ पद आई ॥159:6॥
हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनिहारा ॥159:7॥

नाम प्रतापभानु अवनीसा = एक प्रतापभानु नाम का राजा है, *तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा* = हे मुनि मैं उसी का मंत्री हूँ, *फिरत अहेरें* = शिकार के लिये घूमते हुए, *परेउँ भुलाई* = रास्ता भूल गया हूँ, *बड़ें भाग देखेउँ पद आई* = मेरे बड़े भाग्य हैं कि आपके चरणों का दर्शन किया है, *हम कहँ*

दुर्लभ दरस तुम्हारा = हमें तो आपके दर्शन दुर्लभ थे, *जानत हौं कछु भल होनिहारा* = लगता है मेरा कुछ भला होने वाला है।

राजा ने कहा कि एक प्रतापभानु नाम का राजा है, उसका मैं मंत्री हूँ। मैं तो यहाँ शिकार के लिये आया था, पर रास्ता भूल गया। बहुत सौभाग्य की बात है कि यहाँ आकर आपके दर्शन हुए। आप जैसे दुर्लभ मुनि तो सदा वन में रहते हैं, नगर में आते नहीं, इसलिये हम लोगों को आपके चरणों के दर्शन नहीं हो पाते हैं। आपके दर्शन हुए तो लगता है, कुछ भला होने वाला है।

कपटी मुनि ने समझाकर, राजा को रात में वहीं रोक लिया

कह मुनि तात भयउ अँधिआरा। जोजन सत्तरि नगरु तुम्हारा ॥159:8॥

निसा घोर गंभीर बन पंथ न सुनहु सुजान ।
बसहु आजु अस जानि तुम्ह जाएहु होत बिहान ॥दोहा 159 क॥

कह मुनि तात भयउ अँधिआरा = मुनि ने कहा हे तात! अंधेरा हो गया है, *जोजन सत्तरि नगरु तुम्हारा* = तुम्हारा नगर यहाँ से सत्तर योजन दूर है।

निसा घोर = घोर अंधेरी रात है, *गंभीर बन* = घना जंगल है, *पंथ न* = रास्ता कहीं है नहीं, *सुनहु सुजान* = हे समझदार सुनो, *बसहु आजु अस जानि तुम्ह* = ऐसा समझकर तुम आज यहीं ठहर जाओ, *जाएहु होत बिहान* = सबेरा होते ही चले जाना।

मुनि समझाने लगा, सूरज डूब गया है, अंधेरा हो गया है, तुम्हारा घर यहाँ से बहुत दूर है, चलते-चलते रात बीत जायेगी, घर मिलेगा नहीं। अंधेरी रात है, वन बहुत घना है, वन में रास्ता भी नहीं है। तुम तो समझदार हो, आज रात में यहीं रुक जाओ, सुबह होते ही अपने घर के लिये चले जाना। राजा को रात में वहीं रुकना पड़ा।

भविष्य में जो होना होता है, वैसी परिस्थिति बन जाती है

तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलइ सहाइ ।
आपुनु आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाइ ॥दोहा 159 ख॥

तुलसी = तुलसीदास जी कहते हैं, *जसि भवतब्यता* = भविष्य में जैसा होना होता है, *तैसी मिलइ सहाइ* = वैसी परिस्थिति बन जाती है, *आपुनु आवइ ताहि पहिं* = या तो वह स्वयं उसके पास आ जाती है, *ताहि तहाँ लै जाइ* = या उस व्यक्ति को वहाँ ले जाती है।

तुलसीदास जी अपनी टिप्पणी करते हैं कि भविष्य में जैसी घटना होने वाली होती है वैसी ही परिस्थितियाँ बन जाती हैं। कई बार परिस्थितियाँ स्वयं चलकर व्यक्ति के पास आ जाती हैं, कई बार व्यक्ति स्वयं चलकर वहाँ तक पहुँच जाता है। यह बात अच्छाई व बुराई दोनों के लिये है। यहाँ पर राजा का विनाश काल आ गया है, इसलिये वह कपटी मुनि के पास पहुँच गया और उसके चक्कर में फँस गया।

राजा ने बहुत विनती करके कपटी मुनि से नाम पूछा

भलेहिं नाथ आयसु धरि सीसा। बाँधि तुरग तरु बैठ महीसा ॥160:1॥
नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही। चरन बंदि निज भाग्य सराही ॥160:2॥

भलेहिं नाथ = हे नाथ! ठीक है, *आयसु धरि सीसा* = आपकी आज्ञा स्वीकार है, *बाँधि तुरग तरु* = घोड़े को पेड़ से बाँधकर, *बैठ महीसा* = राजा आकर बैठ गया, *नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही* = राजा ने उसकी बहुत प्रकार से प्रशंसा की, *चरन बंदि* = चरणों की वंदना करके, *निज भाग्य सराही* = अपने भाग्य की सराहना की।

पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करउँ ढिठाई ॥160:3॥
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी ॥160:4॥

पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई = फिर सुंदर कोमल वाणी से बोला, *जानि पिता* = आपको पिता समझकर, *प्रभु करउँ ढिठाई* = हे प्रभु! हम धृष्टता करते हैं, *मोहि मुनीस सुत सेवक जानी* = हे मुनि! मुझे अपना पुत्र व सेवक समझकर, *नाथ नाम निज कहहु बखानी* = हे नाथ! आप अपना नाम बताइये।

राजा ने कहा हे नाथ! आप जैसा कहते हैं वही ठीक है, हम आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करेंगे। घोड़े को पेड़ से बाँधकर और फिर निश्चिंत होकर वह कपटी

मुनि के पास आकर बैठ गया। राजा ने मुनि की प्रशंसा की कि आप मिल गये, आपकी कृपा हो गयी, तो हमारी रक्षा हो गयी, भोजन पानी भी मिल गया। आप बहुत त्यागी तपस्वी हैं। चरणों की वंदना करके राजा कहता है हमारा बहुत सौभाग्य है जो आपके चरणों के दर्शन हो गये। फिर कोमल वाणी में कहा कि हम आपको पिता के समान समझते हैं, इसलिये हमारी धृष्टता को क्षमा करें और हम आपसे कुछ जानना चाहते हैं वह बतावें। हे मुनि! आप हमें अपना पुत्र ही समझो, अपना सेवक समझो। हे नाथ! कृपया अपना नाम बताइये।

छल से बदला लेने की योजना वह मन में बना लेता है

तोहि न जान नृप नृपहि सो जाना। भूप सुहृद सो कपट सयाना ॥160:5॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज काजा ॥160:6॥

तोहि न जान नृप = राजा ने उसको नहीं पहचाना, *नृपहि सो जाना* = पर मुनि ने राजा को पहचान लिया, *भूप सुहृद* = राजा का मन तो साफ था, *सो कपट सयाना* = पर वह कपट करने में चतुर था, *बैरी पुनि छत्री पुनि राजा* = एक तो दुश्मन; फिर क्षत्रिय; फिर राजा, *छल बल कीन्ह चहइ निज काजा* = वह छल के बल से अपना काम बनाना चाहता था।

समुझि राजसुख दुखित अराती। अवाँ अनल इव सुलगइ छाती ॥160:7॥
सरल बचन नृप के सुनि काना। बयर सँभारि हृदयँ हरषाना ॥160:8॥

समुझि राजसुख = वह अपने राज सुख का स्मरण करके, *दुखित अराती* = दु:खी था, *अवाँ अनल इव* =आवाँ की आग की तरह, *सुलगइ छाती* = उसकी छाती भीतर-ही-भीतर सुलग रही थी, *सरल बचन नृप के सुनि काना* = कान से राजा के सरल बचन सुनकर, *बयर सँभारि* = अपने वैर को याद करके, *हृदयँ हरषाना* = वह मन में हर्षित हुआ।

राजा तो कपटी मुनि को नहीं पहचान पाया, इसलिये अपने सच्चे मन से विनती कर रहा था। लेकिन कपटी मुनि ने राजा को पहचान लिया था। वह युद्ध में हार गया था इसलिये राजा को शत्रु मानता था। क्षत्रिय होने के कारण से किसी भी प्रकार कूटनीति, छल प्रपंच करके बदला तो लेगा ही। राजा होने के कारण उसे राजनीति, तिकड़म, युक्तियाँ पता ही थीं। वह छल के

द्वारा बदला लेने की योजना बनाने लगा। राज्य सुख छिन जाने के कारण से वह दुखित व पीड़ित था। जैसे कुम्हार के आवाँ में ऊपर से आग नहीं दिखती पर भीतर-ही-भीतर सुलगती रहती है, ऐसे ही यह ऊपर से अपने दुःख को प्रकट नहीं होने देता, एक तपस्वी की तरह शांत रहता है। प्रतापभानु के सरल वचन सुनकर, वह समझ गया कि यह अब हमारे चंगुल में फँस गया है। वैर का बदला लेने का समय आ गया है, यह सोचकर कपटी मुनि मन में हर्षित होता है।

हमारा नाम तो भिखारी है, हमारे पास न धन है न घर है

कपट बोरि बानी मृदुल बोलेउ जुगुति समेत ।
नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत ॥दोहा 160।

कपट बोरि बानी मृदुल = वह कपट से युक्त मधुर वाणी, *बोलेउ जुगुति समेत* = युक्ति के साथ बोला, *नाम हमार भिखारि अब* = अब हमारा नाम भिखारी है, *निर्धन रहित निकेत* = न धन है, न घर है।

कपटी मुनि बहुत ही मृदुता से, ऐसी युक्ति बनाकर बोला कि राजा विश्वास कर ले और फँस ही जाये। कहता है, हमारा नाम क्या पूछते हो? हम तो भिखारी हैं, हमारे पास न धन है न रहने के लिये घर। अब तो हमें भिखारी ही समझो। 'अब' से आशय है कि पहले हम राजा थे, राज्य छिन गया तो हमारा क्या नाम?

आप तो भिखारी के वेष में परम ज्ञानी हो, हम पर कृपा करें

कह नृप जे बिग्यान निधाना। तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना ॥161:1॥
सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ। सब बिधि कुसल कुबेष बनाएँ ॥161:2॥

कह नृप = राजा ने कहा, *जे बिग्यान निधाना* = जो विज्ञान के निधान होते हैं, *तुम्ह सारिखे* = वे आपके समान, *गलित अभिमाना* = उनका अभिमान नष्ट हुआ रहता है, *सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ* = वे अपनी वास्तविकता को सदैव छिपाये रखते हैं, *सब बिधि कुसल* = सब तरह से कल्याण, *कुबेष बनाएँ* = कुवेष बनाकर रहने में ही है।

तोहि तें कहहिं संत श्रुति टेरें। परम अकिंचन प्रिय हरि केरें ॥161:3॥
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरंचि सिवहि संदेहा ॥161:4॥

तोहि तें कहहिं = इसलिये कहते हैं, *संत श्रुति टेरें* = सज्जन लोग व वेद पुकार करके कि, *परम अकिंचन* = सर्वथा अहंकार; ममता व मानरहित, *प्रिय हरि केरें* = भगवान को बहुत प्रिय होते हैं, *तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा* = आप के समान निर्धन; भिखारी व बिना घर के संत को देखकर, *होत बिरंचि सिवहि संदेहा* = ब्रह्मा जी व शिव जी को भी संदेह हो जाता है।

जोसि सोसि तव चरन नमामी। मो पर कृपा करिअ अब स्वामी ॥161:5॥

जोसि सोसि = आप जो हो सो हो, *तव चरन नमामी* = आपके चरणों में प्रणाम है, *मो पर कृपा करिअ अब स्वामी* = हे स्वामी! अब हमारे ऊपर कृपा करिये।

राजा विनम्रता से कहता है जो लोग विज्ञान के निधान होते हैं उनका अभिमान तो रहता ही नहीं है। वे अपने ज्ञान को, अपने स्वरूप को सदा छिपाये रहते हैं। वे ज्ञानी के वेष में न रहकर कुवेष में रहते हैं, जैसे आप भिखारी के वेष में हैं, इसलिये उनकी महिमा समझ में नहीं आती है। श्रुतियाँ और संत बार-बार पुकार कर कहते हैं कि ऐसे अभिमान रहित लोग भगवान को बहुत प्रिय हैं। आप जैसे निर्धन, भिखारी, बिना घर के व्यक्ति को देखकर, ब्रह्मा जी व शिव जी को भी संदेह हो सकता है कि हो न हो यह परमात्मा का ही अवतार होगा। आप जो हो सो हो, हम तो आपके चरणों में प्रणाम करते हैं। हे स्वामी! अब आप हमारे ऊपर कृपा करिये। मानो राजा चाहता है कि ये सिद्ध पुरुष हैं, कुछ सिद्धि, सामर्थ्य हमें भी दे दें।

यहाँ से राजा के मन का लालच दिखाई देने लगा

राजा प्रतापभानु धर्मपरायण, चक्रवर्ती राजा है, उसे यश, कीर्ति सब प्राप्त है, पर कामनायें पूरी नहीं हुई हैं। अभी और पाने का लालच मन में है। तृप्ति नहीं आ पायी है। कपटी मुनि को सिद्ध व्यक्ति समझकर उसकी खूब प्रशंसा करता है, ताकि ये प्रसन्न होकर कुछ और दें। इसी प्रलोभन के चक्कर में वह फँस जाता है। यहाँ पर स्पष्ट शिक्षा है, सफलता पाने के बाद मन में तृप्ति का, संतोष का, बस अब और नहीं चाहिये का भाव

आना चाहिये। इसे ही वैराग्य भी कहते हैं। यह तभी आता है जब भगवान के चरणों में प्रेम हो। राजा में सब गुण है पर '*हरि पद प्रीती*' नहीं है, जो उसके मंत्री में है।

तपस्वी कहता है–हम बहुत समय से यहीं हैं, किसी से मिलते नहीं

सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु बिषय बिस्वास बिसेषी ॥161:6॥
सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई ॥161:7॥
सुनु सतिभाउ कहउँ महिपाला। इहाँ बसत बीते बहु काला ॥161:8॥

सहज प्रीति भूपति कै देखी = राजा का सहज प्रेम देखकर, *आपु बिषय* = अपने तपस्वीपन पर, *बिस्वास बिसेषी* = पूर्ण विश्वास देखकर, *सब प्रकार राजहि अपनाई* = सब प्रकार से राजा को अपना बनाकर, *बोलेउ अधिक सनेह जनाई* = और अधिक स्नेह बताकर वह कहता है, *सुनु सतिभाउ कहउँ महिपाला* = हे राजन्! सुनो मैं सत्य कहता हूँ, *इहाँ बसत बीते बहु काला* = मुझे यहाँ रहते हुए बहुत समय बीत गया है।

अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ मैं न जनावउँ काहु ।
लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु ॥दोहा 161 क॥

अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ = अब तक न तो कोई मुझसे मिला है, *मैं न जनावउँ काहु* = और न मैंने स्वयं किसी को जाकर बताया है, *लोकमान्यता अनल सम* = क्योंकि संसार में प्रतिष्ठा अग्नि के समान है, *कर तप कानन दाहु* = जो तप के वन को जलाकर नष्ट कर देती है।

प्रतापभानु के इस प्रकार बोलने से कपटी मुनि के मन में यह निश्चय हो गया कि यह राजा हमारे जाल में फँस गया है। राजा को सब प्रकार से अपनाते हुए व प्रेम जताते हुए हे राजन् कहकर संबोधित करने लगा। वह यह सिद्ध कर रहा है कि बिना तुम्हारे बताये ही हम जान गये कि तुम एक राजा हो। कहता है यहाँ रहते हुए हमें बहुत काल व्यतीत हो गये हैं। वह अपने को लंबी आयु का सिद्ध पुरुष बताना चाहता है। मेरी इतनी लंबी आयु होने पर भी न तो मुझे यहाँ पर कोई आकर मिला है और न मैंने स्वयं किसी को जाकर बताया है। इसीलिये मेरे बारे में संसार में कोई जानता भी नहीं है। संसार में प्रतिष्ठा तो अग्नि के

समान है जो तप रूपी वन को जलाकर नष्ट कर देती है। संसार द्वारा अधिक मान्यता मिलने से तपस्या नष्ट हो जाती है।

सुंदर वेष देखकर मूर्ख फँस जाते हैं, चतुर सावधान रहते हैं

तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर ।
सुंदर केकिहि पेखु बचन सुधा सम असन अहि ॥सोरठा 161 ख॥

तुलसी = तुलसीदास जी कहते हैं, *देखि सुबेषु* = सुंदर वेष देखकर, *भूलहिं मूढ़* = मूर्ख व्यक्ति ही भुलावे में आ जाता है, *न चतुर नर* = होशियार नहीं, *सुंदर केकिहि पेखु* = सुंदर मोर को देखो, *बचन सुधा सम* = उसकी वाणी तो अमृत के समान है, *असन अहि* = भीतर साँप का विष भरा है; साँप उसका भोजन है।

तुलसीदास जी यहाँ पर नीति की बात कहते हैं कि किसी का सुंदर वेष देखकर या सुंदर वाणी सुनकर उस पर विश्वास नहीं कर लेना चाहिये, बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। वास्तविकता जान लेने पर ही विश्वास करें। उदाहरण देते हैं, जैसे मोर का सुंदर वेष है, लेकिन भीतर तो सांप का विष भरा हुआ है।

भगवान मेरी सिद्धि जानते हैं, संसार से क्या काम?

तातें गुपुत रहउँ जग माहीं। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं ॥162:1॥
प्रभु जानत सब बिनहिं जनाएँ। कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएँ ॥162:2॥

तातें गुपुत रहउँ जग माहीं = इसी से मैं संसार में छिप कर रहता हूँ, *हरि तजि* = भगवान को छोड़कर, *किमपि प्रयोजन नाहीं* = किसी से हमें लेना देना नहीं है, *प्रभु जानत सब बिनहिं जनाएँ* = भगवान तो बिना बताये ही सब जानते हैं, *कहहु कवनि सिधि* = फिर कहो क्या सिद्धि मिलेगी, *लोक रिझाएँ* = लोगों को आकर्षित करने से।

तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरें। प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरें ॥162:3॥
अब जौं तात दुरावउँ तोही। दारुन दोष घटइ अति मोही ॥162:4॥

तुम्ह सुचि सुमति= तुम पवित्र व अच्छी बुद्धि वाले हो, *परम प्रिय मोरें*= इससे मुझे बहुत ही प्रिय हो, *प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरें*= तुमको हमसे बहुत प्रेम है और तुम्हारे प्रेम पर हमें भी बहुत विश्वास है, *अब जौं तात दुरावउँ तोही*= हे तात! अब तुमसे कोई बात छिपाते हैं, *दारुन दोष घटइ अति मोही*= तो हमको बड़ा दोष लगेगा।

हमने अपनी तपस्या को बचाये रखने के लिये अपने आप को गुप्त रखा है। हमारा तो केवल भगवान से नाता है, तो हमें और किसी से क्या लेना देना? वे तो सबके हृदय में वास करते हैं, वे सब जानते हैं। संसार में सबको बतायें कि मैं ऐसा तपस्वी हूँ, मेरी इतनी लंबी आयु है, तो लोग मेरा आदर करेंगे, परंतु उस प्रतिष्ठा से मुझे क्या मतलब? इसलिये मैं किसी को अपने बारे में बताता ही नहीं हूँ। परंतु तुम बहुत पवित्र हो, बुद्धिमान हो, तुम्हें मुझसे बहुत प्रेम है, तुम्हारे प्रेम पर मुझे भी विश्वास है। इसलिये यदि तुम्हारे विनम्रता से पूछने पर भी मैं कोई बात छिपाता हूँ तो मुझे बहुत दोष लगेगा।

कपटी के ज्ञान व वैराग्य की बातों से राजा का विश्वास पक्का

जिमि जिमि तापसु कथइ उदासा। तिमि तिमि नृपहि उपज बिस्वासा ॥162:5॥

जिमि जिमि तापसु कथइ उदासा= जैसे-जैसे तपस्वी वैराग्य की बातें करता है, *तिमि तिमि नृपहि उपज बिस्वासा*= वैसे-वैसे राजा के मन में विश्वास पक्का होता जाता है।

जैसे-जैसे तपस्वी वैराग्य की बातें करता जाता है वैसे-वैसे राजा के मन में विश्वास पक्का होता जाता है। समाज में भी देखते हैं कि लोग अध्यात्म की, वैराग्य की बातें तो जानते नहीं, इसलिये जो ऊपर से, अपनी बातों से जितना विरक्त दिखाई देता है, लोग उस पर उतना अधिक विश्वास करते जाते हैं। लोग ऊपरी वेष देखकर अंदाज लगा लेते हैं कि यह सिद्ध पुरुष होगा।

मेरा नाम एकतनु है, क्योंकि सृष्टि के प्रारंभ से यही शरीर है

देखा स्वबस कर्म मन बानी। तब बोला तापस बगध्यानी ॥162:6॥
नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई ॥162:7॥
कहहु नाम कर अरथ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी ॥162:8॥

देखा स्वबस कर्म मन बानी = राजा को मन वाणी व कर्म से अपने वश में देखकर, *तब बोला तापस बगध्यानी* = तब वह तपस्वी बगुले के समान बोला, *नाम हमार एकतनु भाई* = हे भाई! हमारा नाम एकतनु है, *सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई* = यह सुनकर राजा ने फिर सिर झुकाकर कहा, *कहहु नाम कर अरथ बखानी* = अपने नाम का अर्थ समझाकर कहिये, *मोहि सेवक अति आपन जानी* = मुझे अपना अति नजदीकी सेवक समझकर।

आदिसृष्टि उपजी जबहिं तब उतपति भै मोरि ।
नाम एकतनु हेतु तेहि देह न धरी बहोरि ॥दोहा 162॥

आदिसृष्टि उपजी जबहिं = जब सबसे पहले सृष्टि बनी, *तब उतपति भै मोरि* = तभी मैं भी उत्पन्न हुआ, *नाम एकतनु हेतु तेहि* = मेरा नाम एकतनु इसलिये है, *देह न धरी बहोरि* = मैंने फिर दूसरा शरीर धारण नहीं किया।

राजा प्रतापभानु को मन से, वाणी से व कर्म से अपने ही वश में देखकर बगुले के समान कपटी मुनि कहता है, भाई! मेरा नाम एकतनु है। यह सुनकर राजा पुन: प्रणाम करके कहता है कि मुझे अपना सेवक जानकर इस नाम का अर्थ समझाइये। वह कहता है कि जब ब्रह्मा जी ने संसार बनाया तभी मुझे भी बनाया। संसार के प्रारंभ से ही मैं वही शरीर धारण किये हुए हूँ, मेरी कभी मृत्यु नहीं हुई है। मैंने कभी दूसरा शरीर धारण नहीं किया इसलिये मेरा नाम एकतनु है।

हे पुत्र! आश्चर्य मत करो, तप से मेरी आयु इतनी लंबी है

जनि आचरजु करहु मन माहीं। सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं ॥163:1॥
तपबल तें जग सृजइ बिधाता। तपबल बिष्नु भए परित्राता ॥163:2॥
तपबल संभु करहिं संघारा। तप तें अगम न कछु संसारा ॥163:3॥

जनि आचरजु करहु मन माहीं = मन में आश्चर्य मत करो, *सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं* = हे पुत्र! तप से कुछ भी दुर्लभ नहीं है, *तपबल तें जग सृजइ बिधाता* = तप के बल से ब्रह्मा जी जगत् की रचना करते हैं, *तपबल बिष्नु भए परित्राता* = तप के बल से विष्णु जी संसार का पालन करते हैं, *तपबल संभु करहिं संघारा* = तप के बल से शिव जी संहार करते हैं, *तप तें अगम न कछु संसारा* = संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं जो तप से न मिल सके।

इस बात पर आश्चर्य मत करो कि हमारी इतनी लंबी आयु कैसे है? सृष्टि के आरंभ से अब तक मैं इसी शरीर में चला आ रहा हूँ। हे सुत! यह सब हमारी तपस्या के बल से हुआ है। तपस्या से कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है। तपस्या के बल से ही ब्रह्मा जी सृष्टि की रचना, विष्णु जी पालन व शिव जी संहार करते हैं। जब इतने बड़े इन तीनों देवताओं को भी तपस्या करनी पड़ी तो साधारण व्यक्ति की बात ही क्या? उसे तो तपस्या करनी ही होगी।

आयु लंबी करना तपस्या का दुरुपयोग है, इससे सावधान रहें

यद्यपि मुनि कपटी है, पर बात सही कह रहा है कि तपस्या से सब कुछ सुलभ है। लेकिन यह कहना कि तपस्या से हमारी आयु इतनी लंबी हो गई है, यह तो तपस्या का दुरुपयोग है, मूर्खता का लक्षण है। यह बात राजा प्रतापभानु की समझ में नहीं आती और वह कपटी के चक्कर में फँस जाता है। तप से आशय शक्ति को एकत्रित करके उसका किसी भी क्षेत्र में प्रयोग करके सफलता प्राप्त करना है। उस शक्ति का प्रयोग जन कल्याण के कार्य के लिये भी करना चाहिये।

प्रकृति, इतिहास, कर्म की बातों से लंबी आयु का प्रमाण देता है

भयउ नृपहि सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहै सो लागा ॥163:4॥
करम धरम इतिहास अनेका। करइ निरूपन बिरति बिबेका ॥163:5॥
उदभव पालन प्रलय कहानी। कहेसि अमित आचरज बखानी ॥163:6॥

भयउ नृपहि सुनि अति अनुरागा = यह सुनकर राजा को तपस्वी पर बहुत प्रेम हो गया, *कथा पुरातन कहै सो लागा* = तब वह तपस्वी पुरानी कथायें कहने लगा, *करम धरम इतिहास अनेका* = अनेकों कर्म; धर्म व इतिहास, *करइ निरूपन* = का विस्तार से वर्णन किया, *बिरति बिबेका* = वैराग्य व ज्ञान का भी वर्णन किया, *उदभव पालन प्रलय कहानी* = सृष्टि के उत्पन्न, पालन व प्रलय की बातें, *कहेसि अमित आचरज बखानी* = उसने बहुत आश्चर्यजनक तरीके से बतायी।

चक्रवर्ती सम्राट् प्रतापभानु को तपस्वी पर बहुत अनुराग हो गया कि यह तो बहुत ही बड़े सिद्ध हैं। वह कल्प-कल्प की पुरानी घटनाएँ इस प्रकार सुनाने लगा कि इन-इन युगों में हमारे सामने ये-ये अवतार हुए। कर्म क्या है? धर्म

क्या है? इनका आपस में संबंध क्या है? पुनर्जन्म कैसे होता है? ये सब बातें वह विस्तार से बताने लगा। ज्ञान, वैराग्य व विवेक का भी विस्तार से वर्णन किया। यह भी बताया कि सृष्टि कैसे उत्पन्न होती है? इसका पालन कैसे होता है? और प्रलय कैसे होता है? ये सब बातें उसने बहुत आश्चर्यजनक तरीके से इस प्रकार बतायीं कि ऐसा लगे कि वह उस समय मौजूद था।

राजा असली नाम बताना चाहता है, वह कहता है हमें सब पता है

सुनि महीप तापस बस भयऊ। आपन नाम कहन तब लयऊ ॥163:7॥
कह तापस नृप जानउँ तोही। कीन्हेहु कपट लाग भल मोही ॥163:8॥

सुनि महीप तापस बस भयऊ = यह सुनकर राजा उसके वश में हो गया, *आपन नाम कहन तब लयऊ* = तब अपना असली नाम बताने लगा, *कह तापस नृप जानउँ तोही* = तपस्वी ने कहा मैं तुम्हें जानता हूँ, *कीन्हेहु कपट लाग भल मोही* = तुम्हारा झूठा परिचय हमें अच्छा ही लगा।

सुनु महीस असि नीति जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप ।
मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता बिचारि तव ॥दोहा 163॥

सुनु महीस असि नीति = हे राजन्! सुनो ऐसा नियम है कि, *जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप* = राजा लोग जहाँ-तहाँ अपना नाम नहीं बताते हैं, *मोहि तोहि पर अति प्रीति* = तुम पर मेरा बहुत प्रेम हो गया है, *सोइ चतुरता बिचारि तव* = तुम्हारी वही चतुराई समझकर।

नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा। सत्यकेतु तव पिता नरेसा ॥164:1॥
गुर प्रसाद सब जानिअ राजा। कहिअ न आपन जानि अकाजा ॥164:2॥

नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा = तुम्हारा नाम प्रतापभानु है, *सत्यकेतु तव पिता नरेसा* = राजा सत्यकेतु तुम्हारे पिता थे, *गुर प्रसाद सब जानिअ राजा* = हे राजन् गुरु की कृपा से मैं सब जानता हूँ, *कहिअ न आपन जानि अकाजा* = पर मेरी साधना में बाधा आती है इसलिये कहता नहीं हूँ।

ये सब बातें सुनकर राजा को लगा कि इनसे हमने झूठ बोल दिया कि हम प्रतापभानु राजा के मंत्री हैं, यह गलती हो गई। वह अपना सही नाम बताने

लगा तो तपस्वी कहने लगा हे राजा! तुम्हें कुछ बताने की आवश्यकता नहीं है। गुरु की कृपा से मैं सब जानता हूँ। हमसे कुछ भी छिपा नहीं है। तुम्हारा नाम प्रतापभानु है, महाराज सत्यकेतु तुम्हारे पिता थे। हम अपनी सर्वज्ञता को बताने लगें तो हमारी तपस्या क्षीण होती है, इस प्रकार हमारा काम बिगड़ता है, इसलिये हम सर्वज्ञ होते हुए भी कुछ बताते नहीं हैं। तुमने जो झूठा परिचय दिया, वह हमें तो अच्छा लगा, यह राजा का धर्म है, राजा अपना परिचय जहाँ-तहाँ नहीं देते हैं, यह तो तुम्हारी चतुराई है। तुम्हारी बुद्धिमानी से मेरा तुम पर बहुत प्रेम हो गया है। मैं तुमसे नाराज नहीं हूँ।

प्रेम व विश्वास से प्रभावित हो, मैंने अपने बारे में बताया

देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई ॥164:3॥
उपजि परी ममता मन मोरें। कहउँ कथा निज पूछे तोरें ॥164:4॥

देखि तात तव सहज सुधाई = हे तात! मैंने देखा कि तुम सहज ही सीधे हो, *प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई* = तुम प्रेम; विश्वास; और नीति में निपुण हो, *उपजि परी ममता मन मोरें* = इसलिये मेरे मन में ममता उत्पन्न हो गई, *कहउँ कथा निज पूछे तोरें* = और तुम्हारे पूछने पर मैंने अपनी बातें बतायी हैं।

हमने देखा कि तुम तो बहुत सीधे हो और तुममें बहुत से गुण हैं। तुम्हें हमसे प्रेम है, हमारे ऊपर विश्वास भी है और नीति में तुम तो निपुण हो ही। इन सब बातों से मुझे तुम्हारे ऊपर बहुत प्रेम उत्पन्न हो गया है। इसलिये तुम्हारे पूछने पर मैं अपनी कथा तुम्हें कह रहा हूँ।

हे राजन्! मनचाहा वरदान माँग लो, राजा हर्षित हो गया

अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं। मागु जो भूप भाव मन माहीं ॥164:5॥
सुनि सुबचन भूपति हरषाना। गहि पद बिनय कीन्हि बिधि नाना ॥164:6॥

अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं = अब मैं प्रसन्न हूँ इसमें संदेह मत करना, *मागु जो भूप भाव मन माहीं* = हे राजा! जो मन को अच्छा लगे वही माँग लो, *सुनि सुबचन भूपति हरषाना* = सुंदर वचन सुनकर राजा हर्षित हो गया, *गहि पद बिनय कीन्हि बिधि नाना* = उसके पैर पकड़कर बहुत प्रकार से विनती की।

तपस्वी कहता है हे राजन्! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, इसमें कोई संदेह नहीं है। इसलिये तुम्हारे मन में जो इच्छा हो वही वरदान माँग लो। वरदान की बात सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसे लगा ऐसा सिद्ध तपस्वी जो कहेगा वह सत्य ही हो जायेगा। तब राजा तपस्वी के चरण पकड़कर बहुत अनुनय-विनय करके कहता है।

वरदान माँगा– न कभी मरे, न कोई जीते, 100 कल्प तक राज करे

कृपासिंधु मुनि दरसन तोरें। चारि पदारथ करतल मोरें ॥164:7॥
प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी। मागि अगम बर होउँ असोकी ॥164:8॥

कृपासिंधु मुनि दरसन तोरें = हे दयासागर मुनि! आपके दर्शन से ही, *चारि पदारथ करतल मोरें* = चारों पदार्थ हमारे हाथ में आ गये, *प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी* = फिर भी हे प्रभु आपको प्रसन्न देखकर, *मागि अगम बर* = वह दुर्लभ वर माँग कर, *होउँ असोकी* = शोकरहित हो जाऊँ।

जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ ।
एकछत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ ॥दोहा 164॥

जरा मरन दुख रहित तनु = शरीर में बुढ़ापा; मृत्यु व कष्ट न आवे, *समर जितै जनि कोउ* = युद्ध में कोई जीत न सके, *एकछत्र रिपुहीन महि* = पूरी पृथ्वी में एक छत्र, अकंटक राज्य हो, *राज कलप सत होउ* = वह राज्य सौ कल्पों तक रहे।

हे कृपा के सागर मुनि महाराज! आपके दर्शन मात्र से ही मुझे अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष, चारों पदार्थों की प्राप्ति हो गई है। इसलिये अब वरदान माँगने की क्या आवश्यकता? लेकिन फिर भी हम आपको बहुत प्रसन्न देख रहे हैं, आप वरदान माँगने को कह भी रहे हैं तो मैं ऐसा दुर्लभ वरदान माँग लेता हूँ जिससे मेरे सारे शोक दूर हो जायेंगे। राजा जानता है कि यह वरदान अगम है, फिर भी माँग लेता है।

1. शरीर में बुढ़ापा न आये, यह मरे नहीं, इसमें कभी दु:ख न आवें।
2. युद्ध में हमको कोई जीत न पावे।
3. पृथ्वी पर एक छत्र, दुश्मनरहित हमारा राज्य हो।
4. 100 कल्पों तक मेरा राज्य चलता रहे।

प्रकृति के विरुद्ध कामना करने से विनाश होता है

प्रकृति का नियम है कि यह शरीर एक दिन मरेगा। समय के अनुसार बुढ़ापा भी आयेगा और शरीर में दु:ख भी हो सकते हैं। यदि व्यक्ति इसके विपरीत कामना करेगा तो या तो वह असन्तुष्ट रहेगा या फिर प्रलोभन के चक्कर में फँसकर प्रतापभानु की तरह से दुर्दशा को प्राप्त हो जायेगा। हमारा कोई शत्रु न हो, ऐसी कामना करना भी असंभव है। संसार में रहेंगे तो शत्रुता आदि दोष तो बने ही रहेंगे। एक कल्प में चार युग होते हैं, इस प्रकार 400 युगों तक राज्य का मतलब सदा ही राजा बने रहें। यह भी अप्राकृतिक कल्पना है। इस प्रकार की कल्पनायें करने से व्यक्ति का विनाश ही होता है। राजा प्रतापभानु ने अपने विनाश का भविष्य निश्चित कर लिया।

तपस्वी ने कहा ऐसा ही होगा, पर विप्रों को वश में करना होगा

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। कारन एक कठिन सुनु सोऊ ॥165:1॥
कालउ तुअ पद नाइहि सीसा। एक बिप्रकुल छाड़ि महीसा ॥165:2॥

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ= उस तपस्वी ने कहा राजन् ऐसा ही होगा, *कारन एक कठिन सुनु सोऊ*= पर उसके पीछे एक बाधा है, *कालउ तुअ पद नाइहि सीसा*= काल भी तुम्हारे सामने सिर झुकायेगा, *एक बिप्रकुल छाड़ि महीसा*= एक विप्रकुल को छोड़ करके।

तपबल बिप्र सदा बरिआरा। तिन्ह के कोप न कोउ रखवारा ॥165:3॥
जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा। तौ तुअ बस बिधि बिष्नु महेसा ॥165:4॥

तपबल बिप्र सदा बरिआरा= तप के बल से विप्र सदैव शक्तिशाली रहते हैं, *तिन्ह के कोप न कोउ रखवारा*= उनके क्रोध से रक्षा करने वाला कोई नहीं है, *जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा*= हे राजा यदि तुम विप्रों को वश में कर लो, *तौ तुअ बस बिधि बिष्नु महेसा*= तुम्हारे वश में ब्रह्मा, विष्णु व महेश हो जायेंगे।

चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई। सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई ॥165:5॥
बिप्र श्राप बिनु सुनु महिपाला। तोर नास नहिं कवनेहुँ काला ॥165:6॥

चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई= विप्रों के सामने किसी की नहीं चलती, *सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई*= मैं दोनों भुजा उठाकर यह सत्य बात कहता हूँ, *बिप्र*

श्राप बिनु सुनु महिपाला = हे राजा सुनो! विप्रों के श्राप के बिना, *तोर नास नहिं कवनेहुँ काला* = तुम्हारा किसी भी कल्प में नाश नहीं है।

राजा के असंभव वरदान की बात सुनकर कपटी मुनि बोला, जैसा तुम चाहते हो वैसा ही होगा। तुम्हारी चारों इच्छायें पूरी होंगी। पर उसके पीछे एक बाधा है, वह है विप्र लोग नाराज न हों, क्रोध न करें, तुम्हें श्राप न दें तो काम बन जायेगा। विप्र यदि वश में हो जायें तो 100 कल्प के बाद भी काल तुम्हारे सामने सिर नहीं उठायेगा। काल के अधीन संसार है, तुम्हारे अधीन काल होगा। फिर वह दोनों भुजायें उठाकर कहता है, हे राजन् मेरी यह बात सत्य है कि विप्रों के श्राप के बिना तुम्हारा नाश किसी काल में नहीं होगा।

विप्र वह जिसमें बुद्धि का बल हो, तप बल हो, शास्त्र का ज्ञान हो

कपटी मुनि विप्रों की महिमा का भी वर्णन करता है जो सत्य है। विप्र वह है जो तप करे। तप के बल से ब्राह्मण सदा बलवान् रहते हैं। उनके सामने किसी की नहीं चलती है। वे सबसे शक्तिशाली हैं, क्योंकि उनके पास बुद्धि का बल भी है। बुद्धि के बल के सामने सारे बल कमजोर हैं। ऐसे तपस्वी, बुद्धिमान, शास्त्र के ज्ञाता विप्रों को वश में करने का वास्तविक आशय है कि उनके द्वारा बताये गये धर्म के मार्ग पर चलें। यदि ऐसा कर लिया तो सारे देवता भी उस व्यक्ति से प्रसन्न होते हैं, उनकी कृपा सदैव बनी रहती है। इसे कहते हैं देवता हमारे वश में हैं।

मनचाहा वरदान पाकर राजा प्रसन्न हो गया

हरषेउ राउ बचन सुनि तासू। नाथ न होइ मोर अब नासू ॥165:7॥
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना। मो कहुँ सर्ब काल कल्याना ॥165:8॥

हरषेउ राउ बचन सुनि तासू = राजा उसकी बातें सुनकर हर्षित हो गया, *नाथ न होइ मोर अब नासू* = हे नाथ अब मेरा नाश नहीं होगा, *तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना* = हे कृपानिधान प्रभु आपकी कृपा से, *मो कहुँ सर्ब काल कल्याना* = मेरा सभी कल्पों में कल्याण है।

राजा उस कपटी मुनि के वचन सुनकर, बहुत प्रसन्न होकर कहने लगा कि हे नाथ! अब मेरा नाश कभी नहीं होगा। आपकी कृपा से मेरा सदा कल्याण

ही होगा। यदि व्यक्ति को सच्चा गुरु मिल जाये तो वह शिष्य को आत्मज्ञान करा देगा। शिष्य सदैव आनंद से रहेगा। उसका सदा कल्याण होगा। पर यहाँ पर राजा प्रतापभानु को कपटी मुनि गुरु के रूप में मिला है। राजा भी उससे अनुचित कामनायें कर रहा है। राजा की प्रसन्नता कुछ समय के लिये ही है।

कपटी मुनि बातें गुप्त रखने की चेतावनी देता है

एवमस्तु कहि कपट मुनि बोला कुटिल बहोरि ।
मिलब हमार भुलाब निज कहहु न हमहि न खोरि ॥दोह 165॥

एवमस्तु कहि = ऐसा ही होगा कहकर, *कपट मुनि बोला कुटिल बहोरि* = वह कपटी मुनि फिर से बोलता है, *मिलब हमार* = हमारे मिलने की बात, *भुलाब निज* = तुम अपने रास्ता भूलने की बात, *कहहु न* = किसी से कहना मत, *हमहि न खोरि* = कहने से काम बिगड़ जायेगा फिर हमारा दोष नहीं है।

कपटी मुनि प्रतापभानु की विनती सुनकर बोला, अच्छा ऐसा ही होगा। फिर चेतावनी देकर कहता है कि तुम मेरे मिलने की तथा अपने राह भूल जाने की बात किसी से कहना मत। यदि कहोगे तो तुम्हारी हानि हो जायेगी, फिर हमें दोषी मत ठहराना। कपटी मुनि को भय है कि यदि राजा ये सब बातें अपने बुद्धिमान मंत्री को बतायेगा, तो वह सही सलाह देकर, इसे विनाश से बचा लेगा।

बात को प्रकट करने या विप्र के श्राप से ही तुम्हारी मृत्यु होगी

तातें मैं तोहि बरजउँ राजा। कहें कथा तव परम अकाजा ॥166:1॥
छठें श्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी ॥166:2॥

तातें मैं तोहि बरजउँ राजा = हे राजन्! मैं तुम्हें इसलिये मना करता हूँ, *कहें कथा तव परम अकाजा* = ये सब बातें कहोगे तो तुम्हारा ही बहुत नुकसान है, *छठें श्रवन यह परत कहानी* = छठे कान में यह बात पड़ते ही, *नास तुम्हार* = तुम्हारा नाश हो जायेगा, *सत्य मम बानी* = मेरा यह वचन सत्य है।

यह प्रगटें अथवा द्विजश्रापा। नास तोर सुनु भानुप्रतापा ॥166:3॥
आन उपायँ निधन तव नाहीं। जौं हरि हर कोपहिं मन माहीं ॥166:4॥

यह प्रगटें = ये बातें खुल जाने से, *अथवा द्विजश्रापा* = या द्विजों के श्राप से, *नास तोर* = तुम्हारा नाश होना है, *सुनु भानुप्रतापा* = हे भानुप्रताप मेरी ये बातें सुनो, *आन उपायँ निधन तव नाहीं* = अन्य किसी भी तरीके से तुम्हारी मृत्यु नहीं होनी है, *जौं हरि हर* = यदि विष्णु या शिव भी, *कोपहिं मन माहीं* = मन में क्रोध करें।

मुनि कहता है कि दो लोग तो हम हैं, हमारे चार कान हो गये, अब किसी तीसरे व्यक्ति ने यह बात सुनी, तो दो कान उसके मिलाकर छः कान हो गये। छः कानों में बात पहुँचते ही तुम्हारा विनाश हो जायेगा, मेरी यह बात सत्य जानो। तुम्हारी मृत्यु का दूसरा कारण विप्रों का श्राप है। तीसरा कोई उपाय नहीं है जिससे तुम मारे जाओ। भगवान शंकर या विष्णु भी यदि तुम्हारे ऊपर नाराज हो जायें तो वे भी तुम्हारा विनाश नहीं कर सकते हैं।

बात हम गुप्त रखेंगे, पर विप्रों के श्राप से बचने का उपाय बतायें

सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा। द्विज गुर कोप कहहु को राखा ॥166:5॥
राखइ गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता ॥166:6॥

सत्य नाथ = आप बिल्कुल ठीक कहते हैं, *पद गहि नृप भाषा* = चरणों में प्रणाम करके राजा बोला, *द्विज गुर कोप* = विप्र या गुरु के क्रोध से, *कहहु को राखा* = कौन रक्षा कर सकता है? *राखइ गुर जौं कोप बिधाता* = यदि भगवान नाराज हो जायें तो गुरु बचा सकते हैं, *गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता* = गुरु का ही विरोध करे तो संसार में उसकी रक्षा कोई नहीं कर सकता है।

जौं न चलब हम कहे तुम्हारें। होउ नास नहिं सोच हमारें ॥166:7॥
एकहिं डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा ॥166:8॥

जौं न चलब हम कहे तुम्हारें = यदि मैं आपके बताये मार्ग पर नहीं चलता, *होउ नास* = मेरा विनाश हो जायेगा, *नहिं सोच हमारें* = इसका हमें शोक नहीं होगा, *एकहिं डर डरपत मन मोरा* = पर मेरा मन तो एक ही डर से डर रहा है, *प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा* = हे प्रभु! विप्रों का श्राप बहुत भयानक होता है।

होहिं बिप्र बस कवन बिधि कहहु कृपा करि सोउ ।
तुम्ह तजि दीनदयाल जिन हितू न देखउँ कोउ ॥दोहा 166॥

होहिं बिप्र बस कवन बिधि = ये विप्र किस प्रकार से वश में हो सकते हैं, *कहहु कृपा करि सोउ* = कृपा करके वह उपाय भी बताइये, *तुम्ह तजि दीनदयाल* = हे दीनों पर दया करने वाले; आपके अतिरिक्त, *निज हितू* = मेरा हित करने वाला, *न देखउँ कोउ* = मैं किसी को नहीं देख पाता हूँ।

कपटी मुनि की बातें राजा की समझ में आ गयीं। उसने चरण पकड़ कर प्रणाम किया और कहा कि आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। भगवान के क्रोध से तो गुरु बचा लेते हैं, परंतु यदि गुरु ने या विप्र ने क्रोध किया तो भगवान भी बचाने वाले नहीं हैं। प्रतापभानु कपटी मुनि को अपना गुरु मानते हुए कहता है कि यदि हम आपके कहने पर नहीं चलते तो हमारा नाश हो जायेगा। इसमें हम शोक भी नहीं करेंगे क्योंकि गलती तो हमारी रहेगी। बात नहीं कहना तो हमारे बस में है। पर ये विप्र तो छोटी-बड़ी किसी भी बात पर नाराज होकर श्राप दे सकते हैं। ये हमारे वश में नहीं हैं। इनका श्राप भी भयंकर होता है, उसी का हमें डर लग रहा है। अब राजा दया की भिक्षा माँगते हुए कहता है कि हमारे सबसे बड़े हितैषी आप ही हैं। विप्रों के श्राप से बचने का उपाय बताइये।

सरल उपाय एक है, पर बाधा है, मुझे तुम्हारे घर आना होगा

सुनु नृप बिबिध जतन जग माहीं। कष्टसाध्य पुनि होहिं कि नाहीं ॥167:1॥
अहइ एक अति सुगम उपाई। तहाँ परंतु एक कठिनाई ॥167:2॥

सुनु नृप = हे राजा सुनो, *बिबिध जतन जग माहीं* = संसार में उपाय तो बहुत हैं, *कष्टसाध्य* = पर वे कठिन हैं, *पुनि होहिं कि नाहीं* = फिर उनसे विप्र वश में आयें या न भी आयें, *अहइ एक अति सुगम उपाई* = हाँ एक उपाय बहुत सरल है, *तहाँ परंतु एक कठिनाई* = परंतु उसमें भी एक कठिनाई है।

मम आधीन जुगुति नृप सोई। मोर जाब तव नगर न होई ॥167:3॥
आजु लगें अरु जब तें भयऊँ। काहू के गृह ग्राम न गयऊँ ॥167:4॥
जौं न जाउँ तव होइ अकाजू। बना आइ असमंजस आजू ॥167:5॥

मम आधीन जुगुति नृप सोई = हे राजन्! वह उपाय तो मेरे हाथ में है, *मोर जाब तव नगर न होई* = पर मैं तुम्हारे नगर में जा नहीं सकता, *आजु लगें* = आज तक, *अरु जब तें भयऊँ* = जब से पैदा हुआ हूँ तब से, *काहू के गृह ग्राम*

न गयऊँ = किसी के घर या गाँव नहीं गया हूँ, *जौं न जाउँ* = यदि नहीं जाता हूँ, *तव होइ अकाजू* = तुम्हारा काम बिगड़ता है, *बना आइ असमंजस आजू* = यही असमंजस आज मेरे सामने आ गया है।

हे राजन्! संसार में विप्रों को वश में करने के अनेक साधन हैं। पर उनमें दो बाधाये हैं। पहला यज्ञ इत्यादि करवाना, बहुत कष्ट साध्य हैं,संदेह भी रहता है कि उसके बाद भी वे वश में हों या न हों। परंतु एक निश्चित उपाय है और सरल भी है। पर उसमें एक कठिनाई है, जब मैं स्वयं तुम्हारे घर जाकर तुम्हारी सहायता करूँ तब काम बनेगा। सृष्टि जब से शुरू हुई तभी मैं पैदा हुआ और आज तक मैं न तो किसी के घर गया, न किसी के गाँव। मेरा तुम्हारे घर न जा पाना ही कठिनाई है। मेरे लिये असमंजस है, यदि घर नहीं जाते तो तुम्हारा कल्याण नहीं, और यदि जाते हैं तो मेरी साधना कटती है।

राजा प्रार्थना करता है–मेरे लिये कष्ट सहकर, घर चलिये

सुनि महीस बोलेउ मृदु बानी। नाथ निगम असि नीति बखानी ॥167:6॥
बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं ॥167:7॥
जलधि अगाध मौलि बह फेनू। संतत धरनि धरत सिर रेनू ॥167:8॥

सुनि महीस = ये बातें सुनकर राजा, *बोलेउ मृदु बानी* = मधुर वाणी में कहता है, *नाथ निगम असि नीति बखानी* = हे नाथ वेदों में ऐसी नीति कही गयी है, *बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं* = बड़े लोग छोटे पर स्नेह करते हैं, *गिरि निज सिरनि सदा* = जैसे पर्वत सदैव अपने सिर पर, *तृन धरहीं* = घास को धारण किये रहते हैं, *जलधि अगाध* = समुद्र भी कितना विशाल है, *मौलि बह फेनू* = पर उसके ऊपर फेन बहता रहता है, *संतत धरनि धरत सिर रेनू* = पृथ्वी अपने सिर पर सदा धूल को धारण किये रहती है।

अस कहि गहे नरेस पद स्वामी होहु कृपाल ।
मोहि लागि दुख सहिअ प्रभु सज्जन दीनदयाल ॥दोहा 167॥

अस कहि गहे नरेस पद = ऐसा कहकर राजा ने चरण पकड़कर कहा, *स्वामी होहु कृपाल* = हे स्वामी आप कृपा करिये, *मोहि लागि दुख सहिअ प्रभु* = हे प्रभु मेरे लिये आप यह कष्ट सहिये, *सज्जन दीनदयाल* = आप संत हैं; दीनदयालु हैं।

राजा यह बात सुनकर बहुत ही मृदु वाणी में प्रार्थना करने लगा कि वेदों में कहा गया है कि बड़े लोग छोटों पर स्नेह करते हैं, वह तीन उदाहरण भी देता है–

1. पर्वत इतने विशाल हैं लेकिन उनके सिर पर घास-फूस जम आती है, तो वे जमने देते हैं। इतनी छोटी चीजों को अपने सिर पर रखना उन्हें आदर देता है।
2. समुद्र कितना विशाल है, तो भी उसकी सतह पर फेन बहता रहता है, उसको भी सहन करना समुद्र की उदारता है।
3. पृथ्वी के ऊपर इतनी धूल छायी रहती है पर वह धूल को सहन करती है।

पर्वत, समुद्र व पृथ्वी इतने महान् होते हुए भी अपने से बहुत छोटों को शरण देते हैं, उन पर कृपा करते हैं। ऐसा कहकर प्रतापभानु ने उस कपटी के चरण पकड़ लिये और प्रार्थना करने लगा कि आप भी इसी प्रकार से कृपा करके हमारे लिये कष्ट सहिये, हमारे नगर में चलकर, कार्य को पूरा करवायें।

राजा को वश में देख, तपस्वी कहता है, तुम्हारा काम अवश्य करूँगा

जानि नृपहि आपन आधीना। बोला तापस कपट प्रबीना ॥168:1॥
सत्य कहउँ भूपति सुनु तोही। जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही ॥168:2॥

जानि नृपहि आपन आधीना = राजा को अपने वश में जानकर, *बोला तापस कपट प्रबीना* = कपट करने में प्रवीण तपस्वी कहता है, *सत्य कहउँ भूपति सुनु तोही* = हे राजा! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, *जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही* = मेरे लिये संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

अवसि काज मैं करिहउँ तोरा। मन तन बचन भगत तैं मोरा ॥168:3॥
जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ। फलइ तबहिं जब करिअ दुराऊ ॥168:4॥

अवसि काज मैं करिहउँ तोरा = मैं तुम्हारा काम अवश्य करूँगा, *मन तन बचन भगत तैं मोरा* = क्योंकि तुम मन; शरीर और वाणी से मेरे भक्त हो, *जोग जुगुति तप मंत्र* = योग; युक्ति; तप और मंत्र, *प्रभाऊ फलइ तबहिं* = का प्रभाव तभी फल देता है, *जब करिअ दुराऊ* = जब वे छिपा कर किये जाते हैं।

कपट करने में प्रवीण तपस्वी ने जब अच्छी तरह परख लिया कि यह राजा वही करेगा जो मैं कहूँगा, तब कहता है कि मैं तुम्हारा काम अवश्य करूँगा।

मेरे लिये संसार में कुछ भी प्राप्त करना दुर्लभ नहीं है। तुम मन, वाणी व शरीर से, मायने पूरी तरह से मेरे भक्त हो। इसलिये तुम्हारे लिये मैं सब करने को तैयार हूँ। यहाँ पर चार बातें कहीं– 1. योग, 2. युक्ति, मायने कोई चालाकी का कार्य, 3. मंत्र का जप और 4. तपस्या– इनको छिपा कर करना होता है, वे तभी फलदायी होती हैं। कपटी के कहने का आशय है, विप्रों को वश में करने की युक्ति किसी को मत बताना, नहीं तो कार्य पूरा नहीं होगा।

मैं भोजन बनाऊँगा, तुम विप्रों को खिलाओ, वे वश में होते जायेंगे

जौं नरेस मैं करौं रसोई। तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई ॥168:5॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई। सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई ॥168:6॥

जौं नरेस मैं करौं रसोई = हे राजा! यदि रसोई में भोजन मैं बनाऊँ, *तुम्ह परुसहु* = उस भोजन को तुम अपने हाथ से परोसो, *मोहि जान न कोई* = मुझे कोई जानने न पावे, *अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई* = उस अन्न को जो-जो खायेगा, *सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई* = वही-वही तुम्हारी आज्ञा का पालन करेगा; मायने तुम्हारा विरोध नहीं करेगा।

पुनि तिन्ह के गृह जेवँइ जोऊ। तव बस होइ भूप सुनु सोऊ ॥168:7॥
जाइ उपाय रचहु नृप एहू। संबत भरि संकलप करेहू ॥168:8॥

पुनि तिन्ह के गृह जेवँइ जोऊ = फिर उन विप्रों के घर में जो भोजन करेगा, *तव बस होइ भूप सुनु सोऊ* = हे राजा सुनो वह भी तुम्हारे वश में हो जायेगा, *जाइ उपाय रचहु नृप एहू* = हे राजन् अब तुम जाकर वही उपाय करो, *संबत भरि संकलप करेहू* = वर्ष भर भोजन कराने का संकल्प लो।

नित नूतन द्विज सहस सत बरेहु सहित परिवार ।
मैं तुम्हरे संकलप लगि दिनहिं करबि जेवनार ॥दोहा 168॥

नित नूतन द्विज सहस सत = नित्य नये सात हजार विप्रों को, *बरेहु सहित परिवार* = सपरिवार आमंत्रित करना, *मैं तुम्हरे संकलप लगि* = मैं तुम्हारा संकल्प पूरा होने तक, *दिनहिं करबि जेवनार* = प्रतिदिन इतना भोजन तैयार कर दूँगा।

एहि बिधि भूप कष्ट अति थोरें। होइहहिं सकल बिप्र बस तोरें ॥169:1॥
करिहहिं बिप्र होम मख सेवा। तेहिं प्रसंग सहजेहिं बस देवा ॥169:2॥

एहि बिधि भूप = इस प्रकार हे राजन्, *कष्ट अति थोरें* = बहुत कम मेहनत से, *होइहहिं सकल बिप्र बस तोरें* = सारे विप्र तुम्हारे वश में हो जायेंगे, *करिहहिं बिप्र* = ये विप्र जब करेंगे, *होम मख सेवा* = हवन; यज्ञ; सेवा, *तेहिं प्रसंग* = उनके ऐसा करने से, *सहजेहिं बस देवा* = देवता भी वश में हो जायेंगे।

कपटी मुनि विप्रों को वश में करने की पूरी योजना इस प्रकार बताता है–

1. मैं तुम्हारी रसोई में आकर भोजन अपने हाथ से बनाऊँगा।
2. उस भोजन को तुम अपने हाथ से परोसकर विप्रों को खिलाओ।
3. विप्रों को खिलाने का कारण व भोजन बनाने वाले का नाम गुप्त रहे।
4. इस भोजन को जो-जो विप्र खायेगा वह तुम्हारा आज्ञाकारी होता जायेगा, वह न विरोध करेगा न श्राप देगा।
5. एक वर्ष तक प्रतिदिन सात हजार विप्रों को परिवार सहित निमंत्रित करके भोजन कराने का संकल्प करो।
6. जो विप्र यह भोजन करके जायेंगे, उनके घरों में भी जो विप्र भोजन करेंगे वे भी तुम्हारे वश में होंगे, तुम्हें कभी श्राप नहीं देंगे।
7. इस प्रकार सारे विप्र तो वश में हो ही जायेंगे, फिर ये लोग जब देवताओं का हवन, यज्ञ, पूजन करेंगे, तो वे देवता भी तुम्हारे वश में होते जायेंगे।

राजा का पुरोहित व कपटी मुनि आपस में वेष बदलकर काम करेंगे

और एक तोहि कहउँ लखाऊ। मैं एहिं बेष न आउब काऊ ॥169:3॥
तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया। हरि आनब मैं करि निज माया ॥169:4॥

और एक तोहि = मैं तुम्हें एक और, *कहउँ लखाऊ* = पहचान बताता हूँ, *मैं एहिं बेष* = मैं इस वेष में, *न आउब काऊ* = तुम्हारे यहाँ नहीं आऊँगा, *तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया* = हे राजा! मैं तुम्हारे पुरोहित को, *हरि आनब* = हरण कर लाऊँगा, *मैं करि निज माया* = मैं अपनी माया से।

तपबल तेहि करि आपु समाना। रखिहउँ इहाँ बरष परवाना ॥169:5॥
मैं धरि तासु बेष सुनु राजा। सब बिधि तोर सँवारब काजा ॥169:6॥

तपबल तेहि करि आपु समाना = तपस्या के बल से उसे, अपने रूप का बनाकर, *रखिहउँ इहाँ बरष परवाना* = एक वर्ष तक यहाँ रखूँगा, *मैं धरि तासु*

बेष सुनु राजा = हे राजा सुनो! मैं उसका वेष बनाकर, *सब बिधि तोर सँवारब काजा* = सब प्रकार से तुम्हारा काम सिद्ध करूँगा।

गै निसि बहुत सयन अब कीजे। मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे ॥169:7॥
मैं तपबल तोहि तुरग समेता। पहुँचैहउँ सोवतहि निकेता ॥169:8॥

गै निसि बहुत = रात बहुत बीत गयी है, *सयन अब कीजे* = अब सो जाओ, *मोहि तोहि भूप भेंट* = हे राजा! अब मेरा तुमसे मिलन, *दिन तीजे* = आज से तीसरे दिन होगा, *मैं तपबल तोहि* = मैं तप के बल से तुम्हें, *तुरग समेता* = घोड़ा सहित, *पहुँचैहउँ सोवतहि निकेता* = सोते ही में घर पहुँचा दूँगा।

मैं आउब सोइ बेषु धरि पहिचानेहु तब मोहि ।
जब एकांत बोलाइ सब कथा सुनावौं तोहि ॥दोहा 169॥

मैं आउब सोइ बेषु धरि = मैं उसी पुरोहित के वेष में आऊँगा, *पहिचानेहु तब मोहि* = मुझे तुम तब पहचान लेना, *जब एकांत बोलाइ* = जब मैं तुम्हें अकेले में बुलाकर, *सब कथा सुनावौं तोहि* = ये सारी बातें बताऊँगा।

राजा के यहाँ तपस्वी पहुँचेगा कैसे व किस वेष में? राजा अपने घर कैसे जायेगा? उसकी योजना इस प्रकार है:

1. माया के बल से तुम्हारे पुरोहित का हरण करेंगे, यहाँ लायेंगे।
2. तपस्या के बल से पुरोहित को अपने जैसे तपस्वी के वेष में बनाकर यहाँ एक वर्ष तक रखेंगे।
3. उधर मैं पुरोहित का रूप धारण कर लूँगा। इस प्रकार आपस में अदला-बदली करके एक वर्ष तक हम तुम्हारा सब कार्य पूरा करेंगे।
4. दो दिन बाद मैं तुम्हारे पुरोहित के वेष में आकर, तुम्हें अकेले में बुलाकर जब ये सब बातें कहूँगा तब तुम समझ जाना कि हाँ! मैं ही हूँ।
5. रात हो गई है, योजना पूरी बन गयी है, अब तुम सो जाओ। तप के बल से मैं तुम्हें घोड़े सहित सोते-सोते ही घर पहुँचा दूँगा।

योजना पूरी, राजा गहरी नींद में सो गया, मुनि चिंता में है

सयन कीन्ह नृप आयसु मानी। आसन जाइ बैठ छलग्यानी ॥170:1॥
श्रमित भूप निद्रा अति आई । सो किमि सोव सोच अधिकाई ॥170:2॥

सयन कीन्ह नृप आयसु मानी = आज्ञा मानकर राजा जाकर सो गया, *आसन जाइ बैठ छलग्यानी* = कपटी मुनि जो छल से ज्ञानी बन रहा था वह अपने आसन पर फिर बैठ गया, *श्रमित भूप* = राजा बहुत थका हुआ था, *निद्रा अति आई* = उसे शीघ्र ही गहरी निद्रा आ गई, *सो किमि सोव* = पर कपटी कैसे सो सकता था? *सोच अधिकाई* = उसे बहुत चिंता हो रही थी।

कपटी मुनि ने सारी योजना राजा को समझाकर कहा कि अब सो जाओ। राजा तो बहुत थका हुआ था ही, इसलिये उसे शीघ्र ही गहरी निद्रा आ गई। मुनि छल से बहुत ज्ञानी व तपस्वी बन रहा था, वह अपने आसन पर फिर बैठ गया। वह राजा को दिखा रहा था कि हर समय तपस्या ही करता रहता है, पर वास्तव में वह कालकेतु राक्षस की प्रतीक्षा कर रहा था। उसे आगे की योजना की चिंता सता रही थी।

कालकेतु राक्षस आता है, जो सूअर बनकर राजा को यहाँ लाया था

कालकेतु निसिचर तहँ आवा। जेहिं सूकर होइ नृपहि भुलावा ॥170:3॥
परम मित्र तापस नृप केरा। जानइ सो अति कपट घनेरा ॥170:4॥

कालकेतु निसिचर तहँ आवा = कालकेतु नाम का राक्षस वहाँ आ गया, *जेहिं सूकर होइ* = जिसने सूअर का वेष बनाकर, *नृपहि भुलावा* = राजा को भटकाया था, *परम मित्र तापस नृप केरा* = वह तपस्वी राजा का परम मित्र था, *जानइ सो अति कपट घनेरा* = वह खूब छल-प्रपंच जानता था।

उसी समय वहाँ पर कालकेतु नाम का राक्षस आ गया। यही राक्षस वन में छल से विशाल सूअर का वेष बनाकर राजा को भटकाते हुए इस कपटी मुनि के आश्रम तक ले आया था। वह इस प्रकार की बहुत सारी माया जानता था और कपटी मुनि का परम मित्र था।

कालकेतु का परिवार बहुत दुष्ट था, जिसे प्रतापभानु ने मारा था

तोहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अति अजय देव दुखदाई ॥170:5॥
प्रथमहिं भूप समर सब मारे। बिप्र संत सुर देखि दुखारे ॥170:6॥

तेहि के सत सुत = उसके सौ पुत्र थे, *अरु दस भाई* = और दस भाई थे, *खल अति अजय* = किसी से न जीते जाने वाले थे, *देव दुखदाई* = देवताओं को दु:ख देने वाले थे, *प्रथमहिं भूप समर सब मारे* = उन सबको राजा ने युद्ध में मार दिया था, *बिप्र संत सुर देखि दुखारे* = विप्रों, संतों व देवताओं को दु:खी देखकर।

कालकेतु राक्षस के सौ पुत्र और दस भाई थे। ये सब बहुत दुष्ट थे। विप्रों, संतों व सज्जन लोगों को बहुत परेशान करते थे। राजा प्रतापभानु ने युद्ध में इन सबको मार दिया था, कालकेतु बच गया था।

कालकेतु व कपटी मुनि ने मिलकर यह उपाय रचा

तेहिं खल पाछिल बयरु सँभारा। तापस नृप मिलि मंत्र बिचारा ॥170:7॥
जेहिं रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी बस न जान कछु राऊ ॥170:8॥

तेहिं खल = उस दुष्ट ने, *पाछिल बयरु सँभारा* = पिछला वैर स्मरण करके, *तापस नृप मिलि* = तपस्वी राजा से मिलकर, *मंत्र बिचारा* = योजना बनाई, *जेहिं रिपु छय* = जिस प्रकार शत्रु का नाश हो, *सोइ रचेन्हि उपाऊ* = वही उपाय रचा, *भावी बस न जान कछु राऊ* = भविष्य में यही होना निश्चित था इसलिये राजा कुछ समझ नहीं पाया।

राजा प्रतापभानु से अपनी वही शत्रुता याद करके यह निशाचर तपस्वी बने राजा से मिल गया। उसने कहा होगा कि प्रतापभानु ने तुम्हारा राज्य छीन लिया और हमारा परिवार नष्ट कर दिया है। युद्ध में तो हम-तुम इससे जीत नहीं सकते हैं। इसके विनाश के लिये कुछ छल-प्रपंच करना होगा। तुम तो कपटी मुनि बनकर राजा को विप्रों को भोजन कराने के लिये तैयार कर लेना, फिर तुम्हें कुछ नहीं करना है, हम जाकर बाकी सब काम कर देंगे।

होनहार बहुत बलवान् है

राजा प्रतापभानु का विनाश काल आ गया था, होनहार के कारण वह उन दोनों शत्रुओं को पहचान नहीं पाया। यह नियम है कि समृद्धि सदा एक-सी किसी की नहीं रही है। उतार चढ़ाव तो आता ही रहता है। चक्रवर्ती राजा का भी विनाश होता है।

तेजस्वी शत्रु अकेले हो तो भी उसे छोटा न समझें

रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु ।
अजहुँ देत दुख रबि ससिहि सिर अवसेषित राहु ॥दोहा 170॥

रिपु तेजसी = तेजस्वी शत्रु, *अकेल अपि* = अकेला भी हो, *लघु करि गनिअ न ताहु* = तो भी उसे छोटा नहीं समझना चाहिये, *अजहुँ देत दुख रबि ससिहि* = आज भी दु:ख देता है सूर्य और चन्द्रमा को, *सिर अवसेषित राहु* = राहु जिसका सिर मात्र बचा था।

यह दोहा नीति वचन है। अगर शत्रु तेजस्वी है, राजा भले ही वह अकेला हो तब भी उसे छोटा नहीं समझना चाहिये। यहाँ पौराणिक उदाहरण देते हैं। समुद्र मंथन के समय जब देवताओं को अमृत पिलाया जा रहा था, राहु कपट से देवता बनकर वहाँ पहुँच गया। जब तक उसके हाथ में अमृत आया सूर्य देव व चंद्र देव ने बता दिया, यह तो निशाचर है। इस बीच झट से राहु अमृत पी गया। तब तक विष्णु भगवान ने अपना चक्र चला दिया, उसका सिर कट कर धड़ से अलग हो गया। सिर हो गया राहु, धड़ हो गया केतु। लेकिन अमृत पी लेने के कारण से मरा नहीं। राहु, सूर्य व चन्द्रमा से आज भी अपना बदला लेता है, जब भी ग्रहण पड़ता है राहु उन्हें निगल जाता है। कथा का प्रयोजन यह है कि दुर्बल शत्रु भी समय एवं शक्ति पाकर, कष्ट दे सकता है, विनाश कर सकता है।

तपस्वी ने कालकेतु को सारी बातें बताई

तापस नृप निज सखहि निहारी। हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी ॥171:1॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई। जातुधान बोला सुख पाई ॥171:2॥

तापस नृप = तपस्वी राजा, *निज सखहि निहारी* = अपने मित्र को देखकर, *हरषि मिलेउ उठि* = प्रसन्नता से उठकर मिला, *भयउ सुखारी* = सुखी हो गया, *मित्रहि कहि सब कथा सुनाई* = उसने मित्र को सारी बातें बतायीं, *जातुधान बोला सुख पाई* = तब राक्षस आनंदित होकर बोला।

कपटी मुनि ने देखा कि कालकेतु आ गया है, बहुत प्रसन्नता के साथ मिलकर सूचना दी कि तुमने जो कार्य हमें सौंपा था, वह हमने पूरा कर लिया है।

प्रतापभानु सब प्रकार से अपने चंगुल में फँस गया है, अब तुम जो करना चाहते हो सो करो। सारी बातें सुनकर कालकेतु बहुत खुश हुआ।

राजा के विनाश का आश्वासन दे, कालकेतु चल देता है

अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा। जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा ॥171:3॥
परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई। बिनु औषध बिआधि बिधि खोई ॥171:4॥

अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा = हे राजन! अब शत्रु हमारे वश में है, *जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा* = यदि तुमने मेरे कहे अनुसार ही कार्य किया है, *परिहरि सोच* = चिंता त्याग दो, *रहहु तुम्ह सोई* = तुम आराम से सोओ, *बिनु औषध* = बिना दवा के ही, *बिआधि बिधि खोई* = बिधाता ने रोग दूर कर दिया है।

कुल समेत रिपु मूल बहाई। चौथें दिवस मिलब मैं आई ॥171:5॥
तापस नृपहि बहुत परितोषी। चला महाकपटी अतिरोषी ॥171:6॥

कुल समेत रिपु = कुलसहित शत्रु को, *मूल बहाई* = जड़ से उखाड़कर फिर बहाकर, *चौथें दिवस मिलब मैं आई* = चौथे दिन मैं आकर मिलूँगा, *तापस नृपहि बहुत परितोषी* = तपस्वी राजा को खूब दिलासा देकर, *चला महाकपटी अतिरोषी* = वह मायावी निशाचर अत्यन्त क्रोध में भरकर चल दिया।

कालकेतु बोला, हे राजन्! हमारा शत्रु प्रतापभानु अब चंगुल में फँस गया है। चिंता मत करो। तुम जाकर सो जाओ। विधाता ने तो बिना औषधि के ही रोग दूर कर दिया है। बिना युद्ध के ही शत्रु को पराजित कर देंगे। तीन दिन में प्रतापभानु को कुल सहित समाप्त करके चौथे दिन आकर तुमको बतायेंगे कि सारा काम हो गया है। इस प्रकार तपस्वी बने राजा को खूब तसल्ली देकर वह मायावी राक्षस बहुत क्रोध में भरकर आगे का कार्य करने वहाँ से चल देता है।

कालकेतु रात में ही राजा को घोड़े सहित घर पहुँचा देता है

भानुप्रतापहि बाजि समेता। पहुँचाएसि छन माझ निकेता ॥171:7॥
नृपहि नारि पहिं सयन कराई। हय गृहँ बाँधेसि बाजि बनाई ॥171:8॥

भानुप्रतापहि बाजि समेता = उसने भानुप्रताप राजा को घोड़े सहित, *पहुँचाएसि छन माझ निकेता* = क्षण मात्र में ही घर पहुँचा दिया, *नृपहि नारि पहिं सयन कराई* = राजा को रानी के पास सुलाकर, *हय गृहँ बाँधेसि बाजि बनाई* = घोड़े को अच्छी तरह से घुड़साल में बाँध दिया।

प्रतापभानु राजा को घोड़े सहित सोते में ही, कालकेतु ने उठाया और क्षण भर में राजधानी पहुँच गया। राजा को तो रनिवास में जहाँ रानी सो रही थी, सुला दिया और घोड़े को घुड़साल में ले जाकर अच्छे से बाँध दिया।

पुरोहित को उठाकर गुफा में छिपाया, स्वयं पुरोहित बन गया

राजा के उपरोहितहि हरि लै गयउ बहोरि ।
लै राखेसि गिरि खोह महुँ मायाँ करि मति भोरि ॥दोहा 171॥

राजा के उपरोहितहि = राजा के उपरोहित को, *हरि लै गयउ बहोरि* = फिर उठा लाया, *लै राखेसि गिरि खोह महुँ* = उसे पर्वत की गुफा में लाकर रखा, *मायाँ करि मति भोरि* = माया से पुरोहित की बुद्धि को भी खराब कर दिया।

आपु बिरचि उपरोहित रूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा ॥172:1॥

आपु बिरचि उपरोहित रूपा = उसने पुरोहित का रूप बनाकर, *परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा* = उसके सुंदर बिस्तर पर जाकर लेट गया।

राजा के पुरोहित को सोते में ही उठाकर, पर्वत की गुफा में ले जाकर बंद कर दिया। अपनी माया से पुरोहित की बुद्धि को इस प्रकार कर दिया कि उसे पता ही न चले हम कहाँ हैं। स्वयं पुरोहित का वेष बनाकर, उसी की सेज पर जाकर लेट गया, जिससे सब लोग उसे ही पुरोहित समझने लगें। इस प्रकार सारा काम रात में ही कर दिया।

राजा सूर्योदय से पहले ही वन गया, दोपहर में लौटा, नगर में खुशी

जागेउ नृप अनभएँ बिहाना। देखि भवन अति अचरजु माना ॥172:2॥
मुनि महिमा मन महुँ अनुमानी। उठेउ गवँहिं जेहिं जान न रानी ॥172:3॥

जागेउ नृप = राजा की आँख खुली, *अनभएँ बिहाना* = अभी सूर्योदय के पूर्व की स्थिति भी नहीं हुई थी, *देखि भवन अति अचरजु माना* = अपने को घर में देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ, *मुनि महिमा मन महुँ अनुमानी* = उसने मुनि की शक्ति का मन में अनुमान लगा लिया, *उठेउ गवँहिं* = जाने के लिये धीरे से उठा, *जेहिं जान न रानी* = जिससे रानी को पता न चले।

कानन गयउ बाजि चढ़ि तेहीं। पुर नर नारि न जानेउ केहीं ॥172:4॥
गएँ जाम जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा ॥172:5॥

कानन गयउ बाजि चढ़ि तेहीं = फिर उसी घोड़े पर चढ़कर वन में चला गया, *पुर नर नारि न जानेउ केहीं* = नगर के किसी भी स्त्री-पुरुष को पता ही नहीं चला, *गएँ जाम जुग* = जब दो घड़ी दिन निकल गया मायने दोपहर में, *भूपति आवा* = राजा वापस नगर में आ गया, *घर घर उत्सव बाज बधावा* = घर-घर उत्सव होने लगे और बधावा बजने लगा।

सूर्योदय के पूर्व की स्थिति को 'विहान' कहते हैं, 'अनभएँ' मायने अभी नहीं हुआ। इस प्रकार अंधेरे में ही राजा की नींद खुलती है, वह अपने को घर में देखकर आश्चर्यचकित होता है। उसने सोचा वह मुनि तो वास्तव में बहुत शक्तिशाली है। फिर सोचा कि लोग पूछेंगे कि रात में राजा घर कैसे आया? इस बात को छिपाने के लिये, रात में ही राजभवन से चुपचाप ऐसे निकला कि रानी भी कुछ न जान पाये। अपने घोड़े को घुड़साल से लेकर उस पर बैठकर वन की तरफ निकल गया। दोपहर के समय राजा वन से लौटकर नगर में इस प्रकार आया, मानो रात भर वन में रहकर, सवेरे चलकर अब दोपहर में घर पहुँच रहा है। सब लोग बहुत प्रसन्न हो गये। खुशी में बाजे बजने लगे। वन की घटना के बारे में राजा ने किसी को कुछ नहीं बताया।

राजा कपटी का स्मरण करते हुए तीसरे दिन के इंतजार में है

उपरोहितहि देख जब राजा। चकित बिलोक सुमिरि सोइ काजा ॥172:6॥
जुग सम नृपहि गए दिन तीनी। कपटी मुनि पद रह मति लीनी ॥172:7॥

उपरोहितहि देख जब राजा = जब राजा ने उपरोहित को देखा, *चकित बिलोक सुमिरि सोइ काजा* = उसी कार्य को स्मरण करके उसे आश्चर्य से देखने लगा,

जुग सम नृपहि गए दिन तीनी = राजा को तीन दिन युगों के समान बीते, *कपटी मुनि पद रह मति लीनी* = उसकी बुद्धि कपटी मुनि के चरणों में लगी रही।

राजा ने जब पुरोहित को देखा तब उसे ख्याल आ गया कि यह हमारा पहले वाला पुरोहित नहीं है, यह तो वन में मिले मुनि ने ही ऐसा रूप धारण कर लिया है। उसे देखकर विप्रों को वश में करने की पूरी योजना स्मरण आने लगी। मुनि ने कहा था कि हम तीसरे दिन तुमसे मिलेंगे, तो राजा को प्रतीक्षा में ये तीन दिन युगों के समान लंबे प्रतीत हुए। वह लगातार कपटी मुनि को याद करता रहा।

उपरोहित राजा से मिला, सात हजार विप्र सपरिवार आमंत्रित

समय जानि उपरोहित आवा। नृपहि मते सब कहि समुझावा ॥172:8॥

समय जानि उपरोहित आवा = निश्चित समय जानकर पुरोहित आता है, *नृपहि मते सब कहि समुझावा* = राजा को साथ हुई गुप्त बातचीत कहकर समझा दिया।

नृप हरषेउ पहिचानि गुरु भ्रम बस रहा न चेत ।
बरे तुरत सत सहस बर बिप्र कुटुंब समेत ॥दोहा 172॥

नृप हरषेउ पहिचानि गुरु = गुरु को पहचान कर राजा हर्षित हो गया, *भ्रम बस रहा न चेत* = भ्रम के कारण राजा को यह ज्ञान नहीं रहा कि यह मुनि है कि कालकेतु राक्षस, *बरे तुरत सत सहस बर बिप्र* = उसने तुरंत ही सात हजार श्रेष्ठ विप्रों को आमंत्रित कर दिया, *कुटुंब समेत* = परिवार सहित।

जब तीसरा दिन हो गया तो योजना के अनुसार कालकेतु निशाचर, पुरोहित के वेष में आकर राजा को एकांत में ले जाकर वन में की गई गुप्त बातें बताता है। राजा बहुत प्रसन्न हो गया कि अब काम बन जायेगा क्योंकि हमारे गुरु आ गये हैं। कार्य होने की लालच में राजा की बुद्धि इतनी भ्रमित थी कि वह यह भी नहीं पहचान पाया कि यह मुनि है कि निशाचर। उसके कहने से राजा ने तुरंत ही सात हजार श्रेष्ठ विप्रों को परिवार सहित भोजन करने के लिये आमंत्रित कर दिया।

पुरोहित ने पशुओं व विप्रों का माँस मिलाकर भोजन बना दिया

उपरोहित जेवनार बनाई। छरस चारि बिधि जसि श्रुति गाई ॥173:1॥
मायामय तेहिं कीन्हि रसोई। बिंजन बहु गनि सकइ न कोई ॥173:2॥
बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महुँ बिप्र माँसु खल साँधा ॥173:3॥

उपरोहित जेवनार बनाई = पुरोहित ने भोजन पकाया, *छरस* = छः स्वाद वाले, *चारि बिधि* = चार प्रकार के भोजन, *जसि श्रुति गाई* = जैसे वेदों में बताया है, *मायामय तेहिं कीन्हि रसोई* = उसकी रसोई में बाहर से कुछ और भीतर कुछ और था, *बिंजन बहु गनि सकइ न कोई* = बहुत प्रकार के व्यंजन बनाये जिसको कोई गिन नहीं सकता, *बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा* = अनेक प्रकार के पशुओं के माँस को सान दिया, *तेहि महुँ बिप्र माँसु खल साँधा* = फिर उस दुष्ट ने उसमें विप्रों का माँस भी मिला दिया।

चबाकर, चूसकर, पीने वाले, चाटने वाले, चार प्रकार के भोजन और वे भी छः स्वाद वाले, उपरोहित ने बनाये। इतने प्रकार के व्यंजन थे कि उनकी गिनती करना मुश्किल था। उसने बहुत से पशुओं का मांस भर कर ऊपर से बेसन, आटा आदि लपेट कर भोजन बना दिया। उस दुष्ट ने उसमें विप्रों का माँस भी भर दिया। भोजन में बाहर से कुछ और दिखाई देता था, भीतर से कुछ और था। मायने भोजन मायामय था।

विप्रों के चरण धुलाकर, आदर से बैठाकर, राजा परोसता है

भोजन कहुँ सब बिप्र बोलाए। पद पखारि सादर बैठाए ॥173:4॥
परुसन जबहिं लाग महिपाला। भै अकासबानी तेहि काला ॥173:5॥

भोजन कहुँ सब बिप्र बोलाए = भोजन के लिये विप्रों को बुलाया गया, *पद पखारि सादर बैठाए* = चरण धोकर आदर सहित बैठाया गया, *परुसन जबहिं लाग महिपाला* = ज्यों ही राजा परोसने लगा, *भै अकासबानी तेहि काला* = उसी समय आकाशवाणी हुई।

भोजन करने के लिये आये विप्रों को, राजा ने बुलवाकर उनके चरण धोये। उन्हें आदर के साथ भोजन करने के लिये बैठा दिया। योजना के अनुसार,

राजा कालकेतु राक्षस का बनाया हुआ भोजन परोसने लगा। उसी समय एक आकाशवाणी होती है।

आकाशवाणी होती है– भोजन में विप्रों का माँस है, मत खाओ

बिप्रबृंद उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू ॥173:6॥
भयउ रसोईं भूसुर माँसू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू ॥173:7॥

बिप्रबृंद उठि उठि गृह जाहू = हे विप्रों आप लोग उठकर अपने घर जाओ, *है बड़ि हानि* = इसको खाने से बहुत हानि है, *अन्न जनि खाहू* = यह भोजन मत खाओ, *भयउ रसोईं भूसुर माँसू* = इस भोजन में विप्रों का माँस मिला है, *सब द्विज उठे मानि बिस्वासू* = इसे सत्य मानकर सब विप्र उठ गये।

राजा के भोजन परोसते ही कालकेतु राक्षस ने बनावटी आकाशवाणी कर दी, यह ईश्वरीय नहीं थी, परंतु विप्रों ने इसे सही समझ लिया था। आकाशवाणी हुई, हे विप्र लोग! तुम सब अपने-अपने घर को जाओ, तुम इस भोजन को खाना नहीं। इस अन्न को खाने में बहुत हानि है क्योंकि इसमें विप्रों का माँस मिला है। आकाशवाणी को सत्य मानकर सब विप्र भोजन पर से उठ गये।

होनहार था, राजा चुप रहा, विप्रों को लगा राजा ही दोषी

भूप बिकल मति मोहँ भुलानी। भावी बस न आव मुख बानी ॥173:8॥

भूप बिकल = राजा व्याकुल हो गया, *मति मोहँ भुलानी* = उसकी बुद्धि मोह में भूली थी, *भावी बस न आव मुख बानी* = होनहार के कारण उसने कुछ नहीं कहा।

राजा बहुत व्याकुल हुआ, उसे लगा कि इतने सारे विप्रों को हमने प्रसन्न करना चाहा था, पर ये सब नाराज हो गये हैं, अब हम उन्हें कैसे मनायेंगे? राजा सोचता ही रह गया। उसकी बुद्धि काम कर जाती तो वह क्षमा माँग लेता कि हमारे साथ किसी ने कपट किया है। लेकिन जब वह कुछ बोला नहीं, तो विप्रों ने सोचा राजा वास्तव में माँस वाला भोजन ही कराना चाहता था।

विप्रों ने बिना सोचे श्राप दे दिया–सपरिवार निशाचर हो जाओ

बोल बिप्र सकोप तब नहिं कछु कीन्ह बिचार ।
जाइ निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार ॥दोहा 173॥

बोल बिप्र सकोप तब = तब विप्र क्रोध सहित बोले, *नहिं कछु कीन्ह बिचार* = उन्होंने कुछ भी सोचा नहीं, *जाइ निसाचर होहु* = जाकर निशाचर हो जा, *नृप मूढ़* = रे मूढ़ राजा, *सहित परिवार* = अपने परिवार सहित।

विप्रों ने बहुत क्रोध करके कहा कि रे मूढ़ राजा! तुम अगले जन्म में सपरिवार निशाचर बनोगे, क्योंकि तुमने बहुत मूढ़ता का कार्य किया है। तुलसीदास जी को शब्दों का गहन ज्ञान है। यहाँ पर 'मूढ़' और 'निशाचर' दोनों शब्दों का गहरा संबंध है। मूढ़ से आशय मूर्ख नहीं है। जो व्यक्ति शरीर को ही सबकुछ समझता है, जिसे जीव का ज्ञान नहीं है, शरीर नाशवान् है, जो इस बात को समझने को तैयार ही नहीं है, उस व्यक्ति को कहते हैं मूढ़। राजा शरीर को सदैव बनाये रखना चाहता था, राजा बना रहना चाहता था, सदा जीवित रहना चाहता था, इसलिये वह मूढ़ था। जिसे केवल अपने शरीर, अपनी सुख सुविधा से मतलब हो, अपने फायदे के लिये दूसरों को कष्ट पहुँचाये, दूसरों का नुकसान करे, धर्म भ्रष्ट करे वह निशाचर कहलाता है। विप्रों ने कहा तुम मूढ़ हो इसलिये निशाचर बन जाओ।

राजा का दोष नहीं, फिर भी विप्रों ने श्राप क्यों दे दिया?

राजा जानबूझकर तो माँस खिलाना नहीं चाहता था, फिर विप्रों ने श्राप देकर गलती क्यों की? '*नहिं कछु कीन्ह बिचार*' कहकर तुलसीदास जी विप्रों की गलती मानते हैं। लेकिन '*भावी बस*' कहकर स्पष्ट करते हैं कि यह तो भविष्य में होना निश्चित था, इसलिये विप्रों के मुख से श्राप निकल गया। राजा की बुद्धि का स्तर इतना गिर गया था कि वह प्रकृति के विपरीत कार्य करते हुए सदैव जीवित रहना चाहता था, उसके कारण उसे निशाचर होना ही था।

विप्रों ने कहा, एक वर्ष के अंदर सपरिवार मारे जाओगे

छत्रबंधु तैं बिप्र बोलाई। घालै लिए सहित समुदाई ॥174:1॥
ईस्वर राखा धरम हमारा। जैहसि तैं समेत परिवारा ॥174:2॥
संबत मध्य नास तव होऊ। जलदाता न रहिहि कुल कोऊ ॥174:3॥

छत्रबंधु तैं = तुम तो असली क्षत्रिय नहीं हो, *बिप्र बोलाई* = विप्रों को आमंत्रित करके, *घालै लिए* = उन्हें नष्ट करना चाहता था, *सहित समुदाई* = परिवार सहित, *ईस्वर राखा धरम हमारा* = भगवान ने हमारे धर्म की रक्षा की, *जैहसि तैं समेत परिवारा* = तू तो परिवार सहित नष्ट हो जायेगा, *संबत मध्य* = एक वर्ष के भीतर, *नास तव होऊ* = तुम्हारा नाश हो जायेगा, *जलदाता न रहिहि कुल कोऊ* = तेरे कुल में कोई पानी देने वाला तक नहीं बचेगा।

क्षत्रिय माने छत्र प्रदान करने वाला, जो समाज की रक्षा करे। कोई क्षत्रिय वंश में पैदा हुआ हो परन्तु समाज की रक्षा न करे, सबको परेशान करे, तो उसे कहते हैं छत्रबंधु। आशय है कि वह असली क्षत्रिय नहीं है, क्षत्रियों के बंधु जैसा है। विप्र कहते हैं, रे छत्रबंधु! तू तो विप्रों को सपरिवार बुलाकर उनका धर्म ही नष्ट करना चाहता था। यह तो भगवान ने हम लोगों के धर्म को बचा लिया। एक वर्ष के भीतर तुम पूरे परिवार सहित मारे जाओगे और अगले जन्म में राक्षस बनोगे।

फिर से आकाशवाणी–राजा दोषी नहीं, श्राप सोचकर नहीं दिया

नृप सुनि श्राप बिकल अति त्रासा। भै बहोरि बर गिरा अकासा ॥174:4॥
बिप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा ॥174:5॥

नृप सुनि श्राप = राजा श्राप सुनकर, *बिकल अति त्रासा* = भय से व्याकुल हो गया, *भै बहोरि बर गिरा अकासा* = फिर से सुंदर आकाशवाणी हुई, *बिप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा* = हे विप्रों तुमने विचार करके श्राप नहीं दिया है, *नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा* = राजा ने कुछ भी अपराध नहीं किया है।

श्राप को सुनकर राजा बहुत भयभीत और व्याकुल हो गया। इसके बाद असली ईश्वरीय आकाशवाणी होती है, हे विप्रों, आपने श्राप विचार करके नहीं दिया है। विप्रों को जो भोजन खिलाया जा रहा था उसमें राजा का कोई अपराध नहीं है।

राजा रसोई में गया, न पुरोहित था, न भोजन, विप्रों को सब बताया

चकित बिप्र सब सुनि नभबानी। भूप गयउ जहँ भोजन खानी ॥174:6॥
तहँ न असन नहिं बिप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा ॥174:7॥
सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई। त्रसित परेउ अवनीं अकुलाई ॥174:8॥

चकित बिप्र सब सुनि नभबानी = आकाशवाणी सुनकर सब विप्र चकित रह गये, *भूप गयउ जहँ* = तब राजा वहाँ गया, *भोजन खानी* = जहाँ भोजन बना था, *तहँ न असन* = वहाँ न तो भोजन था, *नहिं बिप्र सुआरा* = न भोजन पकाने वाला विप्र रसोइया, *फिरेउ राउ मन सोच अपारा* = तब राजा मन में बहुत चिंता करते हुए वापस आया, *सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई* = उसने सारी बातें विप्रों को बताई, *त्रसित परेउ अवनीं अकुलाई* = भयभीत और व्याकुल होकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा।

आकाशवाणी को सुनकर सारे विप्र आश्चर्यचकित हो गये। राजा रसोईघर में जाकर देखता है कि वहाँ न तो खाना बनाने वाला पुरोहित था, न ही भोजन। वहाँ सन्नाटा था, सब मायामय भोजन बना था। राजा समझ गया कि हमारे साथ धोखा हुआ है। वह सोच-विचार करता हुआ वापस आकर विप्रों को सारी घटना बताता है। इस प्रकार बताते-बताते व्याकुल होकर अपने ऊपर नियंत्रण खोकर भूमि पर गिर जाता है।

विप्रों ने कहा, तुम्हारा दोष नहीं, भावी वश तुम्हें श्राप भोगना होगा

भूपति भावी मिटइ नहिं जदपि न दूषन तोर ।
किएँ अन्यथा होइ नहिं बिप्र श्राप अति घोर ॥दोहा 174॥

भूपति भावी मिटइ नहिं = हे राजन् होनहार नहीं मिटता, *जदपि न दूषन तोर* = यद्यपि तुम्हारा दोष नहीं है, *किएँ अन्यथा होइ नहिं* = किसी भी प्रकार टाले नहीं टलता है, *बिप्र श्राप अति घोर* = विप्रों का श्राप बहुत ही भयानक होता है।

विप्रों ने कहा, हे राजन्! यद्यपि इस भोजन को बनाने में तुम्हारा दोष नहीं है, पर भावी नहीं मिटती है। जो श्राप तुम्हें मिला है वह भावी के अनुसार ही है। इसका फल तुम्हें अवश्य भोगना पड़ेगा। आशय है, विप्रों को दोषी मत समझो, तुम्हारा प्रारब्ध ही इस प्रकार का है। कर्म के अनुसार फल भोगना होगा।

अपना भविष्य हम स्वयं बनाते हैं

हम अपने संस्कारों के अनुसार जैसा कर्म करते हैं, उसका परिणाम अवश्य भोगना पड़ता है। हमारे कर्म ही हमारा भविष्य निश्चित करते हैं। उसे भावी

कहते हैं। ऐसा देखने में आता है कि व्यक्ति जीवन भर गलत कार्य करता है, पर कभी वह सही कार्य करते समय फँस जाता है, उसे सजा हो जाती है। देखने में लगता है कि वह निर्दोष है, पर उसने पहले ही गलत कार्य करके अपनी भावी निश्चित कर ली थी, इसे कहते हैं भावी वश। राजा प्रतापभानु ने हमेशा जीवित रहने की, हमेशा राज्य करने की गलत कामनायें कीं, फिर उन्हें पूरा करने के लिये विप्रों को भोजन कराकर वश में करने का अनुचित कार्य किया। इसी ने उसकी भावी निश्चित कर दी।

समाचार नगर में फैला, लोग चिंतित, विधाता को दोष देते हैं

अस कहि सब महिदेव सिधाए। समाचार पुरलोगन्ह पाए ॥175:1॥
सोचहिं दूषन दैवहि देहीं। बिरचत हंस काग किय जेहीं ॥175:2॥

अस कहि सब महिदेव सिधाए = ऐसा कहकर सब विप्र चले गये, *समाचार पुरलोगन्ह पाए* = नगर के लोगों को भी सूचनायें मिलीं, *सोचहिं* = वे चिंता करने लगे, *दूषन दैवहि देहीं* = और विधाता को दोष देने लगे, *बिरचत हंस काग किय जेहीं* = जिसे हंस बनाना चाहिये था उसे कौआ बना दिया।

ऐसा कहकर जब विप्र अपने घर चले गये, यह समाचार नगर में फैल गया। प्रजा तो प्रतापभानु के राज्य में बहुत सुखी थी, वे चिंतित होकर कहने लगी कि विधाता की करनी भी कैसी विचित्र है? इतना प्रजापालक व धर्मपरायण राजा को तो देवता बनाना चाहिये था, पर उसे राक्षस बना दिया।

तपस्वी राजा ने राजाओं को एकत्रित कर आक्रमण कर दिया

उपरोहितहि भवन पहुँचाई। असुर तापसहि खबरि जनाई ॥175:3॥
तेहिं खल जहँ तहँ पत्र पठाए। सजि सजि सेन भूप सब धाए ॥175:4॥
घेरेन्हि नगर निसान बजाई। बिबिध भाँति नित होइ लराई ॥175:5॥

उपरोहितहि भवन पहुँचाई = पुरोहित को उसके घर पहुँचाकर, *असुर तापसहि खबरि जनाई* = उस निशाचर ने तपस्वी राजा को सूचना दी, *तेहिं खल जहँ तहँ पत्र पठाए* = उस दुष्ट ने जहाँ-तहाँ पत्र भेज दिये, *सजि सजि सेन भूप सब धाए* = सेना सजाकर सारे राजा युद्ध के लिये आ गये, *घेरेन्हि*

नगर निसान बजाई = डंका बजाकर नगर को घेर लिया, *बिबिध भाँति नित होइ लराई* = नित्य प्रति अनेक प्रकार से युद्ध होने लगा।

कालकेतु ने राजा के पुरोहित को वापस घर पहुँचाकर, उस तपस्वी राजा को जाकर बता दिया कि अब प्रतापभानु का विनाश हो जायेगा, आगे की तैयारी करो। राजा ने अपने राज्य में पहुँचकर, देश भर में जितने भी राजा थे सबको पत्र भेज दिया कि प्रतापभानु पर आक्रमण करना है, अब श्राप के कारण उसका विनाश निश्चित है, आप सब सहायता करें। जो राजा पहले हार गये थे, उन सबने सेना एकत्रित की। युद्ध के बाजे बजाते हुए आकर राजाओं ने चारों ओर से प्रतापभानु की राजधानी को घेर लिया। बहुत दिनों तक युद्ध चलता रहा।

युद्ध में प्रतापभानु परिवार सहित मारा गया

जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी ॥175:6॥
सत्यकेतु कुल कोउ नहि बाँचा। बिप्रश्राप किमि होइ असाँचा ॥175:7॥
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निज पुर गवने जय जसु पाई ॥175:8॥

जूझे सकल सुभट करि करनी = उसके सारे सैनिक युद्ध करते हुए मारे गये, *बंधु समेत परेउ नृप धरनी* = भाई समेत राजा भी मारा गया, *सत्यकेतु कुल कोउ नहि बाँचा* = सत्यकेतु के कुल में कोई भी जीवित नहीं बचा, *बिप्रश्राप किमि होइ असाँचा* = विप्र का श्राप झूठा कैसे हो सकता है, *रिपु जिति* = शत्रु को जीतकर, *सब नृप नगर बसाई* = सबने स्वतंत्र होकर अपना राज्य स्थापित कर लिया, *निज पुर गवने* = अपने-अपने नगर में जा कर के, *जय जसु पाई* = उन्हें विजय और यश प्राप्त हुआ।

युद्ध में प्रतापभानु की सेना हारती गई। उसके सारे सैनिक युद्धक्षेत्र में मारे गये। अपने भाई सहित प्रतापभानु भी मारा गया। इस प्रकार सत्यकेतु के कुल में कोई नहीं बचा, सब मारे गये। विप्रों का श्राप सच साबित हुआ। साल भर के अंदर यह पूरी घटना घटित हो गई। प्रतापभानु को जीतकर सारे आक्रमणकारी राजा अपनी-अपनी राजधानी में गये और फिर से स्वतंत्र राजा हो गये। सारे राजा जो पहले पराजित हो गये थे फिर से विजयी हो गये। प्रतापभानु की कथा यहाँ पूरी हो जाती है।

विधाता मनमानी नहीं करता, कर्म के अनुसार फल देता है

भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ बिधाता बाम ।
धूरि मेरुसम जनक जम ताहि ब्यालसम दाम ।।दोहा 175।।

भरद्वाज सुनु = हे भरद्वाज सुनो, *जाहि जब होइ बिधाता बाम* = विधाता जब जिसके विपरीत होते हैं, *धूरि मेरुसम* = धूल सुमेरु पर्वत के समान, *जनक जम* = पिता यमराज के समान, *ताहि ब्यालसम दाम* = रस्सी सर्प के समान उसके लिये हो जाती है।

याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज मुनि से कहते हैं कि जब विपरीत अवस्थायें आती हैं, उसे कहते हैं कि विधाता बायें हैं, पर विधाता मनमानी नहीं करता। जब बुरा कर्म बुरा फल देता है तब:

1. धूल का एक कण सुमेरु पर्वत के समान शक्तिशाली हो जाता है।
2. पिता, यमराज जैसा व्यवहार करने लगते हैं।
3. रस्सी भी उसके लिये सर्प बन जाती है।

इस कथा में तीन व्यक्ति हैं, तीनों का सुंदर रूपक प्रस्तुत किया गया है। रामचरितमानस में अच्छे से डुबकी लगायें, आनंद आयेगा।

1. **कपटी मुनि–** एक राजा था, हार गया तो नगर से भाग गया। वन में रहने लगा, उसके पास कुछ नहीं था। वह धूल में मिल गया, जब विधाता प्रतिकूल था। जब समय आया तो वही धूल का कण सुमेरु पर्वत के समान शक्तिशाली होकर चक्रवर्ती सम्राट् को हरा देता है।
2. **विप्र लोग–** विप्र लोग पिता के समान हैं, सबको उपदेश देते हैं, अच्छे रास्ते पर ले जाते हैं। इन्होंने अनेक यज्ञ, हवन, पूजन करवाये थे। लेकिन जब राजा का प्रारब्ध बदला तो पिता तुल्य विप्र श्राप देकर यमराज बन गये।
3. **कालकेतु निशाचर–** यह रस्सी मायाजाल भी है। कालकेतु इतना मायावी था पर राजा प्रतापभानु ने उसके पूरे परिवार को समाप्त कर दिया था। वह कुछ नहीं कर पाया। पर जब उसका समय आया और राजा का समय खराब हुआ, तो उसने सूकर बनकर राजा को ही जाल में फँसा लिया। राजा के लिये यह रस्सी का जाल सर्प बनकर डस गया।

8. रावण, लंका, रावण-राज्य

(दोहा 176 से 182)

तुलसीदास जी प्रतापभानु की कथा से रावण की कथा को जोड़ देते हैं। इस प्रसंग में इस बात को बहुत ही सुंदर तरीके से समझाया है कि एक जन्म की वासना दूसरे जन्म तक कैसे जाती है। राजा प्रतापभानु सदैव राजा बना रहकर जीवित रहना चाहता था। मृत्यु के बाद जब रावण बनकर जन्मा तो ब्रह्मा जी से फिर न मरने का वरदान माँग लेता है। धर्मरुचि को हरि चरणों में प्रेम था, विभीषण के रूप में जन्म लेकर वरदान में भगवान के चरणों में प्रेम ही माँगता है। स्वामी सत्यानंद जी कहते हैं कि रामचरितमानस का पाठ अनुवांशिक रचना को सुधार देता है। इसका असर हमारे बच्चों तक जाता है।

रावण राज्य कैसा होता है, उसका चित्रण किया गया है। वह सबसे झगड़ा करता है, लूट-पाट करता है, दूसरों के राज्यों में, दूसरे के घरों में जबर्दस्ती कब्जा करता है। सब को जीतकर उनकी कन्याओं को लाकर ब्याह रचा लेता है। इतना सब करने के बाद उसे समझ में आता है कि इस निशाचरी राज्य को सदैव बनाये रखने में धर्म बहुत बड़ी बाधा है। धर्म का आधार गाय, विप्र, वेद, पुराण, यज्ञ हवन, जप, योग हैं। इन सबको जड़ से समाप्त करने के लिये पूरी राक्षसी सेना सहित स्वयं भी लग जाता है।

प्रतापभानु अगले जन्म में रावण हुआ, जो प्रचंड वीर था

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा ॥176:1॥
दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा ॥176:2॥

काल पाइ = समय आने पर, *मुनि सुनु* = हे मुनि सुनो, *सोइ राजा* = वही प्रतापभानु राजा, *भयउ निसाचर सहित समाजा* = परिवार सहित निशाचर बन कर जन्म लिया, *दस सिर ताहि* = उसके दस सिर थे, *बीस भुजदंडा* = बीस भुजायें थी, *रावन नाम* = उसका नाम रावण था, *बीर बरिबंडा* = वह प्रचंड शूरवीर था।

तुलसीदास जी ने प्रतापभानु की कथा से रावण के जन्म की कथा को जोड़ दिया है। वे पहले ही कह चुके हैं कि कल्प भेद के कारण कथाओं में फर्क है, इसलिये मन में शंका न करें। प्रतापभानु राजा शरीर त्यागने के बाद, समय

आने पर दूसरे शरीर में जब पैदा हुआ, तो उसके दस सिर व बीस भुजायें थीं। उसका नाम रावण हुआ। वह प्रचंड वीर था। उसके परिवार ने भी निशाचर बन कर जन्म लिया।

अरिमर्दन कुंभकरण व धर्मरुचि भक्त विभीषण बनकर जन्मे

भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बलधामा ॥176:3॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू ॥176:4॥
नाम बिभीषन जेहि जग जाना। बिष्नुभगत बिग्यान निधाना ॥176:5॥

भूप अनुज अरिमर्दन नामा = राजा के छोटे भाई जिसका नाम अरिमर्दन था, *भयउ सो कुंभकरन बलधामा* = वह बलशाली कुंभकर्ण हुआ, *सचिव जो रहा धरमरुचि जासू* = धर्मरुचि नाम का जो सचिव था, *भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू* = उसका छोटा सौतेला भाई हुआ। *नाम बिभीषन* = उसका नाम विभीषण था, *जेहि जग जाना* = जिसे सारा संसार जानता है, *बिष्नुभगत बिग्यान निधाना* = वह भगवान विष्णु का भक्त व ज्ञान-विज्ञान का भंडार था।

राजा का छोटा भाई जो अरिमर्दन था, वह भी रावण का छोटा भाई कुंभकर्ण बनकर पैदा हुआ। इस जन्म में भी वह बहुत शक्तिशाली था। राजा का मंत्री जिसका नाम धर्मरुचि था, वह रावण का छोटा सौतेला भाई विभीषण हुआ। वह भगवान का भक्त और ज्ञानवान् था।

राजा के पुत्र व सेवक घोर निशाचर बनकर जन्मे

रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे ॥176:6॥
कामरूप खल जिनस अनेका। कुटिल भयंकर बिगत बिबेका ॥176:7॥
कृपा रहित हिंसक सब पापी। बरनि न जाहिं बिस्व परितापी ॥176:8॥

रहे जे सुत सेवक नृप केरे = राजा के जो पुत्र और सेवक थे, *भए निसाचर घोर घनेरे* = वे अत्यंत घोर निशाचर हो गये, *कामरूप* = इच्छा से रूप बनाने वाले, *खल* = दुष्ट थे, *जिनस अनेका* = अनेक जाति के थे, *कुटिल भयंकर बिगत बिबेका* = कुटिल, भयंकर व विवेकहीन थे, *कृपा रहित हिंसक सब पापी* = सभी पापी कृपारहित व हिंसा करने वाले थे, *बरनि न*

जाहिं बिस्व परितापी = सारे विश्व को कष्ट देने वाले थे; उनका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

प्रतापभानु राजा के जो सेवक व पुत्र इत्यादि थे उन्होंने भी रावण के यहाँ जन्म ले लिया। ये सारे घोर निशाचर थे। तुलसीदास जी जब भी निशाचरी स्वभाव का वर्णन करते हैं, तुरंत हमें अपने अंदर झाँकना है, कोई लक्षण हमारे अंदर भी तो नहीं घुसा है।

1. कामरूप– इनके अंदर ऐसी शक्ति थी कि जैसा चाहे वैसा रूप बना लें। रूप से आशय किसी को धोखा देने के लिये वेष-भूषा बदल लेना, नाम बदल लेना भी है।
2. कठोर हृदय– किसी की कैसी भी स्थिति हो उस पर कृपा नहीं करते थे। कोई मरे या जिये इनसे मतलब नहीं।
3. हिंसक– सदैव मार-पीट को तैयार। किसी को भी मार दें, जान ले लें।
4. कष्ट पहुँचाना– ये लोग सारे संसार को इतनी पीड़ा पहुँचाने वाले थे कि इनकी दुष्टता का वर्णन करना भी कठिन है।

पुलस्त्य जैसे ऊँचे कुल में पैदा हुए पर पापों में लिप्त थे

उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप ।
तदपि महीसुर श्राप बस भए सकल अघरूप ॥दोहा 176॥

उपजे जदपि पुलस्त्यकुल = यद्यपि वे पुलस्त्यकुल में पैदा हुए थे, *पावन अमल अनूप* = जो कि पवित्र; निर्मल व अनुपम था, *तदपि महीसुर श्राप बस* = फिर भी विप्रों के श्राप के कारण, *भए सकल अघरूप* = ये सब पाप के पुंज बनकर पैदा हुए।

पुलस्त्य ऋषि ब्रह्मा जी के पुत्र थे। उनके एक पुत्र का नाम विश्रवा था। विश्रवा-पुष्पकोटा से रावण व कुंभकर्ण पैदा हुए। विश्रवा-मालिनी से विभीषण पैदा हुए। विश्रवा-राका से खर और शूर्पणखा हुए। विभीषण की माँ मालिनी निशाचरी होते हुए भी भगवान की भक्त थी। पिछले जन्म में धर्मरुचि भी भगवान का भक्त था। इसलिये इस जन्म में विभीषण भी भक्त हुआ। इन सबको कुल तो अच्छा मिला पर श्राप के कारण पाप के पुंज बनकर पैदा हुए।

तीनों ने कठिन तप किया, ब्रह्मा जी कहते हैं वर मांगो

कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई। परम उग्र नहिं बरनि सो जाई ॥177:1॥
गयउ निकट तप देखि बिधाता। मागहु बर प्रसन्न मैं ताता ॥177:2॥

कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई = तीनों भाइयों ने अनेक प्रकार से तपस्या की, *परम उग्र नहिं बरनि सो जाई* = यह इतनी उग्र थी कि वर्णन नहीं किया जा सकता है, *गयउ निकट तप देखि बिधाता* = इनका तप देखकर ब्रह्मा जी पास में जाकर कहते हैं, *मागहु बर प्रसन्न मैं ताता* = हे तात! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो।

रावण और उसके भाई कुंभकर्ण व विभीषण ने कुछ बड़े होने पर अनेकों प्रकार की ऐसी उग्र तपस्यायें की कि जिनका वर्णन भी नहीं किया जा सकता। ब्रह्मा जी ने प्रसन्न होकर कहा वरदान माँगो।

रावण मांगता है–वानर व मनुष्य के अलावा किसी के मारे न मरें

करि बिनती पद गहि दससीसा। बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा ॥177:3॥
हम काहू के मरहिं न मारें। बानर मनुज जाति दुइ बारें ॥177:4॥
एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्माँ मिलि तेहि बर दीन्हा ॥177:5॥

करि बिनती पद गहि दससीसा = रावण विनय करके व चरण पकड़कर, *बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा* = कहता है हे जगत् के स्वामी सुनिये! *हम काहू के मरहिं न मारें* = हम किसी के मारे न मरें, *बानर मनुज जाति दुइ बारें* = वानर जाति और मनुष्य जाति को छोड़कर, *एवमस्तु* = ऐसा ही होगा, *तुम्ह बड़ तप कीन्हा* = तुमने बहुत तपस्या की है, *मैं ब्रह्माँ मिलि* = मैंने व ब्रह्मा ने मिलकर, *तेहि बर दीन्हा* = उसे यह वरदान दे दिया।

तुलसीदास जी कथा के बीच-बीच में याद दिलाते रहते हैं कि शिव जी यह कथा पार्वती जी को सुना रहे हैं। शिव जी कहते हैं मैंने व ब्रह्मा जी ने मिलकर यह वरदान रावण को दे दिया कि वह किसी के मारे न मरे। हाँ, मनुष्य या वानर उसे मार सकते हैं। यहाँ यह समझाया गया है कि हमारी वासनायें कई जन्मों तक चलती रहती हैं। इसे संस्कार भी कहते हैं। पूर्व जन्म में प्रतापभानु के रूप में भी कपटी मुनि से इसी प्रकार का वरदान मांगा था। ऐसा लगता

है कि ब्रह्मा जी ने कहा होगा कि शरीर का तो नाश होगा ही, तुम्हें किसी से भय हो तो बताओ, उससे नहीं मरोगे। रावण ने सोचा होगा कि हम इतने शक्तिशाली हो जायेंगे कि देवताओं को जीत लेंगे, तो ये वानर व मनुष्य हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते। इसलिये कह दिया कि इन दोनों को छोड़कर हमें कोई न मार पाये।

कुंभकर्ण की बुद्धि पलटवा दी, छः माह सोने का वरदान माँगा

पुनि प्रभु कुंभकरन पहिं गयऊ। तेहि बिलोकि मन बिसमय भयऊ ॥177:6॥
जौं एहि खल नित करब अहारू। होइहि सब उजारि संसारू ॥177:7॥
सारद प्रेरि तासु मति फेरी। मागेसि नीद मास षट केरी ॥177:8॥

पुनि प्रभु कुंभकरन पहिं गयऊ = फिर ब्रह्मा जी कुंभकरन के पास गये, *तेहि बिलोकि मन बिसमय भयऊ* = उसे देखकर उनके मन में बहुत आश्चर्य हुआ, *जौं एहि खल नित करब अहारू* = यह दुष्ट यदि नित्य आहार करेगा, *होइहि सब उजारि संसारू* = तो सारा संसार ही उजड़ जायेगा, *सारद प्रेरि तासु मति फेरी* = सरस्वती को प्रेरणा देकर उसकी बुद्धि फेर दी, *मागेसि नीद मास षट केरी* = उसने छः महीने की नींद माँगी।

ब्रह्मा जी जब कुंभकर्ण के पास पहुँचे। उसके विशालकाय शरीर को देखकर आश्चर्य चकित हो गये। फिर सोचते हैं कि यदि यह दुष्ट प्रतिदिन मांसाहार करेगा तो कुछ समय में ही सारी दुनिया के प्राणियों को खा जायेगा। उन्होंने सरस्वती देवी को प्रेरित करके उसकी बुद्धि पलटवा दी। कुंभकर्ण ने वरदान माँग लिया कि हे प्रभु! हम खूब सोएँ, वर्ष में छः माह तक सोते रहें।

विभीषण ने भगवान के चरणों में निर्मल प्रेम माँगा

गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु ।
तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु ॥दोहा 177॥

गए बिभीषन पास पुनि = फिर विभीषण के पास जाते हैं, *कहेउ पुत्र बर मागु* = कहते हैं हे पुत्र वर माँगो, *तेहिं मागेउ* = वह वर माँगता है कि, *भगवंत पद कमल अमल अनुरागु* = भगवान के चरण कमलों में निर्मल प्रेम प्राप्त हो।

तिन्हहि देइ बर ब्रह्म सिधाए। हरषित ते अपने गृह आए ॥178:1॥

तिन्हहि देइ बर ब्रह्म सिधाए = उनको वर देकर ब्रह्मा जी चले गये, *हरषित ते अपने गृह आए* = तीनों भाई प्रसन्न होकर अपने घर लौट आये।

विभीषण के पास जाकर ब्रह्मा जी उसे पुत्र कहकर संबोधित करते हैं। ब्रह्मा जी से उसने भगवान के चरण कमलों में नित्य निर्मल प्रेम प्राप्त होने का वरदान माँग लिया। तीनो भाइयों को वरदान देकर ब्रह्मा जी चले गये। तीनों भाई इच्छानुसार वरदान पाकर, प्रसन्न होकर, तपस्या स्थल से अपने घर लौट आये।

मय दानव ने सुंदर कन्या मंदोदरी का विवाह रावण से कर दिया

मय तनुजा मंदोदरि नामा। परम सुंदरी नारि ललामा ॥178:2॥
सोइ मयँ दीन्हि रावनहि आनी। होइहि जातुधानपति जानी ॥178:3॥
हरषित भयउ नारि भलि पाई। पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई ॥178:4॥

मय तनुजा = मय दानव की कन्या, *मंदोदरि नामा* = जिसका नाम मंदोदरी था, *परम सुंदरी* = बहुत ही सुंदर थी, *नारि ललामा* = स्त्रियों में शिरोमणि थी, *सोइ मयँ दीन्हि रावनहि आनी* = मय ने उसके साथ रावण का विवाह कर दिया, *होइहि जातुधानपति जानी* = यह सोचकर कि यह निशाचरों का राजा बनेगा, *हरषित भयउ नारि भलि पाई* = अच्छी पत्नी से विवाह होने से रावण प्रसन्न हो गया, *पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई* = फिर उसने दोनों भाइयों का भी विवाह कर दिया।

मय नाम का एक दानव था, उसकी कन्या का नाम मंदोदरी था, जो परमसुंदरी और स्त्रियों में शिरोमणि थी। मय ने यह सोचा कि रावण इतना शक्तिशाली हो गया है, यह बड़े राज्य की स्थापना करेगा, और निशाचरों का राजा बनेगा। इसलिये उसने अपनी पुत्री का विवाह रावण से कर दिया। सभी व्यक्ति अपनी पुत्री का विवाह धन-संपत्ति वाले घर में ही करना चाहते हैं। रावण भी बहुत प्रसन्न हुआ कि मंदोदरी सुंदर तो है ही, पतिव्रत्य धर्म का भी बखूबी पालन करेगी। उसके बाद रावण ने अपने दोनों भाइयों का भी विवाह कर दिया।

समुद्र में त्रिकूट पर्वत पर बनी लंका को मय ने संवारा

गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी ॥178:5॥
सोइ मय दानवँ बहुरि सँवारा। कनक रचित मनिभवन अपारा ॥178:6॥

गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी = समुद्र के बीच में त्रिकूट नाम का एक पर्वत था, *बिधि निर्मित* = ब्रह्मा जी द्वारा बनाया हुआ, *दुर्गम अति भारी* = बहुत भारी किला था, *सोइ मय दानवँ बहुरि सँवारा* = मय दानव ने उसे फिर से ठीक-ठाक करके सजा दिया, *कनक रचित मनिभवन अपारा* = स्वर्ण के बने हुए अनेक भवन थे जिनमें मणियाँ जड़ी हुई थीं।

भोगावति जसि अहिकुल बासा। अमरावति जसि सक्रनिवासा ॥178:7॥
तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका। जग बिख्यात नाम तेहि लंका ॥178:8॥

भोगावति जसि अहिकुल बासा = जैसे नागकुल के रहने वालों की भोगावती पुरी हो, *अमरावति जसि सक्रनिवासा* = और इन्द्र के रहने की अमरावती पुरी हो, *तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका* = उनसे भी अधिक सुंदर और मजबूत वह दुर्ग था, *जग बिख्यात नाम तेहि लंका* = विश्व में प्रसिद्ध उसका नाम लंका था।

खाईं सिंधु गभीर अति चारिहुँ दिसि फिरि आव ।
कनक कोट मनि खचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव ॥दोहा 178 क॥

खाईं सिंधु गभीर अति = समुद्र की अत्यन्त गहरी खाई, *चारिहुँ दिसि फिरि आव* = उसे चारों ओर से घेरे हुए है, *कनक कोट* = सोने का परकोटा है, *मनि खचित* = जो मणियों से जड़ा हुआ है, *दृढ़* = और बहुत मजबूत है, *बरनि न जाइ बनाव* = उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

समुद्र के बीच में त्रिकूट पर्वत पर विधाता द्वारा बनाया गया एक बहुत भारी किला था। उसमें स्वर्ण के बने हुए अनेक भवन थे जिनमें मणियाँ जड़ी हुई थीं। मय दानव, जो निशाचरों का इंजीनियर है, उसने किले को ठीक-ठाक करके सजा सँवार दिया। दो नगरों से इसकी तुलना करके कहते हैं कि यह उनसे भी सुंदर व मजबूत है। एक तो भोगवती नगरी जहाँ नागकुल के लोग रहते हैं, दूसरी अमरावती जहाँ इन्द्र रहते हैं। सारे संसार में विख्यात इस नगरी

का नाम लंका है। किले की रक्षा के लिये चारों तरफ खाई बनाई जाती है। लंका में तो प्रकृति निर्मित समुद्र ही चारों ओर से इसे घेरकर गहरी खाई का काम कर रहा है।

प्रत्येक कल्प में लंका राक्षसों की राजधानी रहती है

हरि प्रेरित जेहिं कलप जोइ जातुधानपति होइ ।
सूर प्रतापी अतुलबल दल समेत बस सोइ ॥दोहा 178 ख॥

हरि प्रेरित = भगवान की प्रेरणा से, *जेहिं कलप* = जिस कल्प में, *जोइ जातुधानपति होइ* = जो भी राक्षसों का राजा होता है, *सूर प्रतापी अतुलबल* = शूर; प्रतापी व अतुलित बलवान्, *दल समेत* = अपनी सेना सहित, *बस सोइ* = वह उसी पुरी में निवास करता है।

हर कल्प में निशाचरों का राजा बहुत बहादुर, प्रतापी, बलवान् पैदा होता है। कहते हैं कि भगवान की प्रेरणा से वह अपनी सेना सहित लंका पुरी में ही निवास करता है।

अभी लंका में कुबेर के रक्षक थे, जो रावण को देख भाग गये

रहे तहाँ निसिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर संघारे ॥179:1॥
अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे ॥179:2॥
दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई ॥179:3॥
देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई ॥179:4॥

रहे तहाँ निसिचर भट भारे = पहले वहाँ निशाचर वास करते थे, *ते सब सुरन्ह समर संघारे* = उन सबको देवताओं ने युद्ध में मार दिया था, *अब तहँ रहहिं* = अभी वहाँ पर रहते हैं, *सक्र के प्रेरे* = इन्द्र के कहने से, *रच्छक कोटि* = एक करोड़ रक्षक, *जच्छपति केरे* = कुबेर के, *दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई* = रावण को कहीं से यह खबर मिली, *सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई* = उसने सेना सजाकर किले को घेर लिया, *देखि बिकट भट* = उस बड़े योद्धा को देखकर, *बड़ि कटकाई* = बड़ी सेना देखकर, *जच्छ जीव लै गए पराई* = यक्ष अपने प्राण लेकर भाग गये।

पूर्वकाल में लंका में निशाचर वास करते थे, उन सबको देवताओं ने मार दिया था। इन्द्र ने लंका जीतकर वहाँ पर यक्षपति कुबेर के बहुत से रक्षकों को बसा दिया था। रावण ने जब यह खबर पाई तो उसने अपनी सेना तैयार की और लंका को घेर लिया। यक्षों ने जब देखा कि रावण तो बहुत शक्तिशाली है, बड़ी भारी इसकी सेना है, तो वे अपनी जान बचाकर वहाँ से भाग गये।

लंका पर कब्जा करके, सैनिकों को योग्यतानुसार घर दिये

फिरि सब नगर दसानन देखा। गयउ सोच सुख भयउ बिसेषा ॥179:5॥
सुंदर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी ॥179:6॥
जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे ॥179:7॥

फिरि सब नगर दसानन देखा = तब रावण ने घूम फिर कर सारा नगर देखा, *गयउ सोच* = चिंता मिट गयी, *सुख भयउ बिसेषा* = बहुत ही सुख हुआ, *सुंदर सहज* = स्वाभाविक ही सुंदर, *अगम अनुमानी* = व बाहरी लोगों के लिये दुर्गम मानकर, *कीन्हि तहाँ रावन रजधानी* = रावण ने वहाँ अपनी राजधानी बना दी, *जेहि जस जोग* = जो जैसा योग्य था, *बाँटि गृह दीन्हे* = उसके अनुसार घरों को बाँटकर, *सुखी सकल रजनीचर कीन्हे* = सभी राक्षसों को सुखी कर दिया।

तपस्या के बाद रावण को चिंता थी कि रहने के लिये कहाँ व कैसे अच्छा स्थान मिले। जब उसने सारा नगर घूमकर देखा तो उसकी यह चिंता मिट गई। रावण ने लंका को सुंदर और सुरक्षित किला समझकर, अपनी राजधानी बना लिया। लंका में जितने मकान बने हुए थे, उनमें जो जिसके योग्य समझ में आया, उन सबको वहाँ बसा दिया। सब निशाचर स्वर्ण के सुन्दर-सुन्दर घर प्राप्त करके बहुत प्रसन्न हुए।

कुबेर से पुष्पक छीना, कैलास पर्वत को हाथ से उठा लिया

एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा ॥179:8॥

एक बार कुबेर पर धावा = एक बार उसने कुबेर पर आक्रमण करके, *पुष्पक जान जीति लै आवा* = पुष्पक विमान को जीतकर ले आया।

कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ ।
मनहुँ तौलि निज बाहुबल चला बहुत सुख पाइ ॥दोहा 179॥

कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ = एक बार उसने कैलास पर्वत को कौतुक में ही उठा लिया, *मनहुँ तौलि निज बाहुबल* = मानो अपनी भुजाओं का बल तौलकर, *चला बहुत सुख पाइ* = बहुत सुख पाकर वहाँ से चला गया।

रहने की व्यवस्था तो हो गई पर रावण के पास हवाई जहाज नहीं था। उसे पता चला कि कुबेर के पास पुष्पक विमान की सुविधा है। उसने कुबेर पर आक्रमण करके उसे हरा दिया, फिर पुष्पक विमान उससे छीन कर ले आया। रावण को अभी तक अपनी शक्ति का पूरा अंदाजा नहीं था। उसने अपनी शक्ति देखने के लिये खेल ही खेल में कैलास पर्वत के नीचे हाथ डालकर पूरे पर्वत को ऊपर हवा में उठा दिया। अपना बाहुबल तौलकर रावण को बहुत प्रसन्नता हुई। कैलास पर्वत को यथास्थान रखकर रावण वापस लंका आ गया।

रावण की संपत्ति, परिवार, यश लगातार बढ़ने लगा

सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई ॥180:1॥
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई ॥180:2॥

सुख संपति सुत सेन सहाई = सुख; संपत्ति; पुत्र; सेना व सहायक, *जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई* = जय; प्रताप; बल, बुद्धि और यश, *नित नूतन सब बाढ़त जाई* = नित्य नये बढ़ते जा रहे हैं, *जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई* = जैसे प्रत्येक लाभ पर लोभ बढ़ता है।

रावण के पास सुख के साधन, धन-संपत्ति, पुत्रादि, सेना, उसके सहायक, उसका प्रताप, बल, बुद्धि आदि सब लगातार बढ़ते जा रहे हैं। वह हमेशा विजय प्राप्त करता जाता है। जैसे लाभ प्राप्त होने पर, और अधिक लाभ प्राप्त करने का लोभ बढ़ता जाता है, मन में संतुष्टि नहीं होती है, वही हाल रावण का है। और मिले, और मिले, इस लोभ एवं असंतुष्टि की प्रवृत्ति से बचने का प्रयास करना चाहिये।

कुंभकर्ण के बराबर का विश्व में योद्धा नहीं

अतिबल कुंभकरन अस भ्राता । जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता ॥180:3॥
करइ पान सोवइ षट मासा। जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा ॥180:4॥
जौं दिन प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई ॥180:5॥
समर धीर नहिं जाइ बखाना। तेहि सम अमित बीर बलवाना ॥180:6॥

अतिबल कुंभकरन अस भ्राता = अति बलवान् कुंभकर्ण जैसा उसका भाई था, *जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट* = जिसके बराबर का योद्धा, *जग जाता* = संसार में पैदा नहीं हुआ, *करइ पान सोवइ षट मासा* = वह मदिरा पीकर छः महीने सोया करता था, *जागत होइ* = उसके जागने पर, *तिहूँ पुर त्रासा* = तीनों लोकों में हाहाकार मच जाता था, *जौं दिन प्रति अहार कर सोई* = यदि वह प्रतिदिन भोजन करता, *बिस्व बेगि सब चौपट होई* = तब तो पूरा संसार शीघ्र ही खाली हो जाता, *समर धीर नहिं जाइ बखाना* = युद्ध में इतना वीर था कि वर्णन नहीं किया जा सकता, *तेहि सम अमित बीर बलवाना* = उसके समान असंख्य वीर व शक्तिशाली लोग थे।

बहुत शक्तिशाली कुंभकर्ण रावण का भाई है। उसका सामना करने वाला कोई योद्धा संसार में पैदा नहीं हुआ। वह मदिरापान करके और खूब मांस वगैरह खाकर, छः मास तक सोता रहता था। जब जागता है तो तीनों लोकों में भय व्याप्त हो जाता है। सब सावधान हो जाते हैं कि पता नहीं वह किसको खा जाये। यदि वह प्रतिदिन इसी प्रकार भोजन करता रहे, तो सबको खा जायेगा, विश्व शीघ्र ही समाप्त हो जायेगा।

रावण का बड़ा पुत्र मेघनाद है, देवता उससे भयभीत रहते हैं

बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू ॥180:7॥
जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई ॥180:8॥

बारिदनाद = मेघनाद, *जेठ सुत तासू* = उसका बड़ा लड़का था, *भट महुँ प्रथम लीक जग जासू* = जिसका संसार के योद्धाओं में प्रथम नाम था, *जेहि न होइ रन सनमुख कोई* = युद्ध में कोई भी उसका सामना नहीं कर सकता था, *सुरपुर नितहिं* = स्वर्ग में तो प्रतिदिन, *परावन होई* = भगदड़ मची रहती थी।

मेघ के समान गर्जना करने वाला मेघनाद रावण का बड़ा पुत्र है। संसार के वीरों में उसका नाम पहली पंक्ति में है। उसके सामने युद्ध में कोई आता नहीं था। जब मेघनाद इन्द्रलोक में युद्ध के लिये जाता, तो देवता लोग उसे देखते ही भाग जाते। कहते हैं कि मेघनाद के स्वर्ग में पहुँचने पर नित्य ही ऐसी भगदड़ होती थी।

रावण के पास अनेक योद्धा, जिन्हें न धर्म है न दया है

कुमुख अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय ।
एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय ॥दोहा 180॥

कुमुख अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय = दुर्मुख; अकम्पन; वज्रदन्त; धूमकेतु और अतिकाय, *एक एक जग जीति सक* = अकेले ही सारे जगत् को जीत सकते थे, *ऐसे सुभट निकाय* = ऐसे अनेक योद्धा थे।

कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिन्ह कें धरम न दाया ॥181:1॥

कामरूप = इच्छा अनुसार रूप धारण करने वाले, *जानहिं सब माया* = सब प्रकार की माया जानने वाले, *सपनेहुँ जिन्ह कें धरम न दाया* = स्वप्न में भी जिन्हें न धर्म है न दया है।

कुमुख, अकंपन, वज्र जैसे दाँतों वाले कुलिसरद, धूमकेतु और अतिकाय आदि निशाचर सेनापति हैं, जो अकेले-अकेले ही विश्व को जीत सकते हैं। ऐसे बहुत से वीर रावण की सेना में हैं। उनकी कहाँ तक गिनती की जाए? ये सब राक्षस ऐसी माया जानते हैं कि जब चाहें जैसा चाहें वैसा ही रूप धारण कर लें। इन निशाचरों की रुचि अधर्म में ही है, दया, धर्म ये जानते ही नहीं हैं।

रावण अगनित निशाचरों को देख अहंकार से कहता है

दसमुख बैठ सभाँ एक बारा। देखि अमित आपन परिवारा ॥181:2॥
सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती ॥181:3॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी ॥181:4॥

दसमुख बैठ सभाँ एक बारा = एक बार रावण सभा में बैठे हुए, *देखि अमित आपन परिवारा* = अपने विशाल परिवार को देखा, *सुत समूह जन परिजन नाती* = पुत्र; पौत्र; कुटुम्बी और सेवक, *गनै को पार निसाचर जाती* = इतनी बड़ी निशाचर जाति को भला कौन गिन सकता है, *सेन बिलोकि* = अपनी सेना को देखकर, *सहज अभिमानी* = स्वभाव से ही अभिमानी, *बोला बचन क्रोध मद सानी* = क्रोध व गर्व में सनी हुई बातें कहता है।

एक बार की बात है कि रावण अपनी सभा में बैठा था। उसने देखा कि अब हमारे परिवार का बहुत विस्तार हो गया है। पुत्रों के समूह, नाती, सेवक, सम्बन्धीगण इतनी अधिक संख्या तक पहुँच गये हैं कि अब निशाचर जाति को गिनना संभव नहीं है। अपनी विशाल एवं मजबूत सेना को भी देखा। इस विशाल एवं शक्तिशाली समूह को देखकर सहज ही अभिमान हो गया और क्रोध व गर्व से भरी वाणी में कहता है।

हमारे सबसे बड़े शत्रु देवता हैं, जो युद्ध में भाग जाते हैं

सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा ॥181:5॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई ॥181:6॥

सुनहु सकल रजनीचर जूथा = हे समस्त निशाचरों के दल सुनो! *हमरे बैरी* = हमारे शत्रु, *बिबुध बरूथा* = देवताओं के समूह हैं, *ते सनमुख नहिं करहिं लराई* = वे सामने आकर युद्ध नहीं करते हैं, *देखि सबल रिपु जाहिं पराई* = हमारे जैसे शक्तिशाली शत्रु को देखकर भाग जाते हैं।

हे निशाचर समूहों! सुनो, सारे देवताओं के समूह हमारे शत्रु हैं। ये लोग हमारे सामने आकर युद्ध नहीं करते हैं। जहाँ निशाचरों ने गर्जना की, ये देवता भाग जाते हैं। यदि इनको मारोगे नहीं, तो हमारे ये शत्रु सदा बने रहेंगे।

इन्हें मारने का एकमात्र उपाय, यज्ञ-हवन को विध्वंस कर दो

तेन्ह कर मरन एक बिधि होई। कहउँ बुझाई सुनहु अब सोई ॥181:7॥
द्विजभोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा ॥181:8॥

तेन्ह कर मरन एक बिधि होई = उनका मरण एक ही उपाय से हो सकता है, *कहउँ बुझाई* = मैं समझाकर कहता हूँ, *सुनहु अब सोई* = उसे तुम लोग सुनो, *द्विजभोजन* = विप्रों को भोजन खिलाना, *मख* = यज्ञ, *होम* = हवन, *सराधा* = श्राद्ध, *सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा* = इन सबमें तुम लोग जाकर बाधा डालो।

रावण कहता है इनको मारने का एक उपाय है, जो तुम लोगों को मैं समझाकर कहता हूँ, उसे सुनो। जहाँ कहीं देखो कि विप्र-भोज, होम या यज्ञ, श्राद्ध आदि हो रहा है, तो इस प्रकार के कार्यों में बाधा पहुँचाकर उन्हें होने ही मत दो। क्योंकि देवताओं को इन्हीं कार्यों से बल प्राप्त होता है। अर्थात् दैवी शक्ति बढ़ाने के जितने भी साधन हैं, उन सब साधनों का विनाश कर दो तो ये देवता सबल रह ही नहीं जायेंगे।

शक्तिहीन होने पर इन्हें मार देंगे, या अपने अधीन कर लेंगे

छुधा छीन बलहीन सुर सहजेहिं मिलिहहिं आइ ।
तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ भली भाँति अपनाइ ॥दोहा 181॥

छुधा छीन बलहीन सुर = भूख से दुर्बल व शक्ति हीन होकर ये देवता, *सहजेहिं मिलिहहिं आइ* = सहजता से ही हमसे आकर मिलेंगे, *तब मारिहउँ* = तब मैं उनको मार दूँगा, *कि छाड़िहउँ भली भाँति अपनाइ* = या अपने अधीन करके उन्हें छोड़ दूँगा।

जब इन देवताओं को खाने को कुछ नहीं मिलेगा तो ये शक्ति हीन होने पर सीधे हमारी शरण में आ जायेंगे। फिर हमारी मर्जी होगी कि इन्हें मारें या अपने अधीन करके इनसे सेवा करवायें। ये लोग अधीन हो जाने पर हमारा विरोध नहीं करेंगे।

मेघनाद को आज्ञा देता है, देवताओं को जीतकर बाँध लाओ

मेघनाद कहुँ पुनि हँकरावा। दीन्हीं सिख बलु बयरु बढ़ावा ॥182:1॥
जे सुर समर धीर बलवाना। जिन्ह कें लरिबे कर अभिमाना ॥182:2॥
तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुसासन काँधी ॥182:3॥

मेघनाद कहुँ पुनि हँकरावा = फिर उसने मेघनाद को बुलवाया, *दीन्हीं सिख* = उसे ऐसी शिक्षा दी, *बलु बयरु बढ़ावा* = जिससे उसका बल व देवताओं के प्रति वैर भाव बढ़े, *जे सुर समर धीर बलवाना* = जो देवता रण में धैर्यवान् व बलवान् हैं, *जिन्ह कें लरिबे कर अभिमाना* = जिन्हें युद्ध करने का बहुत अभिमान है, *तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी* = उन्हें युद्ध में जीतकर बाँध लाना, *उठि सुत पितु अनुसासन काँधी* = पुत्र ने उठकर पिता जी की आज्ञा को शिरोधार्य किया।

रावण ने मेघनाद को बुलवाकर उसे ऐसी शिक्षा दी कि उसके मन में देवताओं के प्रति वैरभाव बढ़ जाये। फिर उसे विश्वास दिलाया कि तुम बहुत शक्तिशाली हो, युद्ध में जीत तुम्हारी ही होगी। इसके बाद मेघनाद को आज्ञा देते हुए कहता है कि जो देवता युद्ध करने को तैयार हों, बलवान् हों, जिन्हें लड़ने का अभिमान हो, उन्हें जीतकर, बाँध कर ले आओ। अपने पिता रावण की आज्ञा मानकर मेघनाद देवताओं को हराने व बंधक बनाने चल दिया।

रावण स्वयं दिक्पालों से युद्ध के लिये चलता है

एहि बिधि सबही अग्या दीन्ही। आपुनु चलेउ गदा कर लीन्ही ॥182:4॥
चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्त्रवहिं सुर रवनी ॥182:5॥

एहि बिधि सबही अग्या दीन्ही = इस तरह उसने सबको आज्ञा दी, *आपुनु चलेउ गदा कर लीन्ही* = और स्वयं भी हाथ में गदा लेकर चल दिया, *चलत दसानन डोलति अवनी* = रावण के चलने से पृथ्वी डगमगाने लगी, *गर्जत गर्भ स्त्रवहिं सुर रवनी* = उसकी गर्जना से देवताओं की स्त्रियों के गर्भ गिर गये।

यहाँ पर योजना यह बनी कि मेघनाद को इन्द्र से युद्ध करना था। तो इन्द्र के जो सहायक देवता हैं, दिक्पाल हैं, वे इन्द्र की सहायता न कर पावें, इसलिये रावण उनके ऊपर सीधे आक्रमण के लिये हाथ में गदा लेकर युद्ध करने के लिये चल दिया। रावण के चलने से धरती काँपने लगी। उसके गर्जना करने से देवताओं की स्त्रियों के गर्भ गिर गये।

रावण को आता सुन, दिक्पाल भागकर गुफाओं में छिप गये

रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा ॥182:6॥
दिगपालन्ह के लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए ॥182:7॥

रावन आवत सुनेउ सकोहा = रावण को क्रोध सहित आते हुए सुनकर, *देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा* = देवता सुमेरु पर्वत की गुफा में छिप गये, *दिगपालन्ह के लोक सुहाए* = दिक्पालों के सुन्दर लोक, *सूने सकल दसानन पाए* = रावण ने सभी खाली पाये।

देवताओं ने जब सुना कि रावण क्रोध में भरकर चला आ रहा है, तो ये लोग भागे और जाकर मेरु पर्वत की गुफाओं में छिपने लगे। मेरु पर्वत देवताओं एवं ब्रह्मा जी की सभाओं का स्थल है, उसकी गुफाओं में देवताओं को सुरक्षा प्राप्त हुई। इन्द्र के सहायक देवताओं को दिक्पाल कहते हैं, इन्होंने बहुत वैभव पूर्ण निवास स्थान बनाये थे, उनमें इनकी बहुत प्रीति भी थी। लेकिन वे भयभीत होकर सारी सुख-सुविधा के साधन छोड़कर भाग गये। रावण को सभी घर खाली दिखे।

रावण ने गाली देकर ललकारा, युद्ध के लिये कोई नहीं आया

पुनि पुनि सिंघनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि पचारी ॥182:8॥
रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा ॥182:9॥

पुनि पुनि सिंघनाद करि भारी = वह बार-बार सिंह गर्जना करके, *देइ देवतन्ह गारि पचारी* = देवताओं को ललकार कर गालियाँ देता था, *रन मद मत्त फिरइ जग धावा* = रण के मद में मतवाला होकर, *प्रतिभट खोजत* = अपने जैसा योद्धा खोजता है, *कतहुँ न पावा* = पर कहीं मिलता नहीं है।

रावण ने जब वहाँ देखा कि लड़ने को कोई तैयार ही नहीं है और कोई दिखता भी नहीं है तो बार-बार शेर के जैसे दहाड़ मारकर देवताओं को ललकार-ललकार कर गालियाँ देने लगा। उसे लगा इससे छिपे हुए देवता बाहर निकल आयेंगे। इस प्रकार रावण सब जगह घूमता रहा पर उसे अपनी बराबरी का योद्धा कहीं नहीं मिला।

रावण ने जबर्दस्ती सबको अपने अधीन कर लिया

रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी ॥182:10॥
किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहिं लागा ॥182:11॥

रबि ससि = सूर्य, चन्द्रमा, *पवन बरुन धनधारी* = वायु, वरुण, कुबेर, *अगिनि काल जम* = अग्नि, काल, यम, *सब अधिकारी* = इत्यादि सब अधिकारी, *किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा* = किन्नर, सिद्ध, मनुष्य देवता व नाग, *हठि सबही के* = इन सबसे हठ करके, *पंथहिं लागा* = जाकर भिड़ गया।

ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी ॥182:12॥
आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता ॥182:13॥

ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी = जहाँ तक ब्रह्माजी की सृष्टि में शरीरधारी प्राणी थे, *दसमुख बसबर्ती नर नारी* = वे सारे स्त्री-पुरुष रावण के बस में हो गये, *आयसु करहिं सकल भयभीता* = डर के मारे सभी उसकी आज्ञा का पालन करते, *नवहिं आइ नित चरन बिनीता* = नित्य आकर नम्रतापूर्वक उसके चरणों में सिर नवाते थे।

भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र ।
मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र ॥दोहा 182 क॥

भुजबल = भुजाओं के बल से, *बिस्व बस्य करि* = सारे विश्व को वश में कर लिया, *राखेसि कोउ न सुतंत्र* = किसी को स्वतंत्र नहीं रहने दिया, *मंडलीक* = उसके अधीन के राजा मंडलीक हो गये, *मनि रावन* = रावण उनका एकछत्र सम्राट् बनकर, *राज करइ निज मंत्र* = अपनी इच्छा के अनुसार राज्य करने लगा।

देव जच्छ गंधर्ब नर किंनर नाग कुमारि ।
जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुंदर बर नारि ॥दोहा 182 ख॥

देव जच्छ गंधर्ब नर किंनर नाग = देवता, यक्ष, गंधर्व, मनुष्य, किन्नर व नाग, *कुमारि जीति बरीं* = इनकी पुत्रियों को जीतकर उनसे विवाह किया, *निज बाहु बल* = अपनी भुजाओं के बल से, *बहु सुंदर बर नारि* = ये सभी स्त्रियाँ बहुत सुन्दर व श्रेष्ठ थीं।

सूर्य, चन्द्रमा, वायु, वरुण व कुबेर, अग्नि, काल, यम आदि सब अधिकारी, किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और नाग व अनेक प्रकार के ब्रह्मा जी द्वारा बनाये शरीर धारी प्राणियों से रावण जबर्दस्ती जाकर भिड़ गया। इन्हें अपने अधीन कर लिया। इस प्रकार सृष्टि के सब प्राणी डर के मारे रावण की आज्ञा का पालन करने लगे। सब देवता भी डर के कारण रावण को प्रणाम करते हैं। अपनी भुजाओं के बल से उसने सारे विश्व को अपने अधीन कर लिया, कोई भी स्वतंत्र नहीं है। रावण के अधीन जितने भी राज्य थे, उन सबके राजा मंडलीक हो गये और रावण उन सबके ऊपर सम्राट् होकर राज्य करने लगा। जिन राज्यों पर उसने विजय प्राप्त की थी उन सब देवों, यक्षों, गंधर्वों, मनुष्यों, किन्नरों, नागों आदि की पुत्रियों को और अन्य सुंदर स्त्रियों को भी लाकर उनसे विवाह कर लिया।

रावण की आज्ञा को मेघनाद तुरंत पूरा करता है

इंद्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ ॥183:1॥

इंद्रजीत सन जो कछु कहेऊ = मेघनाद से उसने जो भी कहा, *सो सब जनु* = वह सब मानों उसने, *पहिलेहिं करि रहेऊ* = पहले से ही कर रखा हो मायने तुरंत आज्ञा का पालन करता है।

तुलसीदास जी ने इस चौपाई में मेघनाद को इन्द्रजीत कह दिया, क्योंकि अब वह स्वर्ग में जाकर देवराज इन्द्र को हराकर लौट आया है। रावण ने जो कहा, मेघनाद ने उसे इतनी शीघ्रता से पूरा कर दिया कि लगे जैसे उसने पहले से ही कर रखा था।

धर्म को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिये भारी अत्याचार किया

प्रथमहिं जिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा। तिन्ह कर चरित सुनहु जो कीन्हा ॥183:2॥
देखत भीमरूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी ॥183:3॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया ॥183:4॥

प्रथमहिं जिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा = जिनको रावण ने पहले ही आज्ञा दे रखी थी, *तिन्ह कर चरित सुनहु जो कीन्हा* = उन लोगों ने क्या किया उसे अब सुनो,

देखत भीमरूप = देखने में भयंकर थे, *सब पापी* = सब पापी थे, *निसिचर निकर* = ये निशाचरों के समूह, *देव परितापी* = देवताओं को दु:ख देने वाले थे, *करहिं उपद्रव असुर निकाया* = ये असुरों के समूह उपद्रव करते थे, *नाना रूप धरहिं करि माया* = माया से अनेकों प्रकार के रूप बना लेते थे।

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला ॥183:5॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं ॥183:6॥

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला = जिस प्रकार धर्म जड़ से खत्म हो, *सो सब करहिं बेद प्रतिकूला* = वेदों के विपरीत वही सब कार्य करते थे, *जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं* = जिन-जिन नगरों में गाय और विप्र दिखते थे, *नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं* = उस नगर; गाँव या पुर को आग लगा देते थे।

सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई ॥183:7॥
नहिं हरिभगति जग्य तप ग्याना। सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना ॥183:8॥

सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई = उनके डर से कहीं भी शुभ आचरण नहीं होता था, *देव बिप्र गुरु मान न कोई* = देवता; विप्र व गुरु को कोई नहीं मानता था। *नहिं हरिभगति जग्य तप ग्याना* = न हरि भक्ति थी न यज्ञ; तप; और ज्ञान था, *सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना* = वेद व पुराण तो स्वप्न में भी सुनने को नहीं मिलते थे।

जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा ।
आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा ॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना ।
तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना ॥छंद॥

जप जोग बिरागा तप = जप; योग; वैराग्य; तप की बातें, *मख भागा* = यज्ञ में देवताओं का भाग पाने की बात, *श्रवन सुनइ दससीसा* = यदि रावण कानों से सुनता था, *आपुनु उठि धावइ* = वह स्वयं उठकर दौड़ जाता था, *रहै न पावइ* = कुछ भी रहने नहीं पाता था, *धरि सब घालइ खीसा* = सबको पकड़कर विध्वंस कर देता था, *अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा* = संसार में ऐसा भ्रष्ट आचरण फैल गया, *धर्म सुनिअ नहिं काना* = धर्म की बातें तो कानों से सुनने में नहीं आती थीं, *तेहि बहुबिधि त्रासइ* = उसको बहुत प्रकार

से कष्ट देता था, *देस निकासइ* = देश से निकाल देता था, *जो कह बेद पुराना* = जो वेद और पुराण की बातें करता था।

बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं ।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति ॥सोरठा 183॥

बरनि न जाइ अनीति = उस अत्याचार का वर्णन नहीं किया जा सकता, *घोर निसाचर जो करहिं* = जो घोर राक्षस लोग करते थे, *हिंसा पर अति प्रीति* = हिंसा पर ही जिनका प्रेम था, *तिन्ह के पापहि कवनि मिति* = उनके पापों का क्या कहें?

जिन निशाचरों को रावन ने धर्म नष्ट करने की आज्ञा दी थी उन्होंने कैसे अत्याचार, अनैतिक कार्य किये उसका वर्णन करते हैं:

1. राजा की आज्ञा मिलने पर ये निशाचर झुंड के झुंड रास्ते में उपद्रव करते हुए जा रहे हैं। माया से एक रूप को छोड़कर दूसरा रूप धारण कर लेते हैं। इनका शरीर भी बहुत भयंकर है।
2. गाय का दूध सत्त्व गुण बढ़ाता है। सत्त्वगुणी व्यक्ति धर्म का आचरण करता है। विप्र लोग स्वयं तो धार्मिक होते हैं, औरों को भी धर्म के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। इसलिये जहाँ कहीं भी इन्हें गायें या विप्र दिखते थे, वहाँ ये नगर भर में आग लगा देते थे।
3. राक्षसों ने ऐसा प्रचार कर दिया कि जो धर्म के अनुसार चलेगा वह भूखें मरेगा, उसका विनाश होगा। एक प्रकार से लोग धर्म का पालन वैसे ही कम करते थे, इस प्रकार के प्रचार के बाद व धार्मिक लोगों का जीवन खतरे में देखकर समाज में शुभ आचरण दिखाई नहीं देने लगा।
4. रावण को जहाँ पता चले कि यज्ञ, तप, योग, जप कहीं हो रहा है तो उसे इतना गुस्सा आ जाये कि वह आदेश न देकर स्वयं ही गदा लेकर दौड़ पड़ता था और सब विध्वंस कर देता है।
5. रावण के इस प्रकार के आचरण से लोगों ने भगवान की बातें, धर्म की बातें, सुनना ही बंद कर दिया।
6. रावण यह जानता है कि वेद पुराण तो धर्म के मूल हैं, यदि ये रहेंगे तो धर्म फिर से जाग्रत हो जायेगा। निशाचरी राज्य समाप्त हो जायेगा। इसलिये वह जहाँ भी वेद के उपदेशकों को देखता था, उन्हें बहुत सी यंत्रणाएँ देकर देश से बाहर भागने पर मजबूर कर देता था।

रावण राज्य में धर्म नष्ट, दुष्टों की संख्या में वृद्धि

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा ॥184:1॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥184:2॥

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा = दुष्ट; चोर और जुआरी बढ़ गये, *जे लंपट परधन परदारा* = पराये धन व परायी स्त्री पर नजर रखने वाले भी बढ़ गये, *मानहिं मातु पिता नहिं देवा* = माता; पिता व देवताओं को नहीं मानते थे, *साधुन्ह सन करवावहिं सेवा* = साधु-सज्जनों से अपनी सेवा करवाते हैं।

रावण के राज्य में चोर, दुष्ट और जुआरी बहुत बढ़े। माने ये सब तो थे पहले भी, लेकिन अनुकूल राजा के आने से समाज में इस प्रकार के आचरण करने वालों की संख्या में वृद्धि हो गई। लंपट वे हैं जो परायी स्त्री को ताकते हैं। दूसरों को कष्ट पहुँचाने वाले खल हैं। लोग अपने माता-पिता का आदर नहीं करते। यहाँ तक कि ईश्वर का आदर भी बंद हो गया। ऐसे अहंकारी व्यक्ति साधु-सज्जनों की सेवा करने के बदले उल्टे उनसे अपनी सेवा कराते हैं।

शिव जी कहते हैं इस प्रकार के स्वभाव वाले निशाचर हैं

जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ॥183:3॥

जिन्ह के यह आचरन भवानी = हे भवानी! जिनका इस प्रकार का आचरण है, *ते जानेहु निसिचर सब प्रानी* = उन सभी प्राणियों को तुम निशाचर ही समझो।

रावण राज्य का वर्णन करने के बाद शिव जी पार्वती जी से कहते हैं कि रावण के स्वभाव के सभी प्राणी निशाचर ही हैं। रावण की तरह जो राजा राज्य कर रहा है वह भी निशाचर ही है। कहने का आशय है जो अच्छे कपड़े पहने है, देखने में सुंदर है, मीठा-मीठा बोलता है, वह भी यदि दूसरों को कष्ट पहुँचाता है, पराये धन पर, परायी स्त्री पर नजर रखता है, माता-पिता का आदर नहीं करता, ईश्वर को नहीं मानता, उसके और भी कार्य निशाचरों के स्वभाव से मिलते जुलते हैं तो उसे भी निशाचर ही समझना चाहिये।

9. सब देवता भगवान से अवतार की प्रार्थना करते हैं

(दोहा 183 से 186)

रावण के घोर अत्याचार से जब धर्म समाप्त होने लगता है तो पृथ्वी व्याकुल होकर गाय का रूप धारण करके देवताओं के पास जाती है। वे समस्या का समाधान नहीं कर पाते। सब मिलकर ब्रह्मा जी के पास जाते हैं। वे भी अपने को असमर्थ पाकर कहते हैं, इस समस्या का समाधान तो भगवान ही कर पायेंगे। सब सोचते हैं कि भगवान से मिलने कहाँ जायें, शिव जी सलाह देते हैं कि वे तो सब जगह हैं, प्रेम से बुला लो, यहीं आ जायेंगे। ब्रह्मा जी विनम्रता से, एकाग्रता से प्रेम व पूरे विश्वास के साथ विष्णु जी की स्तुति करते हैं। इस प्रसंग में यह बताया है कि भगवान की स्तुति हम कैसे करें व स्तुति में क्या कहें। भगवान के सगुण, निर्गुण, ईश्वर, तीनों रूपों की महिमा बताकर प्रार्थना करते हैं। जितनी अधिक महिमा कहेंगे प्रार्थना उतनी शीघ्रता से प्रभावी होती है।

अधर्म व दुष्टों के भार से पृथ्वी व्याकुल हो गई

अतिसय देखि धर्म के ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी ॥183:4॥
गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही ॥183:5॥
सकल धर्म देखइ बिपरीता। कहि न सकइ रावन भय भीता ॥183:6॥

अतिसय देखि धर्म के ग्लानी = यह देखकर कि धर्म बहुत अधिक घट गया है, *परम सभीत* = बहुत भयभीत होकर, *धरा अकुलानी* = पृथ्वी व्याकुल हो गई, *गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही* = पर्वत; नदी व समुद्र का बोझ मुझे उतना नहीं है, *जस मोहि गरुअ* = जितना भार मुझे लगता है, *एक परद्रोही* = दूसरों को कष्ट देने वाले एक व्यक्ति का, *सकल धर्म देखइ बिपरीता* = सबके आचरण विपरीत ही दिखाई दे रहे हैं, *कहि न सकइ रावन भय भीता* = रावण से भयभीत हुई वह कुछ बोल नहीं सकती।

इस प्रकार धर्म की हानि होते देखकर पृथ्वी व्याकुल व भयभीत हो गई। वह कहती है कि पर्वतों, नदियों, समुद्र का भार मेरे ऊपर है, पर वह भार मुझे उतना भारी नहीं लगता जितना एक दुष्ट व्यक्ति का लगता है। पृथ्वी को सब लोगों का आचरण विपरीत ही दिखाई दे रहा है। बहुत बड़ी संख्या में दुष्ट लोग हो गये। राजा के अत्याचार के खिलाफ कोई बोल नहीं सकता।

गौ बनकर, देवताओं के पास पहुँची, वे कुछ न कर सके

धेनु रूप धरि हृदयँ बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी ॥183:7॥
निज संताप सुनाएसि रोई। काहू तें कछु काज न होई ॥183:8॥

धेनु रूप धरि = गाय का रूप धारण किया, *हृदयँ बिचारी* = मन में सोच विचारकर, *गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी* = वहाँ गई जहाँ देवता व मुनि का समाज था, *निज संताप* = अपना दु:ख, *सुनाएसि रोई* = रोते हुए सुनाया, *काहू तें कछु काज न होई* = पर किसी से कोई काम नहीं बना।

फिर उसने विचार करके गाय का रूप धारण किया और वहाँ पहुँची जहाँ देवता व मुनि का समाज था। रोते हुए, रावण के अत्याचार की बातें बतायीं। उन लोगों से कुछ काम बना नहीं। पृथ्वी के संरक्षक सज्जन लोग हैं, इसलिये ये पहले इनके पास जाती है।

सब ब्रह्मा के पास पहुँचे, मदद करने में वे भी असमर्थ

सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका ।
सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका ॥
ब्रह्माँ सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई ।
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई ॥छंद॥

सुर मुनि गंधर्बा = देवता, मुनि व गंधर्व, *मिलि करि सर्बा* = सब लोग एकत्रित होकर, *गे बिरंचि के लोका* = ब्रह्मा जी के लोक गये, *सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी* = बेचारी पृथ्वी भी गौ का शरीर धारण किये साथ में थी, *परम बिकल भय सोका* = वह भय व शोक से बहुत व्याकुल थी, *ब्रह्माँ सब जाना* = ब्रह्मा जी सब जान गये, *मन अनुमाना* = मन में सोचा, *मोर कछू न बसाई* = इसमें मेरे बस में कुछ नहीं है, *जा करि तैं दासी* = पृथ्वी से कहते हैं कि तुम जिसकी दासी हो, *सो अबिनासी* = वह अविनासी, *हमरेउ तोर सहाई* = हमारा व तुम्हारा दोनों का सहायक है।

देवता, मुनि, गंधर्व ये लोग गाय का रूप धारण किये पृथ्वी को लेकर ब्रह्मा जी के पास पहुँचे। उनसे कहते हैं कि यह पृथ्वी हमारे पास आयी है, इसकी

समस्या बहुत भीषण है, कुछ ध्यान दीजिये, रक्षा का उपाय बताइये। ब्रह्मा जी को समझ में आ गया, हमने ही तो रावण को वरदान दिया है। उन्होंने सोचा हम वरदान तो दे सकते हैं, पर उसके दुष्परिणाम का उपचार नहीं कर सकते। उन्हें लगा इसके उपाय के लिये और ऊपर जाना चाहिये। पृथ्वी से कहते हैं कि जिस परमात्मा की सेविका तुम हो उसी के सेवक हम भी हैं। हमारी भी वही सहायता करता है, तुम्हारी भी वही सहायता करेगा।

धैर्य रखो, हरि का स्मरण करो, वे ही कष्ट दूर करेंगे

धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरिपद सुमिरु ।
जानत जन की पीर प्रभु भंजिहि दारुन बिपति ॥सोरठा 184॥

धरनि धरहि मन धीर = हे धरती! मन में धैर्य रखो, *कह बिरंचि* = ब्रह्मा जी ने कहा, *हरिपद सुमिरु* = श्री हरि के चरणों का स्मरण करो, *जानत जन की पीर* = भगवान अपने भक्तों के कष्ट को जानते हैं, *प्रभु भंजिहि दारुन बिपति* = प्रभु ही इस दारुण विपत्ति को दूर करेंगे।

ब्रह्मा जी पृथ्वी से कहते हैं कि तुम रोओ नहीं, धैर्य धारण करके भगवान के चरणों का स्मरण करो। वे अपने भक्तों की समस्या को जानते हैं। इस दारुण विपत्ति को वे ही समाप्त करेंगे। तुम्हारे ऊपर का भार भगवान की कृपा से दूर होगा।

ब्रह्मा जी की सभा में विचार, भगवान कहाँ मिलेंगे?

बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा ॥185:1॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई ॥185:2॥

बैठे सुर सब करहिं बिचारा = सब देवता बैठकर सोचने लगे, *कहँ पाइअ प्रभु* = प्रभु का स्थान कहाँ है, *करिअ पुकारा* = जहाँ जाकर उन्हें पुकारें, *पुर बैकुंठ जान कह कोई* = कोई वैकुंठधाम जाने को कहता है, *कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई* = कोई कहता है प्रभु क्षीर सागर में निवास करते हैं।

ब्रह्मा जी के पास सभा हो रही है, सब विचार कर रहे हैं कि प्रभु मिलेंगे कहाँ, जहाँ जाकर उन्हें पुकारें। किसी ने कहा भगवान तो वैकुंठ में वास करते हैं,

वहीं चलो। कोई कहता है भगवान क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर लेटे हुए हैं वहीं चलना चहिये।

मैंन कहा भगवान तो सर्वत्र, प्रेम से बुलाओ, यहीं आ जायेंगे

जाके हृदयँ भगति जसि प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती ॥185:3॥
तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ ॥185:4॥
हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥185:5॥

जाके हृदयँ भगति जसि प्रीती = जिसके हृदय में जैसी भक्ति व प्रेम रहता है, *प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती* = प्रभु उसी तरह से वहाँ प्रगट हो जाते हैं, *तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ* = हे गिरिजा! उस समाज में मैं भी था, *अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ* = अवसर पाकर मैंने एक बात कही, *हरि ब्यापक सर्बत्र समाना* = भगवान तो सब जगह समान रूप से व्याप्त हैं, *प्रेम तें प्रगट होहिं* = प्रेम पाकर वे प्रकट हो जाते हैं, *मैं जाना* = मैं तो यही जानता हूँ।

देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥185:6॥
अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी ॥185:7॥

देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं = देश; काल; दिशा; विदिशा में, *कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं* = बताओ ऐसी जगह कहाँ है; जहाँ प्रभु न हों, *अग जगमय सब* = जड़ व चेतन सब में वे हैं, *रहित बिरागी* = वहाँ रहते हुए भी उसका प्रभाव उन पर नहीं पड़ता है, *प्रेम तें प्रभु प्रगटइ* = प्रभु प्रेम से प्रगट हो जाते हैं, *जिमि आगी* = जैसे अग्नि प्रयास से प्रगट हो जाती है।

शिव जी, पार्वती जी को कथा सुनाते हुए कहते हैं कि उस सभा में मैं भी उपस्थित था। मैंने अपनी जानकारी के अनुसार ये बातें कहीं:

1. भगवान के प्रति जिसके हृदय में जिस रूप में प्रेम होता है, उसी रूप में वहाँ पर उसी कार्य को करने के लिये प्रगट हो जाते हैं। यह नियम है।
2. भगवान तो सभी जगह एक समान विद्यमान हैं, लेकिन अप्रकट हैं, प्रेम से पुकारो, तो वे प्रकट हो जाते हैं। एक प्रकार से आशय यह है कि उनकी शक्ति सभी जगह एक जैसी है। ऐसा नहीं है कि वैकुंठ में ज्यादा शक्ति है, पृथ्वी में कम।

3. सभी स्थानों में, सभी समय, सभी दिशाओं में, दिशाओं के मध्य में ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ वे न हों।
4. सारी जड़-प्रकृति में और सारी चेतन-प्रकृति में, मायने जीव व निर्जीव दोनों में वे अधिष्ठान रूप में विद्यमान हैं। पर वे निर्विकार हैं, मायने इन सब में रहते हुए भी इनका प्रभाव उनके ऊपर नहीं पड़ता है।
5. जैसे लकड़ी में अग्नि विद्यमान रहती है लेकिन दिखाई नहीं देती है। लकड़ी को आपस में रगड़ने से अग्नि प्रकट हो जाती है। ऐसे ही प्रेम से स्मरण करने से अप्रकट भगवान प्रकट हो जाते हैं।

मेरी बातें सबको अच्छी लगीं, ब्रह्मा जी ने भी कहा ठीक है

मोर बचन सब के मन माना। साधु साधु करि ब्रह्म बखाना ॥185:8॥

मोर बचन = मेरी बातें, *सब के मन माना* = सबको अच्छी लगीं, *साधु साधु करि ब्रह्म बखाना* = ब्रह्मा जी ने ठीक है, ठीक है कहकर समर्थन किया।

शिव जी कहते हैं भगवान को प्रकट करने की मेरी राय सबके मन को भा गयी। ब्रह्मा जी ने भी ठीक है कहकर समर्थन किया। संस्कृत में साधु का मतलब ठीक है होता है।

ब्रह्मा जी स्तुति करते हैं, कैसे स्तुति करनी है, सीखें

सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर ।
अस्तुति करत जोरि कर सावधान मतिधीर ॥दोहा 185॥

सुनि = मेरी बातें सुनकर, *बिरंचि* = ब्रह्मा जी, *मन हरष* = प्रसन्न मन से, *तन पुलकि* = रोमांचित शरीर से, *नयन बह नीर* = आँखों से अश्रु बहाते हुए, *अस्तुति करत* = स्तुति करने लगे, *जोरि कर* = हाथ जोड़कर, *सावधान* = एकाग्रता से, *मतिधीर* = पूरे विश्वास के साथ।

रामचरितमानस के एक-एक शब्द की महिमा है। इसलिये पूज्य गुरुदेव सत्यानंद जी इस ग्रंथ के शब्दानुवाद पर जोर देते हैं। ब्रह्मा जी कैसे स्तुति करते हैं, यह बात सीखने, समझने व जीवन में उतारने की है।

1. मन में प्रसन्नता है, शरीर पुलकित है, आँखों में प्रेम के अश्रु हैं।
2. हाथ जोड़े हैं, मायने बहुत ही विनम्रता से प्रार्थना करते हैं।
3. सावधान होकर मायने एकाग्रता के साथ स्तुति करते हैं। ऐसा नहीं कि स्तुति तो कर रहे हैं भगवान की और मन में दुनिया भर की बातें चल रही हैं।
4. मतिधीर मायने इस बात का पूरा-पूरा विश्वास कि हम जो बोल रहे हैं, भगवान उसको सुन रहे हैं।

इन बातों का धीरे-धीरे अभ्यास करते हुए भगवान की नियमित प्रार्थना करें, स्तुति करें, मंत्र करें, पाठ करें तो वह कभी भी निष्फल नहीं होगी, उसका फल अवश्य प्राप्त होगा।

विष्णु भगवान के सगुण रूप की महिमा का वर्णन

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता ।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता ॥

जय जय सुरनायक = देवताओं के स्वामी की जय हो, *जन सुखदायक* = भक्तों को सुख देने वाले, *प्रनतपाल भगवंता* = हे भगवन आप शरण में आये की रक्षा करते हैं, *गो द्विज हितकारी* = गाय और विप्र का हित करते हैं, *जय असुरारी* = राक्षसों का विनाश करने वाले की जय हो, *सिंधुसुता प्रिय कंता* = समुद्र की पुत्री लक्ष्मी जी के आप प्रिय पति हैं।

पालन सुर धरनी अद्‌भुत करनी मरम न जानइ कोई ।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई ॥

पालन सुर धरनी = देवताओं व पृथ्वी का पालन करने वाले, *अद्‌भुत करनी* = अद्‌भुत कार्य करने वाले, *मरम न जानइ कोई* = आपका रहस्य कोई नहीं जानता, *जो सहज कृपाला* = स्वभाव से ही कृपालु हैं, *दीनदयाला* = दीनों पर दया करते हैं, *करउ अनुग्रह सोई* = ऐसे भगवान कृपा करो।

रावण के अत्याचार से दु:खी पृथ्वी व देवताओं की रक्षा के लिये ब्रह्मा जी स्तुति करते हैं। लेकिन दु:खों का स्पष्ट वर्णन न करके भगवान की वह महिमा कही गयी है जब वे अवतार लेकर कार्य करते हैं। स्तुति का यही नियम है। रावण शब्द कहीं नहीं आया है, इससे यह प्रार्थना सर्वकालिक,

सार्वभौमिक व आदर्श स्तुति है। हम आज भी किसी भी कष्ट से छुटकारा पाने के लिये इसे कर सकते हैं। शब्दों की योजना इस प्रकार की है कि भाव पता लग जाये।

1. *सुरनायक*– आप देवताओं के स्वामी हैं, आपकी जय हो। स्वामी का काम अपने अधीन लोगों की रक्षा करना होता है, देवता आपके अधीन हैं, उनकी रक्षा कीजिये।
2. *जनसुखदायक*– आप भक्तों को सुख देने वाले हैं। आपके भक्त रावण से दु:खी हैं। आप उनका दु:ख दूर करिये।
3. *प्रनतपाल भगवंता*– हे भगवान, शरण में आने वाले की आप रक्षा करते हैं। हम आपकी शरण आये हैं। हमारी रक्षा करें।
4. *गो द्विज हितकारी*– आप गाय और विप्रों का हित करने वाले हैं। इन दोनों पर संकट आ गया है। गाय का दूध सत्त्वगुण में वृद्धि करता है, उसे मारा जा रहा है, विप्र लोग शास्त्रों की शिक्षा देकर धर्म का प्रचार करते हैं। उन्हें भी सताया जा रहा है। उन दोनों का हित करें।
5. *जय असुरारी*– आप असुरों का नाश करने वाले हो। इस समय असुर ही सबको परेशान किये हैं। उनका विनाश करें।
6. हे लक्ष्मी पति! आप देवताओं व पृथ्वी का पालन करने वाले हैं।
7. आप अवतार लेकर बहुत ही अद्‌भुत कार्य करते हैं। आपका रहस्य कोई जान नहीं सकता है। इस प्रकार अवतार लेने की प्रार्थना भी कर दी।
8. अनुग्रह करें– इस छंद के अंत में कह दिया कि हे स्वभाव से ही कृपालु, दीनों पर दया करने वाले, हमारे ऊपर अनुग्रह करें।

भगवान के निर्गुण रूप का वर्णन

जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा ।
अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा ॥

जय जय अबिनासी = हे सदैव बने रहने वाले आपकी जय हो, *सब घट बासी* = सभी शरीरों में रहते हैं, *ब्यापक* = सर्वव्याप्त हैं, *परमानंदा* = परम आनंद देने वाले हैं, *अबिगत गोतीतं* = इन्द्रियों की पहुँच के बाहर हो, *चरित पुनीतं* = पवित्र चरित्र करते हैं, *मायारहित* = माया के अधीन नहीं हैं, *मुकुंदा* = मुक्ति प्रदान करने वाले हैं।

जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा ।
निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा ॥

जेहि लागि = जिनके लिये, *बिरागी* = विरक्त, *अति अनुरागी* = बहुत ही प्रेम से, *बिगत मोह* = मोह को त्यागकर, *मुनिबृंदा* = मुनि लोग, *निसि बासर* = रात दिन, *ध्यावहिं* = ध्यान करते हैं, *गुन गन गावहिं* = जिनके गुणों का गान करते हैं, *जयति सच्चिदानंदा* = उन सत्; चित्त; आनंद वाले प्रभु की जय हो।

स्तुति में अपने दु:खों के बजाय जितना अधिक भगवान की महिमा का वर्णन होगा उतना ही शीघ्र उसका प्रभाव देखने में आयेगा। शिव जी ने कहा था भगवान तो सर्वव्याप्त हैं, प्रेम से पुकारो, आ जाते हैं। दूसरे छंद में भगवान की सर्वव्यापकता का स्मरण करते हैं।

1. *जय जय अबिनासी*– आप नित्य विद्यमान हैं, आपकी जय हो। भगवान आज भी वैसे ही हैं जैसे उस समय थे जब ब्रह्मा जी ने यह प्रार्थना की थी।
2. *सब घट बासी*– घट मायने शरीर होता है। आप सबके हृदय में वास करते हो। हमारे भी हृदय में वास करते हो, हमारे दु:ख को आप जानते ही हो।
3. *ब्यापक*– जैसे आकाश सब जगह है वैसे ही आप हमारे अंदर भी हो और बाहर भी हो।
4. *परमानंदा*– हमारे कष्टों को दूर करके आनंद प्रदान करिये।
5. *अबिगत गोतीतं*– आप हमारे मन बुद्धि से पकड़ में आने वाले नहीं हो, उसके परे हो।
6. *चरित पुनीतं*– सगुण रूप धारण करके परम पवित्र चरित्र करते हैं।
7. *मायारहित*– आप माया के अधीन नहीं हैं, माया आपके अधीन है।
8. *मुकुंदा*– स्मरण करने मात्र से मुक्ति प्रदान करने वाले हो।
9. मुनि लोग वैराग्य धारण करके व मोह त्याग करके, बहुत ही प्रेम से दिन रात आपके सत् ,चित्त व आनंद स्वरूप का ध्यान करते हैं। आपके गुणों का वे गान भी करते रहते हैं।

परमात्मा के ईश्वर रूप का वर्णन

जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा ।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा ॥

जेहिं सृष्टि उपाई = जिसने इस जगत् की रचना की, *त्रिबिध बनाई* = तीन-तीन चीजें बनाई, *संग सहाय न दूजा* = बिना दूसरे की सहायता के, *सो करउ अघारी* = वही हमारे पाप दूर करें, *चिंत हमारी* = हमारी चिंता करें, *जानिअ भगति न पूजा* = हम न भक्ति जानते हैं, न पूजा करना जानते हैं।

जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा ।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरजूथा ॥

जो भव भय भंजन = जो संसार के भय को दूर करते हैं, *मुनि मन रंजन* = मुनियों के मन को आनंद प्रदान करते हैं, *गंजन बिपति बरूथा* = विपत्तियों के समूह का नाश करते हैं। *मन बच क्रम बानी* = मन; वाणी व कर्म से, *छाड़ि सयानी* = चतुराई छोड़कर, *सरन* = आपकी शरण आये हैं, *सकल सुरजूथा* = सारे देवताओं का समूह।

स्वामी सत्यानंद जी कहते हैं कि तुलसीदास जी ने वेदांत दर्शन, अद्वैत वेदांत दर्शन, विशिष्ट अद्वैत दर्शन को गंभीरता से लेकर उसे बहुत सुंदर ढंग से समझाया है। स्तुति के तीसरे छंद में बताते हैं कि परमात्मा संसार की रचना कैसे करता है। उसके ईश्वर रूप का वर्णन है।

1. हे प्रभु आपने ही सृष्टि की रचना की है।
2. त्रिबिध बनाई– आपने सत्त्वगुण, रजोगुण व तमोगुण तीनों को बनाया है। इनके मिश्रण से ही सृष्टि बनी। पृथ्वी लोक, स्वर्ग लोक व पाताल लोक तीनों को आपने बनाया है। तीनों देवता– ब्रह्मा, विष्णु व महेश भी आपने बनाये हैं।
3. सृष्टि की रचना आपने स्वयं अपनी शक्ति से की है। आपको किसी अन्य की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती है।
4. पाप दूर कर हमारी चिंता करें– हमारे दु:खों का कारण पाप है, इसलिये उन्हें दूर करना आवश्यक है। पाप मायने नकारात्मक वृत्ति, आशा के बजाय निराशा की तरफ बढ़ना। आप उन्हें दूर करें और हमारी भी चिंता करें।
5. भक्ति प्रदान करें– हमें ठीक-ठीक पता नहीं है कि भक्ति क्या है? पूजा कैसे करनी है? आप हमें भक्ति प्रदान करें, जिससे सारी समस्या दूर हो।
6. भव भय भंजन– प्रभु हमने अपने अंदर भी एक संसार बना रखा है, वह बहुत दु:ख देता है, आप भय से उत्पन्न उस दु:ख को नष्ट करें।
7. मुनि लोग भी दु:खी हैं, आप उनकी विपत्तियों को दूर करके आनंद प्रदान करें।

8. वाणी से तो कह ही रहे हैं कि आपकी शरण में हैं, हमारे मन में भी यही बात है और जब आप हमारी सहायता करेंगे तो हम लोग भी कर्म से यथाशक्ति प्रयास करेंगे। मन, वचन, कर्म से शरण में हैं।
9. छाड़ि सयानी– सब देवता चतुराई छोड़कर आपसे प्रार्थना कर रहे हैं। काम अटकने पर ही प्रार्थना नहीं कर रहे हैं, सारी शक्ति लगाकर हार गये तब आपकी शरण में हैं। यह प्रार्थना बनावटी नहीं है।

हम सब आपके चरणों में मस्तक झुकाये हैं, कृपा करें

सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना ।
जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना ॥

सारद = सरस्वती जी, *श्रुति* = वेद, *सेषा* = शेषनाग, *रिषय असेषा* = ऋषि लोग, *जा कहुँ कोउ नहिं जाना* = ये लोग भी आपकी महिमा को नहीं जान पाते, *जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे* = वेद ऐसा कहते हैं कि आपको दीन प्रिय हैं, *द्रवउ सो श्रीभगवाना* = ऐसे भगवान द्रवित हों।

भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुखपुंजा ।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा ॥छंद॥

भव बारिधि = संसार रूपी समुद्र के लिये, *मंदर* = मंदराचल पर्वत हैं, *सब बिधि सुंदर* = आप सब प्रकार से सुंदर हैं, *गुनमंदिर* = सभी गुण हैं, *सुखपुंजा* = सुख देने वाले हैं, *मुनि सिद्ध सकल सुर* = मुनि; सिद्ध व सभी देवता, *परम भयातुर* = ये सब भय से बहुत पीड़ित हैं, *नमत नाथ पद कंजा* = आपके चरण कमलों में सिर झुकाते हैं।

अंतिम छंद में कहते हैं आपकी महिमा का पूरा वर्णन नहीं हो सकता है। आप द्रवित होकर हम पर कृपा करें।
1. सरस्वती जी, शेष नाग व ऋषि लोग आपकी महिमा का वर्णन करते रहते हैं, पर महिमा कितनी है ये वे भी नहीं जानते हैं।
2. दीन मायने निरहंकारी। वेद बार-बार कहते हैं कि आपको निरहंकारी बहुत प्रिय है। हम सब बिना अहंकार के आपसे प्रार्थना करते हैं, हे प्रभु आप द्रवित हों, हम पर कृपा करें।

3. हमारे अंदर का संसार भी समुद्र के समान अथाह है। जैसे समुद्र मंथन के लिये मंदराचल पर्वत को लगाया गया वैसे ही आप अंदर के संसार समुद्र का मंथन कर दें।
4. हे प्रभु आप सौंदर्य निधान हो, गुण निधान हो और सुख निधान हो।
5. अंत में ब्रह्मा जी कहते हैं कि जितने भी सिद्ध, मुनि व देवता यहाँ आये हैं वे भय से पीड़ित हैं, वे सब मस्तक झुकाकर आपको प्रणाम करते हैं।

10. मनुष्य रूप में भगवान, वानर रूप में देवताओं का अवतार

(दोहा 187 से 188)

ब्रह्मा जी की प्रेम भरी प्रार्थना सुनकर भगवान आकाशवाणी करते हैं कि हम मनुष्य बनकर, चार भाइयों के रूप में अवतार लेंगे, निशाचरों का विनाश करके, मुनियों, देवताओं, भक्तों व धर्म की रक्षा करेंगे। अवतार इसलिये भी लेंगे कि कश्यप-अदिति को हम पुत्र बनकर आने का वरदान पहले ही दे चुके हैं। वे अयोध्या में दशरथ-कौशल्या बन गये हैं, उन्हीं के यहाँ अवतार लेंगे। एक कारण और बताते हैं कि नारद के श्राप को सच करना है, इसलिये हमारी परम शक्ति भी अवतार लेगी। ब्रह्मा जी देवताओं से कहते हैं कि प्रभु के कार्य में सहायक बनने के लिये तुम लोग वानर बनकर अवतार लो। इस प्रकार रावण को मनुष्य व वानर मारेंगे, उसकी तैयारी शुरू हो गई।

प्रेम पूर्ण प्रार्थना सुनकर आकाशवाणी होती है

जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह ।
गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह ॥दोहा 186॥

जानि सभय सुर भूमि= देवता व पृथ्वी को भयभीत जानकर, *सुनि बचन समेत सनेह*= स्नेह से भरी प्रार्थना को सुनकर, *गगनगिरा गंभीर*= गंभीर आकाशवाणी होती है, *भइ हरनि सोक संदेह*= जिससे शोक व संदेह दूर हो गया।

भगवान ने प्रार्थना को सुना, क्या जाना? देवता व पृथ्वी इस समय भयभीत हैं, रावण ने सबको अपने वश में कर रखा है, सब कष्ट पा रहे हैं, अधर्म व्याप्त है। प्रार्थना को सुना, क्या देखा? इसमें शब्दों का जाल बस नहीं है, प्रेम भाव

है, स्नेह है। बिना भाव से, बिना प्रेम से की गई प्रार्थना भगवान सुनते ही नहीं। यह सब देख-सुनकर भगवान ने आकाशवाणी की। जिसे सुनते ही सबका शोक व संदेह दूर हो गया।

मैं अंशों सहित व अपनी परम शक्ति सहित अवतार लूँगा

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा ॥187:1॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा ॥187:2॥

जनि डरपहु = डरो मत, *मुनि सिद्ध सुरेसा* = हे मुनीश; सिद्ध व देवता, *तुम्हहि लागि* = तुम लोगों के लिये, *धरिहउँ नर बेसा* = मैं मनुष्य रूप धारण करूँगा, *अंसन्ह सहित मनुज अवतारा* = अंशों सहित मनुष्य बनकर अवतार लूँगा, *लेहउँ दिनकर बंस उदारा* = श्रेष्ठ सूर्यवंश में अवतार होगा।

कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा ॥187:3॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरीं प्रगट नर भूपा ॥187:4॥
तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई ॥187:5॥

कस्यप अदिति महातप कीन्हा = कस्यप व अदिति ने बहुत भारी तप किया था, *तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा* = उनको मैंने पहले ही वरदान दे रखा था, *ते दसरथ कौसल्या रूपा* = वे लोग कौसल्या व दशरथ बनकर, *कोसलपुरीं प्रगट नर भूपा* = मनुष्यों के राजा होकर अयोध्यापुरी में प्रगट हुए हैं, *तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई* = मैं उन्हीं के घर में जाकर अवतार लूँगा, *रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई* = रघुकुल में श्रेष्ठ चार भाई बनकर अवतार लेंगे।

नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ ॥187:6॥
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई ॥187:7॥

नारद बचन सत्य सब करिहउँ = नारद के सब वचन मैं सत्य करूँगा, *परम सक्ति समेत अवतरिहउँ* = और अपनी परम शक्ति सहित अवतार लूँगा, *हरिहउँ सकल भूमि गरुआई* = मैं पृथ्वी का सब भार दूर कर दूँगा, *निर्भय होहु देव समुदाई* = हे देवताओं के समूह तुम निर्भय हो जाओ।

आकाशवाणी में परब्रह्म परमेश्वर ये बातें कहते हैं:

1. हे मुनि व देवता लोगों तुम डरो मत, हम तुम्हारी रक्षा के लिये मनुष्य रूप धारण करेंगे। हम अत्यंत श्रेष्ठ सूर्यवंश में अंशों सहित अवतार लेंगे। यहाँ यह बात समझने की है कि एक ही ब्रह्म कैसे विभिन्न रूप धारण करके अवतार लेता है।
2. कश्यप-अदिति के भारी तप से प्रसन्न होकर हम उन्हें पहले ही वर दे चुके हैं कि तुम्हारे यहाँ पुत्र बनकर अवतार लेंगे। कश्यप अयोध्या के राजा दशरथ बनकर व अदिति उनकी महारानी कौशल्या बनकर प्रकट हो चुके हैं। हम चार भाई बनकर उन्हीं के यहाँ अवतार लेंगे।
3. नारद जी ने जो पत्नी वियोग के दु:ख का श्राप दिया था, वह सब सत्य करना है। इसलिये हमारी परम शक्ति भी अवतार लेंगी।
4. पृथ्वी के ऊपर जिन असुरों का भार है, उन्हें मारकर हम भार दूर कर देंगे। हे देवता लोग तुम अब निर्भय हो जाओ।

ब्रह्मा जी ने देवताओं से कहा, वानर बनकर प्रभु की सेवा करो

गगन ब्रह्मबानी सुनि काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना ॥187:8॥
तब ब्रह्माँ धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जियँ आवा ॥187:9॥

गगन ब्रह्मबानी सुनि काना = आकाश में ब्रह्म की वाणी को कानों से सुनकर, *तुरत फिरे सुर* = देवता तुरंत लौट गये, *हृदय जुड़ाना* = उनके मन को शांति मिली, *तब ब्रह्माँ धरनिहि समुझावा* = तब ब्रह्मा जी ने पृथ्वी को समझाया, *अभय भई* = वह भी निर्भय हो गई, *भरोस जियँ आवा* = उसके जी में विश्वास आ गया।

निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ ।
बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ ॥दोहा 187॥

निज लोकहि बिरंचि गे = ब्रह्मा जी अपने लोक को चले गये, *देवन्ह इहइ सिखाइ* = देवताओं को यह सिखाकर, *बानर तनु धरि धरि* = तुम लोग वानरों का शरीर रख-रखकर, *महि* = पृथ्वी पर जाओ, *हरि पद सेवहु जाइ* = वहाँ भगवान के चरणों की सेवा करो।

गए देव सब निज निज धामा। भूमि सहित मन कहुँ बिश्रामा ॥188:1॥
जो कछु आयसु ब्रह्माँ दीन्हा। हरषे देव बिलंब न कीन्हा ॥188:2॥
बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं ॥188:3॥

गए देव सब निज निज धामा = देवता भी अपने-अपने घर चले गये, *भूमि सहित मन कहुँ बिश्रामा* = पृथ्वी सहित सबके मन को शांति मिली, *जो कछु आयसु ब्रह्माँ दीन्हा* = ब्रह्मा ने जो कुछ भी आज्ञा दी थी, *हरषे देव बिलंब न कीन्हा* = उससे देवता प्रसन्न हो गये और वैसा ही करने में देर नहीं की, *बनचर देह धरी छिति माहीं* = पृथ्वी पर उन्होंने वानर का शरीर धारण कर लिया, *अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं* = उनमें अपार बल और प्रताप था।

आकाशवाणी समाप्त होने पर ब्रह्मा जी ने पृथ्वी को कह दिया कि तुम निर्भय होकर जाओ, कुछ ही दिन में तुम्हारे कष्ट दूर हो जायेंगे। पृथ्वी को विश्वास हो गया, वह शांत होकर चली गई। ब्रह्मा जी ने फिर देवताओं को समझाया कि तुम्हें भी प्रयास करना है, इसलिये वानर शरीर धारण करके तुम लोग भी अवतार लो। शिव जी वानर हनुमान बन गये, ब्रह्मा जी रीछ जामवंत बन गये। मुख्य-मुख्य देवता वानरों के सेनापति बन गये और साधारण देवता उनके सैनिक बन गये। भगवान तो बाद में अवतार लेते हैं, इन देवताओं ने पहले ही पृथ्वी पर जाकर अवतार लिया।

वानर प्रभु की राह देखते हुए युद्ध का अभ्यास करते हैं

गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मतिधीरा ॥188:4॥
गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी। रहे निज निज अनीक रचि रूरी ॥188:5॥

गिरि तरु नख आयुध = पर्वत; वृक्ष व नाखून ही उनके शस्त्र थे, *सब बीरा* = सभी बहुत वीर थे, *हरि मारग चितवहिं* = भगवान के आने की राह देखने लगे, *मतिधीरा* = धीर बुद्धि वाले थे, *गिरि कानन* = पर्वतों व जंगलों में, *जहँ तहँ* = जहाँ तहाँ, *भरि पूरी रहे* = ये भरपूर छा गये, *निज निज अनीक रचि रूरी* = अपनी-अपनी सुंदर सेना बना ली।

यह सब रुचिर चरित मैं भाषा। अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा ॥188:6।

यह सब रुचिर चरित मैं भाषा = यह सब सुंदर चरित्र मैंने कहा, *अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा* = अब वह चरित्र सुनो जिसे बीच में ही छोड़ दिया था।

वीर वानरों के हथियार पर्वत, वृक्ष और नाखून थे। जहाँ-जहाँ पर्वत और वन थे वहाँ-वहाँ ये वानर ही वानर भर गये। इन्होंने अपनी-अपनी पसंद की सेनायें बना लीं। शत्रु पर नाखूनों से प्रहार करना, पहाड़ तोड़-तोड़ कर फेंकने का ये अभ्यास करने लगे। ये सब सेनायें सुंदर थीं मायने आपस में प्रेम से रहते थे। अपने सेनापति की हर आज्ञा का पालन करते थे। यह सब करते हुए ये लोग प्रभु राम के आने की राह देखते रहते थे।

इस प्रकार देवताओं आदि के पृथ्वी पर अवतार लेने की कथा हो गई। परंतु बीच में यह बात तो रह गई थी कि अयोध्या में क्या हो रहा है, उसकी कथा अब सुनाते हैं।

नोट

नोट



अवलोकितेश्वर (सुबोध अग्रवाल) का जन्म मध्यप्रदेश के सतना जिले में 1962 में हुआ। उन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती से जुलाई 1983 में मंत्र दीक्षा ग्रहण की। अपने शैक्षिक जीवन को 1988 में समाप्त कर मुंगेर आश्रम में ढाई वर्ष तक गुरु सेवा में रत रहे, और गुरुदेव ने उनको अवलोकितेश्वर नाम भी प्रदान किया। वे अभी मध्यप्रदेश के सतना जिले में चार्टर्ड एकाण्टेण्ट का कार्य कर रहे हैं।

श्री गुरुदेव की प्रेरणा से भारत की अनुपम संस्कृति के प्रचार व उत्थान हेतु प्रवचनों को संग्रहित कर शीर्षकों के माध्यम से लेखन व संपादन का मंगलकारी एवं उत्तम कार्य शुरू किया। प्रथम ग्रंथ श्री हनुमान चालीसा है जिसमें चिन्मय मिशन के प्रमुख स्वामी तेजोमयानन्दजी के प्रवचनों का संग्रह है। अन्य ग्रंथ गोस्वामी तुलसीदास कृत श्रीरामचरितमानस पर चिन्मय मिशन के वरिष्ठ स्वामी श्री शंकरानंदजी के प्रवचनों के संग्रह हैं।



श्री स्वामी सत्यानन्द जी कहते हैं कि श्रीरामचरितमानस का शब्दानुवाद होना चाहिये। उनकी प्रेरणा व स्वामी निरंजनानंद सरस्वती के कृपापूर्ण मार्गदर्शन में श्रीरामचरितमानस के बालकाण्ड भाग तीन का शब्दानुवाद, श्री स्वामी सत्यानन्द जी के रिखिया सत्संगों का संकलन, चिन्मय मिशन के वरिष्ठ स्वामी श्री शंकरानंद जी के प्रवचनों का संकलन व संपादन 10 मुख्य शीर्षकों व उपशीर्षकों के माध्यम से किया गया है। परमपूज्य गुरुदेव का निर्देश है कि तुलसीदास जी ने जैसा ग्रंथ लिखा है, उसे वैसा ही समझा जाये। इस बात को ध्यान में रखते हुए ही यह संकलन व संपादन कार्य किया गया है।

राम अवतार के कारणों का वर्णन बालकाण्ड के इस तीसरे भाग में विस्तृत रूप से किया गया है। प्रभु राम की इन सुन्दर, प्रेरणादायी एवं दिव्य लीलाओं को जानकर हम अपने जीवन में उस उच्च चेतना या भगवत् सत्ता के साथ प्रेमपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर दिव्य जीवन का अनुभव अपने जीवन में कर सकते हैं।



978-81-946102-6-7